प्रसाद की रचनाओं में संस्करणगत परिवर्तनों का अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
के निर्देशन में प्रस्तुत शोध प्रबंध]

सारांश

प्रस्तुतकर्त्ता

अनूप कुमार

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९७८ ई०

'प्रसाद' जी ने अपनी अधिकांश रचनाओं में संशोधन व परिवर्तन किए हैं। इन संशोधनों व परिवर्तनों के अध्ययन से विदित होता है कि रचनाकार अपनी कृतियों को निरंतर पहले से बेहतर बनाने के प्रयास में रत था। इस प्रयास में उसने अपनी कृतियों में कई बार संशोधन एवं परिवर्तन किए। इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि रचनाकार की रचना-प्रक्रिया गत्यात्मक रही है

<u>रचनाकार द्वारा पाठ-परिवर्तन के संभाव्य कारण</u>

रचनाकार को किसी परिस्थिति विशेष की अनुभूति होती है। यह अनुभूति उसके अवचेतन मन में अंकित हो जाती है। काव्य-प्रेरणा के समय वह उस अनुभूत तत्त्व को स्मरण कर चेतन मन में लाता है और अभिव्यक्त करता है। यह अभिव्यक्ति ही कृति है। यदि रचनाकार को अनुभूति और अभिव्यक्ति में वैषम्य दिखाई देता है, तो उसे दूर करने के प्रयास में वह कृति को दोहराता है - उसमें परिवर्तन करता है। रचनाकार की दृष्टि में जब वैषम्य दूर हो जाता है, तब वह परिवर्तन करना बंद कर देता है।

'किसी भी कलात्मक कृति का सर्वप्रथम आलोचक स्वयं उसका सर्जक होता है' इस कथनानुसार रचनाकार अपनी कृति को एक आलोचक की दृष्टि से देखता है। रचना में जहाँ कहीं उसे कमी दिखाई देती है, वह दूर करने का प्रयास करता है। फलस्वरूप वह रचना में संशोधन व परिवर्तन करता है।

'प्रसाद' जी की परिवर्तन करने की प्रवृत्ति के पीछे पहला कारण परोक्ष रूप में कार्य करता है। दूसरा कारण भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण ढंग से अपनी भूमिका अदा करता है। वे अपनी कृति को पहले से बेहतर बनाने के लिए संशोधन व परिवर्तन करते थे।

रचनाकार यद्यपि अपनी कृति को पहले से बेहतर बनाने के लिए उसमें परिवर्तन करता है तथापि यह प्रयास कभी-कभी उसकी कृति का अहित भी कर देता है । यह बात निराला के 'कुकुरमुत्ता' के प्रथम व द्वितीय संस्करण में हुए परिवर्तनों के संदर्भ में दिखाई देती है ।

चित्राधार

'चित्राधार' का प्रथम संस्करण (सन् १९१८) निम्नलिखित दस रचनाओं का संकलन है -

कानन कुसुम, प्रेम पथिक , महाराणा का महत्त्व,
सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य , छाया, उर्वशी, राज्यश्री ,
करुणालय, प्रायश्चित्त, कल्याणी-परिणय ।

ये रचनाएँ 'चित्राधार' (प्र०सं०) के प्रकाशन के पूर्व पुस्तकाकार अथवा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं । यह अवश्य है कि कुछ रचनाओं में संशोधन व परिवर्तन कर दिये गये, उदाहरणार्थ 'छाया' में ।

'चित्राधार' का द्वितीय संस्करण (सन् १९२८) पहले से भिन्न है । प्रकाशक के अनुसार इसमें 'प्रसाद' जी की बीस वर्ष की अवस्था तक की कृतियाँ संकलित हैं, किंतु इन रचनाओं को दूसरे आधार पर संकलित किया गया है ।'प्रसाद' जी की जिन रचनाओं को बाद में स्वतंत्र रूप में प्रकाशित करवाना था अथवा किसी पुस्तक की भूमिका के रूप में रखना था, उन्हें 'चित्राधार' (द्वि०सं०) में स्थान नहीं मिला ।'प्रेम-पथिक' और 'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।जिन रचनाओं को भविष्य में स्वतंत्र पुस्तकाकार में अथवा किसी पुस्तक की भूमिका के रूप में नहीं रखना था, उन्हें 'चित्राधार' (द्वि०सं०) में संगृहीत किया गया है ।

उर्वशी चंपू

" उर्वशी चंपू " का प्रथम संस्करण सन् १६०६ में प्रकाशित हुआ। इसका परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण " उर्वशी " शीर्षक से " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में संकलित हुआ। यह परिवर्द्धित रूप अविकल रूप में " चित्राधार " के द्वितीय संस्करण में संगृहीत है।" उर्वशी चंपू " में भूमिका " दी गई है, फिर " कथामुख " है जिसमें कथा का संकेत दिया गया है। इसकी कथा पाँच परिच्छेदों में विभक्त है।" उर्वशी " में भूमिका व कथामुख नहीं हैं। कारण स्पष्ट है कि " उर्वशी चंपू "," स्वतंत्र पुस्तक पुस्तक थी और " उर्वशी " अन्य रचनाओं के साथ संकलित हुई थी।" उर्वशी " की कथा छ खण्डों में विभक्त है। दोनों की कथा में अंतर है।" उर्वशी चंपू " में मंगलाचरण के रूप में सोरठा है, जो बाद में नहीं मिलता।" उर्वशी चंपू " में इंद्र है, उर्वशी में केयूरक। दोनों रूपों में विशेष समानता यह लक्षित होती है कि उर्वशी और पुरुरवा ही कथा के मुख्य चरित्र हैं। दोनों रूपों में पद्य की भाषा ब्रज ही है।'उर्वशी चंपू " में गद्य की भाषा क्लिष्ट खड़ीबोली हिंदी है। बाद के संस्करण की भाषा संस्कृत बहुल है किंतु वह दुरूह नहीं प्रतीत होती। प्रथम संस्करण की भाषा कहीं-कहीं व्याकरण की दृष्टि से दोषपूर्ण हो गई है। बाद के संस्करण की भाषा में व्याकरणगत दोष नहीं दृष्टिगत होता। प्रथम संस्करण के कुछ छंदों में, बाद में, संशोधन किये गये हैं। एक स्थल पर " यह " के स्थान पर " यहि " का प्रयोग किया गया क्योंकि यह ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अधिक निकट बैठता है। बाद के संस्करण में एक असंगति लक्षित होती है। पुरुरवा और उर्वशी झरना के तट पर बैठे हैं। उर्वशी पुरुरवा को माला पहनाती है। उसी माला को वे उर्वशी के गले में डालना चाहते हैं किंतु उर्वशी अस्वीकृति प्रकट करती है। पुरुरवा उत्तेजित होकर कहते हैं," तो फिर हम इसे नदी में फेंक देते हैं "। यहाँ यह बात असंगत लगती है कि जब वे झरना के तट पर बैठे थे तो नदी में माला कैसे फेंक सकते थे।

प्रेम-पथिक

(क) आधुनिक काव्य-भाषा के विकास में ब्रजभाषा और खड़ीबोली रूपों की समस्या -

आधुनिक काल के आरंभ में काव्य, ब्रजभाषा में रचा जाता था । भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि विद्वानों के अथक प्रयत्नों के कारण गद्य खड़ीबोली हिंदी में लिखा जाने लगा । पद्य के लिए ब्रजभाषा को ही सर्वथा समर्थ व उपयुक्त समझा जाता था । कुछ विद्वानों ने खड़ीबोली में काव्य-रचना करके अत्यंत साहस दिखाया । इस प्रकार काव्य-रचना में खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग होने लगा । इस स्थिति को देखकर विद्वानों में विवाद उत्पन्न हो गया है कि काव्य ब्रजभाषा में रचा जाए अथवा खड़ीबोली में । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत था कि गद्य और पद्य की भाषा पृथक पृथक न होनी चाहिए । गद्य खड़ीबोली हिंदी में लिखा जा रहा है, अत: पद्य भी इसी भाषा में रचा जाना चाहिए । पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं० राधाचरण गोस्वामी, गोस्वामी गोरचरण आदि विद्वान ब्रजभाषा के हिमायती थे । ये लोग परंपरा को छोड़ना नहीं चाहते थे । ब्रजभाषा का मोह इन्हें खड़ीबोली को काव्य-भाषा स्वीकार करने से रोकता था । इन्होंने ब्रजभाषा के समर्थन में जो तर्क रखे, वे विशेष महत्त्व नहीं रखते थे । इनके आक्षेप व तर्कों का उत्तर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० श्रीधर पाठक, पं० बद्रीनाथ भट्ट आदि विद्वानों ने दिया । इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने संस्कृत, अँग्रेज़ी के श्रेष्ठ ग्रंथों का खड़ीबोली हिंदी में अनुवाद किया । पं० श्रीधर पाठक ने "हरमिट" का अनुवाद "एकांतवास योगी " शीर्षक से किया । इस समय ब्रजभाषा को पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अतिरिक्त अन्य सशक्त कवि नहीं मिला । इसके विपरीत खड़ीबोली हिंदी में महाकाव्यों का प्रणयन होने लगा। प्रियप्रवास (सन् १९१४), साकेत (सन् १९३२) और कामायनी (सन् १९३६) के प्रकाशन से खड़ीबोली को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने में सफलता मिली । परिस्थिति ऐसी हो चुकी थी कि ब्रजभाषा के समर्थकों को अपने

हथियार डालने पड़े । इस प्रकार हिंदी साहित्य की द्विधा वृत्ति समाप्त हो गई अर्थात् गद्य-पद्य दोनों ही खड़ीबोली (परिनिष्ठित हिंदी) में लिखा जाने लगा ।

(ख) " प्रेम-पथिक " के ब्रजभाषा और खड़ीबोली रूप का तुलनात्मक अध्ययन

" प्रसाद " जी ने " प्रेम-पथिक " सर्वप्रथम ब्रजभाषा में लिखा था जिसका कुछ अंश " इंदु " (कला १, किरण २ भाद्रपद १९६६ वि०) में प्रकाशित हुआ था । संवत् १९७० में इसका खड़ीबोली रूप सामने आया । इसके निवेदन में कहा गया है कि ब्रजभाषा के प्रेम-पथिक का कुछ अंश 'इंदु' में प्रकाशित हुआ है किंतु " इंदु " में प्रकाशित ब्रजभाषा के प्रेम-पथिक का अंश अपने में पूर्ण प्रतीत होता है । दोनों रूपों का तुलनात्मक अध्ययन इस बात का सशक्त प्रमाण होगा कि उस समय की काव्य-भाषा किस प्रकार विकसित हुई । ब्रजभाषा के प्रेम-पथिक में १३४ पंक्तियाँ हैं; प्रथम संस्करण, जो खड़ीबोली में है,में २७० पंक्तियाँ हैं । दोनों रूपों की कथा को देखने पर विदित होता है कथानक में परिवर्तन हुआ है । ब्रजभाषा रूप में प्रेम के पथिक की कथा अन्य पुरुष में कही गई है । खड़ीबोली के प्रेम पथिक में किशोर ही तापसी को उत्तम पुरुष में अपनी [illegible] कथा सुनाता है । खड़ीबोली रूप में प्रारंभ में चमेली का वर्णन आगे की कथा से काफ़ी साम्य रखता है । ब्रजभाषा रूप में प्रेम एक मनुष्य के रूप में अचानक उपस्थित होता है, जबकि खड़ीबोली रूप में प्रेम, चंद्रमा के प्रतिबिंब से एक देवदूत-से उज्ज्वल व्यक्ति के रूप में प्रकट होता है । ब्रजभाषा रूप में प्रेम, पथिक को प्रेम-पथ की कठिनाइयों से अवगत कराता है, साथ ही, उसे प्रत्यावर्तन के लिए प्रेरित करता है । यह उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि प्रेम अपने ही मार्ग से उसे लौटने को कहता है । खड़ीबोली रूप में प्रेम पथिक को प्रेम पथ की कठिनाइयों से सिर्फ़ अवगत कराता है । खड़ीबोली रूप में नारी तापसी हो जाती है, यह घटना मर्म को स्पर्श करती है । खड़ीबोली के " प्रेम-पथिक " में नाटकीयता

आ गई है क्योंकि पथिक की आत्मकथा सुनने के मध्य तापसी के पूछने पर भी पथिक अपना नाम नहीं बताता । खड़ीबोली रूप में 'प्रसाद' जी की प्रेम के संबंध में एक निश्चित धारणा दिखाई देती है । खड़ीबोली रूप में काव्य के प्रारंभ में चमेली का जो वर्णन हुआ है, वह प्रतीक रूप में है क्योंकि वही वर्णन मुख्य कथा में भी वर्णित है । 'प्रसाद' जी ने अपनी आरंभिक काव्य-रचना ब्रजभाषा में की । कालांतर में खड़ीबोली की ओर झुकाव हो जाने के कारण उन्होंने ब्रजभाषा के 'प्रेम-पथिक' को खड़ीबोली में रूपांतरित कर दिया । ब्रजभाषा रूप में अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है । खड़ीबोली रूप में सर्वत्र तीस मात्राओं के छंद का प्रयोग हुआ है । इस परिवर्तन से खड़ीबोली के 'प्रेम-पथिक' में एक सहज प्रवाह-सा आ गया । खड़ीबोली रूप में अलंकार योजना प्रशंसनीय है । उपमानों में नवीनता एवं सात्विकता है ।

(ग) 'प्रेम-पथिक' के प्रथम और द्वितीय संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन

'प्रेम-पथिक' (सन् १९१३) के प्रथम संस्करण की कई पंक्तियों में द्वितीय संस्करण (सन् १९२८) में कहीं शब्द-परिवर्तन किये गये, कहीं पंक्ति ही बदल दी तथा कहीं विपर्यय किया गया । इन परिवर्तनों से व्याकरणिक अशुद्धि दूर हो गई, मुहावरे की अस्मिता की रक्षा हो गई, पंक्ति में प्रवाह आ गया, उपमान में नवीनता आ गयी ।

कानन कुसुम

'कानन कुसुम' का प्रथम संस्करण सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ था किंतु डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने कुछ प्रमाण देकर इसके प्रकाशित होने का वर्ष सन् १९१३ निर्धारित किया । इसका द्वितीय संस्करण 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संकलित हुआ । इसमें प्रथम संस्करण ज्यों का त्यों संकलित है । इसके अतिरिक्त अन्य कई कविताएँ आ गयीं जिनमें से प्राय: समय-समय पर 'इंदु'

में प्रकाशित हो चुकी थीं । 'कानन कुसुम' का तृतीय संस्करण १९२९ ई० में प्रकाशित हुआ । द्वितीय संस्करण की ब्रजभाषा की कविताएँ 'चित्राधार' (द्वितीय संस्करण) में संकलित हैं । खड़ीबोली की कुछ कविताएँ 'झरना' (द्वितीय संस्करण) में चली गयीं । खड़ीबोली की कुछ रचनाओं को बाद में कहीं स्थान नहीं मिला । द्वितीय और तृतीय संस्करण में प्रमुख अंतर भाषा संबंधी है । द्वितीय संस्करण की कुछ कविताएँ खड़ीबोली हिंदी में हैं, कुछ ब्रजभाषा में और कुछ कविताओं में दोनों भाषाओं का समावेश है । यह प्रवृत्ति द्योतित करती है कि उस समय काव्य-भाषा के रूप में दोनों भाषाओं का प्रयोग होता था । 'कानन कुसुम' के तृतीय संस्करण की भाषा सर्वत्र खड़ीबोली हिंदी है । मूल (गज़ल) खड़ीबोली की अपने ढंग की एकमात्र रचना थी, अपना साम्य न ढूंढ पाने के कारण उसे कहीं स्थान नहीं मिला । बाद में जोड़ी गयी [illegible] कविताओं में 'सत्यव्रत' (चित्रकूट) 'भरत', 'कुरुक्षेत्र' आदि (आख्यानक) कविताएँ विशेष रूप से उत्कृष्ट हैं । प्राचीन चरित्रों को कवि ने नवीन परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया है । द्वितीय संस्करण में 'सत्यव्रत' शीर्षक से एक कविता थी । तृतीय संस्करण में इसके स्थान पर 'चित्रकूट' शीर्षक मिलता है । उक्त कविता के अंतिम अंश को हटा दिया गया । 'सत्यव्रत' में राम के चरित्र को प्रमुखता दी गई है, जबकि 'चित्रकूट' में कवि का लक्ष्य है भरत और राम का मिलाप वर्णित करना । द्वितीय संस्करण की 'शिल्प-सौंदर्य' 'करुणा-कुंज,' 'सौंदर्य' आदि कविताओं में संशोधन भी हुए हैं । ये संशोधन व्याकरणिक अशुद्धि को दूर करने की दृष्टि से, अपूर्ण वाक्य को पूर्ण करने की दृष्टि से, सौंदर्य के प्रभाव को व्यापक रूप से निरूपित करने की दृष्टि से किये गये हैं ।

झरना

'झरना' का प्रथम संस्करण भाद्र कृष्णाष्टमी वि० १९७५ (सन् १९१८) को प्रकाशित हुआ । इसमें पच्चीस कविताएँ संकलित हैं । द्वितीय संस्करण अक्षय तृतीया वि० १९८४ (सन् १९२७) को प्रकाशित हुआ । द्वितीय

संस्करण में 'पत्र' एवं 'बसंत राका' कविताओं को स्थान नहीं मिला ।
डॉ० किशोरीलाल गुप्त एवं श्री सुधाकर पाण्डेय के अनुसार 'एक तारा' भी
द्वितीय संस्करण में नहीं रखी गई किंतु यह कविता द्वितीय संस्करण के पृष्ठ १६
पर मिलती है । यह कविता तृतीय संस्करण (सन् १६३४) में नहीं रखी गई ।
द्वितीय संस्करण में कई नयी कविताएँ आ गयीं । फलस्वरूप कविताओं की संख्या
(बिंदु को मिलाकर) ५१ हो गई । साथ ही प्रथम संस्करण की अनेक कविताओं
में संशोधन व परिवर्तन किये गये हैं । 'झरना', अर्चना, पी कहाँ, 'परदेशी
की प्रीति' आदि कविताओं में परिवर्तन व संशोधन हुए हैं । प्रथम संस्करण की
जिन कविताओं को द्वितीय एवं तृतीय संस्करण में नहीं रखा गया वे छायावाद
की विशेषताओं से वंचित थीं । 'झरना' का तृतीय संस्करण छायावाद की
रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन है । प्रकाशक का, इस संबंध में, निवेदन तृतीय
संस्करण में ही मिलता है । प्रथम संस्करण की कविताओं में निम्नलिखित दृष्टियों
से संशोधन किये गये हैं - व्याकरण संबंधी अशुद्धियों को दूर करने के लिए, पंक्ति
को पहले एवं बाद की पंक्तियों से संबद्ध करने के लिए, सर्वनाम के प्रयोग में एकरूपता
लाने के लिए कवि के अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने के लिए, अर्थ को पूर्ण करने के
लिए, पंक्ति की लय को सुधारने के लिए। कुछ परिवर्तन संतोषजनक नहीं हुए ।

द्वितीय संस्करण की कुछ कविताओं में तृतीय संस्करण में संशोधन
व परिवर्तन किये गये । जिन कविताओं में संशोधन हुए हैं वे हैं - 'अर्चना', 'पी
कहाँ', 'प्रत्याशा', 'मिलन' आदि । ये परिवर्तन कई दृष्टि से किये गये हैं-
भाषा को अपेक्षया गठित करने के लिए, लय को सुधारने के लिए व्याकरणगत
असंगति को दूर करने के लिए, भाव की दृष्टि से हल्की पंक्तियों को हटाने के
लिए ।

आँसू

'आँसू' का प्रथम संस्करण सन् १६२५ में प्रकाशित हुआ । इस
संस्करण में एक सौ छब्बीस छंद हैं । सन् १६३३ में 'आँसू' का द्वितीय संस्करण

प्रकाशित हुआ । इस संस्करण में छंदसंख्या एक सौ नब्बे हो गयी । प्रथम संस्करण के अनेक छंदों में परिवर्तन हुए हैं । किसी छंद में किसी शब्द को हटाकर दूसरा शब्द प्रयुक्त किया, कहीं छंद की पंक्ति परिवर्तित कर दी, कहीं विशेषण रख दिये हैं, कहीं सर्वनाम में परिवर्तन कर दिये हैं । कहीं वाक्य का वर्तमान काल बदल कर भूतकाल कर दिया और कहीं भूतकाल वाले वाक्य को वर्तमान काल का बना दिया कहीं शब्दों का विपर्यय किया गया है । द्वितीय संस्करण के तीन-चार छंदों में तृतीय संस्करण (सन् १९३८) में, परिवर्तन किये गये हैं । ये परिवर्तन निम्नलिखित दृष्टियों से किये गये हैं - कालभेद स्पष्ट करने के लिए, छंद के प्रवाह को समृद्ध करने के लिए, नाद-सौंदर्य की दृष्टि से, अधूरी उपमान-योजना को पूर्ण करने के लिए, व्याकरण संबंधी दोषों को दूर करने के लिए, विरह स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, अर्थ-बोध कराने के लिए , भाषा में सौंदर्य लाने के लिए, अनुचित परिवर्तनों को सुधारने के लिए । ' आँसू ' में जोड़े गये नये छंदों से ' आँसू ' को वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ । कवि ने इन छंदों द्वारा अपनी संकुचित विरह-वेदना का उदात्तीकरण कर दिया । द्वितीय संस्करण में छंदों के मध्य अवकाश रखा गया है । अलग-अलग मन:स्थितियों के छंदों के बीच में अवकाश रखा गया है । द्वितीय संस्करण में छंदों को इस क्रम में रखा जिससे एक विरह-कथा का रूप बन सके । इन समस्त परिवर्तनों से एक सूक्ष्म और सांकेतिक कथा का आभास मिलने लगा, जिसमें दार्शनिक स्तर पर कवि ने वेदना के अद्वैत भाव को प्रतिष्ठित किया है । पूरे ' आँसू ' में सिर्फ दो-चार परिवर्तन ऐसे लक्षित होते हैं जो असंतोषजनक प्रतीत होते हैं ।

कामायनी (पांडुलिपि संस्करण)

' कामायनी ' का पांडुलिपि संस्करण सन् १९७१ में मुद्रित हुआ । इस संस्करण के अध्ययन से विदित होता है कि कवि ' कामायनी ' की रचना करने में किन-किन स्थितियों से गुजरा है । पांडुलिपि संस्करण के आरंभ में ' कामायनी (श्रद्धा)' लिखा हुआ है । श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ के अनुसार ' प्रसाद ' जी पहले इस ग्रंथ का नाम ' श्रद्धा ' रखनेवाले थे, किंतु अंतिम समय में

उन्होंने 'कामायनी' कर दिया। उक्त संस्करण में 'प्रसाद' जी ने कहीं शब्दों में परिवर्तन किया है, कहीं पंक्तियों में संशोधन किया है, कहीं पंक्तियों में संशोधन करने के उपरांत उनको काट दिया है और नई पंक्तियाँ रखीं, कहीं शब्दों का विपर्यय किया है और कहीं चरणों का क्रम उलट दिया है। कहीं कुछ पंक्तियाँ काट ही दी गयी हैं। ये परिवर्तन व संशोधन निम्नलिखित दृष्टियों से किये गये हैं - भावों की व्यंजना कराने के लिए, सार्थक शब्दों को प्रयोग करने के लिए स्थिति को निरूपित करने के लिए, पंक्ति की लय को सुधारने के लिए, अनुभव को महत्त्व देने के लिए। एक आध स्थल पर 'प्रसाद' जी ने कुछ पंक्तियाँ काट दी हैं किंतु यदि वे 'कामायनी' में होतीं तो उसे और महत्त्वपूर्ण बनातीं।

'कामायनी' का पांडुलिपि संस्करण और प्रथम संस्करण

'कामायनी' का प्रथम संस्करण सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ। दोनों संस्करणों का मिलान करने पर विदित होता है कि कवि ने कृति के प्रकाशित होने के पूर्व अनेक संशोधन, परिवर्तन व परिवर्द्धन किये हैं। पांडुलिपि संस्करण में विराम चिन्हों का कम प्रयोग किया गया है, जबकि प्रथम संस्करण में इनका प्रयोग सभी स्थलों पर आवश्यकतानुसार हुआ। इनका विवेचन बहुत उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि ये विराम चिन्ह प्रूफ देखनेवालों ने लगाये हैं। श्री वाचस्पति पाठक ने इस तथ्य की पुष्टि की है। इसमें जो परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं, वे निम्नलिखित बातों से प्रेरित होकर किये गये प्रतीत होते हैं - सादृश्य की पूर्णता के लिए, स्थिति की व्यंजना के लिए, सुख-दुख द्वंद्व में विकास को परिलक्षित कराने के लिए, स्थूल सादृश्य को सूक्ष्म स्तर पर लाने के लिए, व्याकरणगत असंगति को दूर करने के लिए, अनुभव को महत्ता देने के लिए, छंद में मात्राओं की कमी को पूरी करने के लिए, लय को सुधारने के लिए, श्रद्धा के स्वरूप को भव्य एवं उज्ज्वल बनाने के लिए अनुचित परिवर्तनों को सुधारने के लिए। कुछ सर्गों के शीर्षक में भी परिवर्तन किये गये हैं - पांडुलिपि संस्करण में 'यज्ञ' सर्ग, प्रथम संस्करण में 'कर्म' सर्ग हो गया। 'यज्ञ' शीर्षक 'कर्म' से संकुचित प्रतीत होता है क्योंकि यज्ञ को कर्म का एक अंग कहा जा सकता है,

कर्म नहीं । पाण्डुलिपि संस्करण में 'युद्ध' सर्ग, प्रथम संस्करण में 'संघर्ष' हो गया ।

राज्यश्री

'राज्यश्री' सर्वप्रथम 'इंदु' (कला ६, खंड १, जनवरी, १६१५ ई०) में प्रकाशित हुआ । इसी रूप में यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संगृहीत हुआ । १६२८ ई० में 'राज्यश्री' का द्वितीय संस्करण निकला, जो परिवर्तित था । प्रथम संस्करण में तीन अंक है - प्रथम अंक में पांच दृश्य, द्वितीय अंक में छ: दृश्य और तृतीय अंक में पांच दृश्य थे । द्वितीय संस्करण में 'प्राक्कथन' था जो प्रथम संस्करण में नहीं मिलता । द्वितीय संस्करण में चार अंक हो गए । चौथे अंक की अवतारणा 'राज्यश्री' के चरित्र को अपेक्षाया उज्ज्वल बनाने के लिए नाटककार ने की है । इस संस्करण में प्रथम अंक में सात दृश्य, द्वितीय अंक में सात दृश्य, तृतीय अंक में पांच दृश्य और चतुर्थ अंक में चार दृश्य हो गये । 'राज्यश्री' के द्वितीय संस्करण में कथानक में परिवर्तन हुआ है । प्रथम संस्करण की तरह द्वितीय संस्करण में भी घटनाओं का बाहुल्य है किंतु सुरमा, शांतिदेव, पुलकेशिन, सुरमच्वाँग (जो नये पात्र हैं) की अवतारणा से कथानक में रोचकता आ गई । कुछ प्रसंगों को बदल दिया गया जिससे कथानक में नाटकीयता का समावेश हो गया। प्रथम संस्करण में अनेक स्थलों पर पद्यात्मक संवादों का प्रयोग हुआ है, द्वितीय संस्करण में ऐसे संवादों को या तो हटा दिया गया अथवा उन्हें गद्य में रूपांतरित किया गया । द्वितीय संस्करण की हास्य-योजना प्रथम संस्करण की तुलना में श्रेष्ठ है । प्रथम संस्करण का 'नांदी पाठ' बाद में नहीं मिलता । प्रथम संस्करण के कुछ अशोभनीय शब्दों को, अनुचित समझकर द्वितीय संस्करण में नहीं रखा गया । द्वितीय संस्करण में सुरमा द्वारा दो गीत गाये गये हैं जो प्रथम संस्करण में नहीं है । ये गीत नाटक के सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं । द्वितीय संस्करण में नाटक की भाषा, काव्यात्मकता के कारण, अपेक्षाया सरस हो गई है ।

विशाख

'विशाख' का प्रथम संस्करण सन् १६२१ में प्रकाशित हुआ ।

द्वितीय संस्करण सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ, तृतीय संस्करण सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ। प्रथम संस्करण में जितने अंक और दृश्य हैं उतने ही द्वितीय संस्करण में भी हैं। प्रथम संस्करण की भूमिका ग्यारह पृष्ठों की है। बाद के संस्करण में यह संक्षिप्त रूप में मिलती है। प्रथम संस्करण की भूमिका में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो 'प्रसाद' जी के तत्संबंधी दृष्टिकोण का परिचय देती हैं किंतु उन्हें बाद में हटा दिया गया। उदाहरणार्थ 'कामिक' (हास्य) के बारे में उनका दृष्टिकोण काफी महत्व का था किंतु उस अंश को हटा दिया। कुछ प्रसंग निरर्थक एवं विषयांतर करते थे, उन्हें हटा दिया। प्रथम संस्करण में प्रेमानंद को ही काल्पनिक पात्र माना गया है जबकि बाद में महापिंगल को भी काल्पनिक पात्र माना है। प्रथम संस्करण की भूमिका में कुछ वाक्य दोषपूर्ण थे, बाद में उन्हें सुधार दिया गया। नाटक के अंतर्गत अनेक संशोधन व परिवर्तन हुए। प्रथम संस्करण के प्रथम अंक, प्रथम दृश्य में दिया गया दृश्य संकेत, द्वितीय संस्करण में मिलता है किंतु तृतीय संस्करण में उसे परिवर्तित कर दिया गया। कुछ शब्द-परिवर्तन प्रसंग को देखते हुए किये गये। कुछ अशुद्ध शब्दों को बाद में शुद्ध रूप में रखा गया। विरोधाभास पैदा करने वाले वाक्यों को बाद के संस्करण में हटा दिया गया। प्रथम संस्करण में कुछ वाक्यों में शब्दों का क्रम अव्यवस्थित था, बाद के संस्करण में उन्हें सहज रूप में कर दिया गया। प्रथम संस्करण के कुछ पद्यात्मक संवादों को बाद में हटा दिया गया। प्रथम संस्करण के एक गीत में संशोधन व संक्षेपण हुआ है। प्रथम संस्करण के दो गीतों को बाद में दूसरे स्थान पर रख दिया, जो प्रसंगानुकूल प्रतीत होते हैं। प्रथम संस्करण में मणी का एक गीत बाद में नहीं मिलता। प्रथम संस्करण में नाटक की समाप्ति 'शम्' से हुई, बाद में इसका प्रयोग नहीं हुआ।

अजातशत्रु

'अजातशत्रु' का प्रथम संस्करण सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ। इसमें जितने अंक, दृश्य हैं उतने बाद के संस्करण में भी हैं। द्वितीय संस्करण सन् १९२६ में प्रकाशित हुआ। प्रथम संस्करण में जहाँ पद्यात्मक संवादों की भरमार है, वहीं द्वितीय संस्करण में नाटककार ने उक्त दोष से बचने की चेष्टा की,

तृतीय संस्करण में नाटककार ने उक्त दोष से अपने को प्रायः मुक्त कर लिया । कुछ पद्यात्मक संवादों को गद्य में रूपांतरित कर दिया गया तथा एक-आध संवाद में संशोधन भी किये गये हैं । प्रथम संस्करण में नाटक की समाप्ति पर "इतिशम्" लिखा है द्वितीय संस्करण में यह शब्द मिलता है किंतु बाद के संस्करण में यह नहीं मिलता ।

चंद्रगुप्त

(क) सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और "चंद्रगुप्त" की भूमिका

"सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य" नामक निबंध सन् १९०९ में प्रकाशित हुआ था । सन् १९३१ में वह "चंद्रगुप्त" नाटक की भूमिका के रूप में रखा गया । भूमिका के रूप में निबंध को संक्षिप्त एवं संशोधित किया गया । बाद में शीर्षकों का विभाजन पहले की अपेक्षा स्पष्टता लिये हुए हैं । अनेक वाक्यों को बाद में हटा दिया गया । जिन वाक्यों को बाद में हटाया गया, वे प्रायः विषयांतर करते थे । कुछ तथ्यों में बाद में परिवर्तन किया गया है । स्वतंत्र रूप में, निबंध की भाषा कहीं-कहीं अव्यवस्थित हो गई थी, बाद में उसे व्यवस्थित किया गया ।

(ख) कल्याणी-परिणय और चंद्रगुप्त

"कल्याणी-परिणय" एकांकी "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" (भाग १७, जुलाई,१९१२ संख्या १) में प्रकाशित हुआ था । इसमें नौ दृश्य हैं । यह "चित्राधार" के प्रथम संस्करण में संकलित हुआ । एक अंतर यह दिखाई देता है कि "चित्राधार" में संकलित "कल्याणी-परिणय" में नांदी है, जो "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के "कल्याणी-परिणय" में नहीं था । 'चंद्रगुप्त' का प्रथम संस्करण (सन् १९३१) "कल्याणी-परिणय" का पूरी तरह से परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप है । चंद्रगुप्त के प्रथम संस्करण में चार अंक हैं । प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य ,द्वितीय अंक में ग्यारह दृश्य , तृतीय अंक में नौ दृश्य और चतुर्थ

तक में सोलह दृश्य हैं ।" कल्याणी- परिणय "की अपेक्षा चंद्रगुप्त के कथानक में घटनाओं का बाहुल्य है " कल्याणी-परिणय" में बाह्य द्वंद्व के साथ-साथ अंतर्द्वंद्व का भी चित्रण हुआ है ।" चित्राधार " में संकलित " कल्याणी-परिणय" का नांदी " चंद्रगुप्त" में नहीं रखा गया । भरत वाक्य भी "चंद्रगुप्त" में नहीं मिलता । पात्रों की संख्या पहले से बढ़ गई ।" चंद्रगुप्त" में अठारह पुरुष पात्र हैं और आठ स्त्री पात्र । नंद, राक्षस, आंभीक, शकटार आदि नए चरित्र हैं । " कल्याणी-परिणय" में कार्नेलिया और कल्याणी एक ही हैं ।" चंद्रगुप्त" में दोनों भिन्न चरित्र हैं ।" चंद्रगुप्त" में पात्रों का चरित्र-चित्रण अपेक्षाया कुशल ढंग से किया गया है ।" कल्याणी-परिणय " के संवाद दोषपूर्ण हैं - कहीं वे बहुत दीर्घ हो गये, कहीं पात्र पद्य ही में वार्त्तालाप करने लगते हैं ।" चंद्रगुप्त" में इन दोषों से काफी सीमा तक मुक्ति पाली गई है । यद्यपि कुछ दीर्घ संवाद यहाँ भी मिलते हैं । कल्याणी-परिणय" के तीन गीत" चंद्रगुप्त" में कुछ परिवर्तनों के साथ आए हैं । इन गीतों के अतिरिक्त कई नए गीत" चंद्रगुप्त" में आ गये हैं ।" कल्याणी-परिणय" का आकार छोटा था, अतः उसे सरलता से अभिनीत किया जा सकता है किंतु" चंद्रगुप्त" को अभिनय की दृष्टि से बहुत सफल नहीं कहा जा सकता । चंद्रगुप्त के द्वितीय संस्करण में कुछ दृश्यों को, दूसरे दृश्यों के साथ कर दिया गया । यह रंगमंच की दृष्टि से सुविधाजनक हो गया क्योंकि छोटे-छोटे दृश्यों के लिए अलग से मंच-व्यवस्था करनी पड़ती ।

(ग)" चंद्रगुप्त " और" अभिनय चंद्रगुप्त "

" चंद्रगुप्त" को" प्रसाद" जी के जीवन काल ही में संक्षिप्त करने का आयोजन किया गया । इसमें कई रुकावटें आयीं जैसे संवाद कहीं-कहीं काफी दीर्घ थे, कहीं गीत विस्तृत थे, कुछ दृश्यों को मंच पर दिखाना असंभव था । " प्रसाद" जी ने उक्त दृष्टि से" चंद्रगुप्त " में संशोधन किया, फलस्वरूप" चंद्रगुप्त" का मंचन संभव हुआ । संशोधित नाटक" अभिनय चंद्रगुप्त" शीर्षक से सन् १९७७ में

प्रकाशित हुआ । 'अभिनय चंद्रगुप्त' के प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य, द्वितीय अंक में सोलह दृश्य, तृतीय अंक में आठ दृश्य और चतुर्थ अंक में ग्यारह दृश्य हैं । नाटक को संशोधित करने में नाटककार ने इस बात का ध्यान रखा कि ऐतिहासिक तथ्य छूटने न पाये । कुछ स्थलों पर ऐसे संकेत रख दिये हैं, जिनसे अभिनय में सहायता मिलती है ।

छाया

'छाया' का प्रथम संस्करण सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ । प्रथम संस्करण में पांच कहानियाँ हैं - तानसेन, चंदा, ग्राम, रसिया बालम, मदन मृणालिनी । छाया का द्वितीय संस्करण, चित्राधार के प्रथम संस्करण में संकलित था । इसमें छः अन्य कहानियाँ जोड़ दी गयीं - शरणागत सिकंदर की शपथ, चित्तौर उद्धार, अशोक , जहाँनारा । बाद में जोड़ी गयी कहानियाँ प्रथम संस्करण की कहानियों से उत्कृष्ट नहीं हैं । 'छाया' का तृतीय संस्करण सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ । द्वितीय संस्करण की कई कहानियों में, तृतीय संस्करण में, कहीं शब्द-परिवर्तन किये गये हैं , कहीं कुछ अंशों को हटा दिया है । ये परिवर्तन-व्याकरण संबंधी दोषों को दूर करने के लिए, अप्रचलित शब्दों के स्थान पर प्रचलित शब्दों के प्रयोग के लिए, निरर्थक अंशों को हटाने के लिए किये गये हैं ।

उपसंहार

'प्रसाद' जी की रचनाओं के विभिन्न संस्करणों में हुए परिवर्तनों एवं संशोधनों का अध्ययन कर लेने पर निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं -

(क) ब्रजभाषा से खड़ीबोली हिंदी की ओर विकास
(ख) आरंभिक भाषा में निहित पूर्वी हिंदी का प्रभाव बाद में दूर हो जाता है ।

(ग) स्थूल से सूक्ष्म की ओर

(घ) पंक्ति की लय के अवरोध को बाद में दूर किया गया

(ड०) अशोभन प्रयोगों का परित्याग

(च) अप्रचलित शब्दों के स्थान पर प्रचलित शब्दों का प्रयोग

(छ) नाट्य-रूढ़ियाँ क्रमश: दूर होती गयीं

(ज) पद्यात्मक कथोपकथनों को बाद में हटा दिया गया

इसके अतिरिक्त अन्य विशेषताएँ भी दिखाई देती हैं - जैसे पात्रों के चरित्र को अपेक्षाया विस्तार देने का प्रयास, त्रुटिपूर्ण छंद-विधान को पूर्ण बनाने के लिए परिवर्तन किये गये।

कुछ परिवर्तन ऐसे भी हैं जो संतोषजनक नहीं प्रतीत होते। ऐसे परिवर्तन हैं किंतु कम, जो किसी भी तरह अपनी सार्थकता सिद्ध करने में असमर्थ होते हैं। इनकी अपेक्षा अधिकांश संशोधन व परिवर्तन रचना को पहले से बेहतर बनाते हैं। इन परिवर्तनों से "प्रसाद" जी की रचनाएँ भाव एवं कला दोनों ही दृष्टियों से क्रमश: उत्कृष्ट होती दिखाई देती हैं। "प्रसाद" जी की रचनाओं के विभिन्न संस्करण, जिनमें संशोधन व परिवर्तन हुए हैं, इस बात के साक्षी हैं कि रचनाकार सदैव अपने कृतित्व को पहले से बेहतर बनाने के प्रयास में रत था और उसका यह प्रयास काफी हद तक सफल रहा।

प्रसाद की रचनाओं में संस्करणगत परिवर्तनों का अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल्॰ उपाधि के लिए डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी
के निर्देशन में प्रस्तुत शोध प्रबंध]

प्रस्तुतकर्त्ता

अनूप कुमार

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९७८ ई॰

विषय - सूची

० ० ०

प्राक्कथन

प्राक्कथन

'प्रसाद' जी की रचना-प्रक्रिया गत्यात्मक रही है। गत्यात्मक इस दृष्टि से कि उन्होंने आजीवन अपनी अनेक कृतियों में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन किये। ऐसी कुछ ही कृतियां हैं जिनके परवर्ती संस्करणों में परिवर्तन न हुए हों। इन संशोधनों, परिवर्तनों के अध्ययन से विदित होता है कि 'प्रसाद' जी अपनी रचना-प्रक्रिया में किन किन स्थितियों से गुज़रे हैं।

'प्रसाद' जी को अपनी रचनाओं में एक बार परिवर्तन करने से संतोष हो जाता हो, यह आवश्यक नहीं था। उन्होंने अपनी अनेक कृतियों में कई बार संशोधन, परिवर्तन किये हैं। 'आँसू', 'झरना', 'कानन कुसुम', 'छाया' आदि के प्रथम, द्वितीय और तृतीय - तीनों संस्करण में एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्नता विद्यमान है। वे अपनी त्रुटियों के प्रति सजग थे और सदैव उन्हें दूर करने के लिए तत्पर थे। 'आँसू' के प्रथम संस्करण के कुछ छंदों में द्वितीय संस्करण में, उन्होंने परिवर्तन किये किन्तु जब वे अनुचित प्रतीत हुए तो पुन: उन्होंने उन परिवर्तनों को हटाकर छंदों को पूर्ववत् कर दिया।

'प्रसाद' जी की रचनाओं के विभिन्न संस्करणों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि 'प्रसाद' जी ने आरंभिक काव्य-रचना ब्रजभाषा में की। कालान्तर में उनका झुकाव खड़ीबोली हिंदी की ओर हो गया। कुछ समय के बाद उन्होंने ब्रजभाषा के मोह से स्वयं को पूर्णतया मुक्त कर लिया। तदुपरांत वे खड़ीबोली हिंदी में ही काव्य-रचना करने लगे।

संशोधनों व परिवर्तनों के क्रम में रचनाकार ने अपनी कृतियों में कहीं शब्द-परिवर्तन किया, कहीं शब्दों के क्रम में उलट फेर किया, कहीं पूरी पंक्ति ही बदल दी, कहीं पंक्ति में उलट फेर किया, कहीं कोई पंक्ति संशोधित की किंतु बाद में उसे अनुचित समझकर काट दिया अथवा उसके स्थान पर दूसरी

पंक्ति की रचना की । इनके अतिरिक्त अन्य परिवर्तन भी दिखायी देते हैं । ये काव्य संबंधी परिवर्तन है । गद्य के अंतर्गत नाटक, कहानी में परिवर्तन हुए । नाटकों में मुख्य रूप से ये परिवर्तन हुए हैं - शब्द- परिवर्तन, दीर्घ संवादों का संक्षेपण, पद्यमय संवादों को हटा देना अथवा उन्हें गद्य रूप में रूपांतरित करना, गीतों में संशोधन , कुछ गीतों को हटा देना, अंक-वृद्धि, प्रस्तुतिकरण में बाधा पहुंचाने वाले दृश्यों को हटा देना आदि । कुछ नाटक की भूमिकाओं में भी परिवर्तन किये गये हैं । कथा-साहित्य में सिर्फ " छाया " के विविध संस्करण में ही परिवर्तन हुए - विषयान्तर उपस्थित करनेवाले प्रसंगों, वाक्यों को हटा देना, अनावश्यक विस्तार करनेवाले अंशों को हटा देना या उन्हें संक्षिप्त करना, भाषा में आये पूर्वी प्रभाव को दूर करना आदि ।

" प्रसाद " जीके द्वारा किये गये परिवर्तनों की विवेचना यह बात ध्यान में रखकर नहीं की गई कि रचनाकार जैसे-जैसे प्रौढ़ होता जाएगा, उसी क्रम से उसकी रचना भी प्रौढ़ होती जाएगी । इस संबंध में कोई वैज्ञानिक नियम नहीं बनाया जा सकता कि रचनाकार का प्रारंभिक अवस्था में किया गया संशोधन या परिवर्तन, उसके प्रौढ़ावस्था में किये गये संशोधन व परिवर्तन से अच्छा नहीं हो सकता । यह बात अवश्य है कि " प्रसाद " जी द्वारा किये गये अधिकांश संशोधन व परिवर्तन अपेक्षया उत्कृष्ट हुए हैं और रचनाकार की रचना-प्रक्रिया उत्तरोत्तर विकसित होती दिखायी देती है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि रचनाकार की प्रौढ़ावस्था की कृति " कामायनी " (पाण्डुलिपि संस्करण और प्रथम संस्करण) में किये गये सभी परिवर्तन संतोषजनक हुए हैं । कुछ परिवर्तन ऐसे हैं जो किसी प्रकार अपना औचित्य नहीं प्रदर्शित करते । भले ही ऐसे परिवर्तन (असंतोषजनक प्रतीत होनेवाले परिवर्तन) संपूर्ण कृति में दो-चार ही मिलते हैं ।

" प्रसाद " जी ने अपनी विभिन्न रचनाओं के विभिन्न संस्करणों में जो परिवर्तन किये उनके पीछे क्या कारण थे ; यह प्रश्न उठते ही, इसी के समानांतर यह प्रश्न भी सामने आता है कि रचनाकार अपनी रचनाओं में क्यों परिवर्तन करता है । प्रस्तुत अध्ययन में सर्वप्रथम इसी विषय की विवेचना

हुई हैं - ' रत्नाकार द्वारा पाठ-परिवर्तन के संभाव्य कारण ।'' ' प्रसाद ' जी का प्रयास सदैव अपनी कृति को पहले से बेहतर बनाने का रहा है, जैसा कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने १६ मई, १६७८ की एक भेंट में मुझे बताया , ' मैंने ' प्रसाद ' जी से व्यक्तिगत रूप से पूछा था कि आप अपनी कृतियों में परिवर्तन, संशोधन किस दृष्टि से करते हैं । उन्होंने मुझे बताया कि अपनी रचना को अपेक्षाया कलात्मक बनाने के लिए ।'

इसके पश्चात् ' चित्राधार ' के प्रथम एवं द्वितीय संस्करण का विवेचन किया गया है । तदुपरांत ' उर्वशी चम्पू ' और 'उर्वशी ' की विवेचना की गयी है । इसके बाद काव्य - कृतियों - प्रेम पथिक, ' कानन कुसुम ', ' झरना ', ' आँसू ', ' कामायनी ' - में हुए परिवर्तनों का अध्ययन हुवा है । इसके उपरांत नाट्य कृतियों ' राज्यश्री ', ' विशाख ', ' अजातशत्रु ', ' चन्द्रगुप्त ', में दृष्टिगत परिवर्तनों का विवेचन, फिर कथा-साहित्य - ' छाया ' में हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है । इसके बाद ' उपसंहार ' है जिसमें निष्कर्ष रूप में ' प्रसाद ' जी की रचना-प्रक्रिया में उद्घाटित होनेवाली महत्वपूर्ण विशेषताओं को वर्णित किया गया है । सब से अंत में ' परिशिष्ट ' है जिसके प्रथम खण्ड में प्रस्तुत शोध प्रबंध में वर्णित ' प्रसाद ' जी के सभी ग्रंथों के विभिन्न संस्करणों के प्रकाशन-क्रम की सूची दी गई है । साथ ही, वे संस्करण कहाँ से उपलब्ध हुए हैं, इसका संकेत भी दे दिया गया है । ' परिशिष्ट ' के दूसरे खण्ड में सहायक ग्रंथों की सूची दी गई है । ' परिशिष्ट ' के तीसरे खण्ड में शोध प्रबंध में सहायक पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी गई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के संबंध में एक निवेदन है कि इसमें (' प्रसाद ' जी की कृतियों में) जो संशोधन व परिवर्तन हुए हैं उनका विवेचन किया गया है । जो परिवर्तन नहीं हुए (जिन्हें होना चाहिए था) वे इस अध्ययन की सीमा रेखा में नहीं आते, इसलिए उनका विवेचन नहीं किया गया । यह निवेदन इस कारणवश है कि परिवर्तनों के बावजूद किन्हीं-किन्हीं छंदों आदि में त्रुटि मिल सकती है । शोध-प्रबंध में कामायनी के पांडुलिपि संस्करण की संशोधित पंक्तियाँ अविकल रूप में उद्धृत की गयी हैं ।

मैं अपने निर्देशक श्रद्धेय डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के समक्ष

श्रद्धा से नत हूँ - शोध-प्रबंध उन्हीं के निर्देशन से वर्तमान स्वरूप पा सका। शोध कार्य के संबंध में, मैं जब जब आपके पास गया आपने अत्यंत व्यस्तता के बावजूद मुझे पर्याप्त समय दिया। मैं हिन्दी विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० रघुवंश के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता हूँ जिनके आशीर्वाद ने मुझे उक्त कार्य को पूर्ण करने में समर्थ बनाया। श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी समय-समय पर अपना अमूल्य समय मुझे सस्नेह दिया, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

यदि वाराणसी के श्रद्धेय मुरारी लाल केडिया ने अपना सहयोग न दिया होता तो कार्य अपूर्ण रहता क्योंकि " चित्राधार " का प्रथम संस्करण उन्होंने बड़े परिश्रम से " भगवान दीन साहित्य विद्यालय,काशी " से मुझे उपलब्ध करवाया। साथ ही, उन्होंने " चित्राधार " के प्रथम संस्करण की 'फोटो स्टेट कापी " (मेरे अनुरोध पर) मुझे भेजी। उनके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

श्रद्धेय रायकृष्णदास ने मुझे " चन्द्रगुप्त " का प्रथम संस्करण और " आँसू " का द्वितीय संस्करण " भारत कला भवन " से उपलब्ध करवाया। आपका मैं कृतज्ञ हूँ। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने मुझे अपने संग्रह से " कानन कुसुम " का तृतीय संस्करण अध्ययन हेतु दिया। मैं आपका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। श्रद्धेय वाचस्पति पाठक जी ने समय - समय पर मुझे जो महत्वपूर्ण जानकारियाँ दीं, उनके लिए मैं उनका अनुगृहीत हूँ। श्रद्धेय विश्वम्भर " मानव " का मुझ पर विशेष स्नेह रहा। वे निरंतर मेरा उत्साह बढ़ाते रहे। उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना अपना नैतिक कर्तव्य समझता हूँ। श्रद्धेय रत्नशंकर " प्रसाद " के सुझावों से मैं लाभान्वित हुआ। उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। भदोही के श्रद्धेय राधेश्याम गुप्त ने अपने संग्रह से " झरना " का प्रथम संस्करण, " अजातशत्रु " का प्रथम संस्करण और

'छाया' का तृतीय संस्करण मुझे उपलब्ध करवाया, उनका मैं कृतज्ञ हूँ। हिंदी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, भारत कला भवन आदि जिन संस्थाओं की पुस्तकों का मैंने उपयोग किया, उनका मैं ऋणी हूँ।

अनूप कुमार
(अनूप कुमार)
हिंदी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

रचनाकार द्वारा पाठ-परिवर्तन के संभाव्य कारण

रचनाकार द्वारा पाठ-परिवर्तन के संभाव्य कारण

'प्रसाद' जी की रचनाओं के विभिन्न संस्करणों में विद्यमान परिवर्तनों का अध्ययन करने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि कोई रचनाकार अपनी कृति में क्यों संशोधन, परिवर्तन करता है ।

किसी कृति के निर्माण में, रचनाकार के मन को दो स्थितियों से गुजरना पड़ता है । एक अनुभूति और दूसरी अभिव्यक्ति । रचनाकार को किसी परिस्थिति की अनुभूति होती है । यह अनुभूति उसके अवचेतन मन में अंकित हो जाती है । कालांतर में काव्य-प्रेरणा के समय रचनाकार उस अनुभूत तत्त्व को स्मरण कर अपने चेतन मन में लाता है । फलस्वरूप वह उसे अभिव्यक्त करता है । उसकी यह अभिव्यक्ति ही कृति है । जब रचनाकार देखता है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति में वैषम्य आ गया है अर्थात् जिस रूप में उसने अनुभव किया था, उस रूप में अभिव्यक्ति नहीं हो सकी, तो वह अपनी कृति को दोहराता है । इस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति में आए अंतर को दूर करने के प्रयास में वह अपनी कृति में संशोधन परिवर्तन करता है । संशोधित व परिवर्तित कृति में भी जब वह अपने अनुभव को पूरी तरह से साकार नहीं पाता, तो पुन: उसमें (संशोधित व परिवर्तित कृति में) संशोधन व परिवर्तन करता है । कोई आवश्यक नहीं कि दूसरा चरण रचनाकार को संतुष्ट ही कर दे । जब तक अनुभूति और अभिव्यक्ति में सामंजस्य नहीं स्थापित होता(रचनाकार के दृष्टिकोण से) तब तक रचनाकार कृति में संशोधन व परिर्तन कर सकता है । यदि सर्जक कृति में परिवर्तन नहीं करता, तो यह समझना चाहिए कि कृतिकार की दृष्टि में अनुभूति और अभिव्यक्ति में सामंजस्य उपस्थित हो गया ।

संशोधनों व परिवर्तनों का एक दूसरा कारण भी है । किसी भी कलात्मक कृति का सर्वप्रथम आलोचक स्वयं उसका सर्जक होता है' इस कथन के अनुसार रचनाकार में आलोचक का गुण भी निहित होता है । रचनाकार अपनी कृति के पूरी हो जाने पर एक आलोचक की दृष्टि से उसे परखता है । रचना में उसे जहाँ भी कमी दिखाई देती है, वह उसे दूर करने की चेष्टा करता है । इसके फल-

स्वाम वह अपनी रचना में संशोधन व परिवर्तन करता है। जिस रचनाकार का आलोचक पक्ष गौण होगा, वह कृति में परिवर्तन नहीं करेगा और यदि उसने किया भी तो परिवर्तनों की संख्या कम होगी। यदि रचनाकार कृति में संशोधन व परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं है, तो वह अपनी रचना को पाठकों के समक्ष तब तक नहीं प्रस्तुत करेगा जब तक कि उसे अपनी रचना से पूर्ण रूप से संतोष न हो गया हो। उसके बाद यदि उसे अपनी रचना में कुछ दोष दिखायी देता है, तो वह उन दोषों को नज़र अन्दाज़ कर देगा।

"प्रसाद" जी आजीवन अपनी कृतियों में संशोधन एवं परिवर्तन करते रहे। इसके पूर्व रचनाकार द्वारा पाठ-परिवर्तन के संभाव्य कारण का उल्लेख किया जा चुका है। 'प्रसाद' जी की संशोधन एवं परिवर्तन करने की प्रवृत्ति के पीछे पहला कारण (अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में सामंजस्य लाने के लिए) परोक्ष रूप में कार्य करता है। दूसरा कारण (अपनी कृति को एक आलोचक की दृष्टि से परखना) भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह उनके ('प्रसाद' जी के) स्वभाव का अनिवार्य धर्म बन गया था। कुछ भी हो "प्रसाद" जी अपनी कृति को पहले से बेहतर बनाने के लिए संशोधन व परिवर्तन करते हैं।

"प्रसाद" जी की तरह "निराला जी" ने भी अपनी रचनाओं में संशोधन व परिवर्तन किये। "कुकुरमुत्ता" का प्रथम संस्करण "युग मंदिर उन्नाव" से सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा संशोधित संस्करण "श्री राष्ट्र भाषा विद्यालय, काशी" से सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ।[१] "कुकुरमुत्ता" के "लोकभारती" संस्करण जो सन् १९६६ में प्रकाशित हुआ, की भूमिका में श्री दूधनाथ सिंह ने "कुकुरमुत्ता" के प्रथम व द्वितीय संस्करण में हुए परिवर्तनों में से सात परिवर्तनों का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ परिवर्तनों को देखना आवश्यक है -

प्रथम संस्करण	द्वितीय संस्करण
(१) गले लग लग हवा चलती मंद मंद।	(१) गले लगकर हवा चलती मंद मंद।

१- कुकुरमुत्ता (लोकभारती से प्रकाशित) - निराला।
कुकुरमुत्ता : काव्य - आभिजात्य से मुक्ति (भूमिका) - दूधनाथ सिंह, पृ० ९-१०।

प्रथम संस्करण	द्वितीय संस्करण
(२) पेट में डंड पेलते चूहे, ज़बां पर लफ़्ज़ प्यारा ।	(२) पेट में डंड पेले हों चूहे, ज़बां पर लफ़्ज़ प्यारा ।
(३) सिटपिटाई देखकर ज्यों अखाड़े में मर्द को । राह पर ज्यों बाबु उठती गर्द को ।	(३) सिटपिटाई, जैसे अखाड़े में देखा मर्द को बाबू ने देखा हो उठती गर्द को ।
(४) पैर सिर पर रख व पीछे को भगा ।	(४) पैर सर रखकर व पीछे को भगा ।[2]

' निराला ' जी ने अपनी दृष्टि में उक्त परिवर्तन ' कुकुरमुत्ता ' को पहले से श्रेष्ठ बनाने के प्रयास में किये, किन्तु ये परिवर्तन सार्थक नहीं हुए । किसी दृष्टि से इन परिवर्तनों का औचित्य सिद्ध नहीं होता । श्री दूधनाथ सिंह ने भी इन परिवर्तनों को अनुचित माना है । उनका कथन द्रष्टव्य है -

' पहले उदाहरण में ' गले लग-लग ' और ' गले लगकर ' की अभिव्यंजना में आकाश- पाताल का अंतर है । एक फूल अथवा एक कली से फिर दूसरी कली के गले लग-लग कर फिर हवा के आगे बढ़ जाने में विलास का एक मनोहारी चित्र खींचा गया है । यह नव्वाब के बाग़ का वर्णन है । दूसरी ओर ' गले लगकर चलना ' संपूर्ण अभिव्यक्ति को लगभग रिक्त कर देता है । गले लगकर सोने का मुहावरा होता है, मन्द-मन्द चलने का नहीं । दूसरे उदाहरण में ' पेलते ' व्याकरण से बिलकुल ठीक है, जबकि ' पेले हों ' का कोई अर्थ या अर्थ- विस्तार या सूक्ष्म व्यंजना समझ में नहीं आती । तीसरा उदाहरण लय-सौंदर्य (प्रथम संस्करण) और लय-भंग (द्वितीय संस्करण) का है । इस तरह से लय को तोड़कर ' निराला '

२- कुकुरमुत्ता : काव्य - आभिजात्य से मुक्ति (भूमिका) - लेखक श्री दूधनाथ सिंह, पृष्ठ २० ।

का उद्देश्य क्या है, यह कहना लगभग असंभव है । चौथे उदाहरण में पहले संस्करण में मुहावरा ठीक है, दूसरे में व्यर्थ हो गया है ।"[३]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि ये संशोधन व परिवर्तन मूल रचना को समृद्ध नहीं करते । श्री दूधनाथ सिंह ने इन परिवर्तनों के संभाव्य कारण समझने के संबंध में अपनी असमर्थता व्यक्त की है, " अक्सर मेरे दिमाग़ में एक बात आती है कि इस तरह की सपाटता से " निराला " क्या करना चाहते हैं ? मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं है ।"[४]

मुझे इन परिवर्तनों के पीछे " निराला " जी का एक निहित उद्देश्य दिखाई देता है । यह अवश्य है कि उनका इस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास असफल रहा । " निराला " जी ने " कुकुरमुत्ता " के व्यंग्य और इसकी भाषा को आधुनिक बनाने की चेष्टा की, जैसा कि " कुकुरमुत्ता " के दूसरे संस्करण के " निराला " जी लिखित " आवेदन " से ज्ञात होता है, " कुकुरमुत्ता " का संशोधित संस्करण, आशा है, पाठकों को पसन्द आयेगा । इसके व्यंग्य और इसकी भाषा आधुनिक है ।" " निराला " जी ने कुकुरमुत्ता की भाषा और व्यंग्य को आधुनिक बनाने का प्रयोग किया किन्तु वह पाठकों को पसंद नहीं आया । " निराला " जी के उक्त " आवेदन " में यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि इसमें (आवेदन में) प्रयुक्त " इसके " का प्रयोग " कुकुरमुत्ता " के प्रथम संस्करण के लिए किया गया है । इस आपत्ति का उत्तर यही होगा कि यह आवेदन द्वितीय संस्करण का है, अत: " इसके " का प्रयोग " कुकुरमुत्ता " के द्वितीय संस्करण के लिए ही हुआ है ।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि रचनाकार का अपनी कृति को पहले से श्रेष्ठ बनाने का प्रयास कभी-कभी उसकी कृति का अहित भी कर सकता है।

१- कुकुरमुत्ता : काव्य - आभिजात्य से मुक्ति - पृष्ठ २०-२१ ।

२- कुकुरमुत्ता : काव्य - आभिजात्य से मुक्ति - पृष्ठ २१ ।

चित्राधार

चित्राधार

" प्रसाद " जी की रचना-प्रक्रिया को भलीभाँति समझने के लिए " चित्राधार " का अध्ययन अनिवार्य है । यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में उस समय तक प्रकाशित (सन् १६१८) सभी कृतियाँ संकलित हैं । इसमें संकलित कई कृतियों के बाद में भी संस्करण हुए जो परिवर्जित हैं । इसके फलस्वरूप " चित्राधार " का दूसरा संस्करण (सन् १६२८) भी प्रथम संस्करण से काफ़ी भिन्न है । " चित्राधार " का प्रथम संस्करण " हिन्दी-ग्रंथ-भण्डार-कार्यालय, बनारस सिटी' से सन् १६१८ ई० (संवत् १६८५) में प्रकाशित हुआ । यह " चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस सिटी' से मुद्रित हुआ । इस संस्करण में निम्नलिखित दस रचनाएँ संकलित हैं -

१- कानन कुसुम
२- प्रेम पथिक
३- महाराणा का महत्त्व
४- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य
५- छाया
६- उर्वशी
७- राज्य श्री
८- करुणालय
६- प्रायश्चित्त
१०- कल्याणी-परिणय

इसमें प्रत्येक रचना के लिए अलग से पृष्ठ संख्या रखी गयी है अर्थात् " कानन कुसुम " की पृष्ठ संख्या एक सौ ग्यारह, " प्रेम पथिक " की पच्चीस, " महाराणा का महत्व " की सोलह , " सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य " की अस्सी, " छाया " की एक सौ चौबीस , " उर्वशी " की बीस, " राज्य श्री " की उन्तालिस , " करुणालय " की चौदह , " प्रायश्चित्त " की बारह और " कल्याणी- परिणय " की इक्कीस है । यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में संगृहीत समस्त रचनाएँ इसके (चित्राधार के प्रथम संस्करण के) प्रकाशन के पूर्व पुस्तकाकार में अथवा विभिन्न पत्रिकाओं में

प्रकाशित हो चुकी थीं । यह अवश्य है कि कुछ रचनाओं में संशोधन व परिवर्तन कर दिये गये । उदाहरणार्थ " कानन कुसुम " का प्रथम संस्करण सन् १९१३ में प्रकाशित हुआ था । " कानन कुसुम " का प्रथम प्रकाशन वास्तव में सन् १९१३ में हुआ है यद्यपि " कानन कुसुम " के तृतीय संस्करण में दी गयी संस्करण सूची में प्रथम संस्करण के प्रकाशित होने का वर्ष १९१२ ई० उल्लिखित है, द्रष्टव्य - " कानन कुसुम " । बाद में यह " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में परिवर्धित रूप में संकलित हुआ । ब्रजभाषा का " प्रेम पथिक " इंदु-कला १, किरण २, संवत् १९६६ (सन् १९०९) में प्रकाशित हुआ था । सन् १९१३ में इसका खड़ीबोली में रूपांतरित रूप प्रकाशित हुआ । बाद में यह इसी रूप में " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में संगृहीत हुआ । " महाराणा का महत्त्व " - इंदु-कला ५, खण्ड १ , किरण ६, १९१४ में प्रकाशित हुआ था । बगैर संशोधन एवं परिवर्तन के यह " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में सम्मिलित था । " सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य " सन् १९०९ में पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ था । " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में यह रचना अविकल रूप में (उसी पृष्ठ) उपलब्ध होती है । " छाया " का प्रथम संस्करण (पुस्तकाकार में) सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ था । इस संस्करण में पांच कहानियाँ थीं - १) तानसेन २) चन्दा ३) ग्राम ४) रसिया बालम ५) मदन मृणालिनी। इसका परिवर्धित रूप " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में संकलित हुआ जिसमें " छाया " के प्रथम संस्करण की कहानियों के अतिरिक्त छ: नयी कहानियाँ आ गयीं । बाद में जोड़ी गयी समस्त कहानियाँ " इंदु " के भिन्न- भिन्न अंकों में छप चुकी थीं । इस प्रकार " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में संकलित " छाया " के अंतर्गत निम्नलिखित कहानियाँ मिलती हैं -

(१) तानसेन (२) चंदा (३) ग्राम (४) रसिया बालम
(५) मदन मृणालिनी (६) शरणागत (७) सिकंदर की शपथ
(८) चित्तौर का उद्धार (९) अशोक (१०) जहाँनारा (११) गुलाम ।

" उर्वशी चम्पू " पुस्तकाकार में सन् १९०९ में प्रकाशित हुआ था । " उर्वशी " उसी का संशोधित एवं परिष्कृत रूप है जो " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में संकलित है । " राज्य श्री " का प्रथम संस्करण पुस्तकाकार में सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ । उसी वर्ष यह " इंदु ' (कला ६, खण्ड १) में भी प्रकाशित हुआ ।

बगैर परिवर्तन के यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संगृहीत है । 'करुणालय' इंदु, कला ४, खण्ड १, किरण २, फरवरी १३ में प्रकाशित हुआ था । उसके बाद यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में सम्मिलित कर लिया गया । 'प्रायश्चित्त' 'इंदु' कला ४, खण्ड १, किरण २ माघ १९६९ (१९१४ ई०) में प्रकाशित हुआ था । उसके पश्चात् यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संकलित किया गया । 'कल्याणी-परिणय', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग १७, जुलाई, १९१२, संख्या १ में प्रकाशित हुआ था । बाद में यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संकलित किया गया । नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित 'कल्याणी-परिणय' के आरंभ में 'नान्दी' नहीं है जबकि 'चित्राधार' (प्रथम संस्करण) के 'कल्याणी-परिणय' में है । 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण की जिन रचनाओं में संशोधन व परिवर्तन हुए हैं, उनका विवेचन स्वतंत्र रूप से, तत्संबंधी रचनाओं के संदर्भ में, किया गया है ।

यह प्रश्न उठता है कि इन रचनाओं को, जो पहले ही प्रकाशित हो चुकी थीं, एक साथ रखने की क्या आवश्यकता थी ? 'प्रसाद' जी के साहित्य का समादर (उनकी आरंभिक रचनाओं का) उनकी युवावस्था में ही होने लगा था, जैसा कि 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण के अंत में दी गयी विभिन्न विद्वानों की सम्मतियों से विदित होता है । कुछ विद्वानों ने 'प्रसाद' जी को सुझाव दिया कि वह अपनी समस्त रचनाओं को एक साथ प्रकाशित करवा दें जिससे कि हिंदी-प्रेमियों को उनकी (प्रसाद जी) समस्त रचनाएँ सुलभ हो जायें । इस प्रसंग में 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण के प्रकाशकीय वक्तव्य का निम्नलिखित अंश उल्लेखनीय है -

"जिस समय बा० जयशंकर प्रसाद जी का लेख इंदु में तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में धारा रूप से निकल रहा था, उस समय कई हिंदी हितैषियों ने आपके सब लेख और कविताओं को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की सलाह दी थी । जबलपुर की 'हितकारिणी' के सहकारी संपादक पं० नर्मदा प्रसाद जी ने तो पत्र लिखते हुए, अपने पत्र तारीख २८-४-१३ तथा २९-६-१४ में यहाँ तक लिखा था, 'यदि आप 'इंदु' में प्रकाशित[1] अपनी सब कविताओं को पुस्तकाकार छपा डालें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी । यदि आप आज्ञा दें तो मैं इस कार्य को करने में अपना सौभाग्य समझूँगा ।--आपकी कविताएँ बड़ा ही आनंद देती हैं । कोई कोई पद्य तो इतने अछूते

१- चित्राधार (प्रथम संस्करण) में 'प्रकाशिता' ही मुद्रित है ।

सुंदर और भावपूर्ण हैं जिनकी मैं प्रशंसा नहीं कर सकता ।" यही बात "मनोरंजन"-संपादक ने भी कही थी ।"[2]

"प्रसाद" जी को यह सलाह उचित लगी होगी । उसी के फलस्वरूप "चित्राधार" (प्रथम संस्करण) प्रकाशित हुआ । यह प्रयास इस दृष्टि से भी अच्छा था क्योंकि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं का अस्तित्व ख़तरे में पड़ सकता है ।

सन् १९२८ (सं० १९८५) में "चित्राधार" का द्वितीय संस्करण" साहित्य-सरोज कार्यालय, बनारस सिटी" से प्रकाशित हुआ एवं" भारत जीवन प्रेस, काशी" में मुद्रित हुआ । इस संस्करण की पृष्ठ संख्या एक सौ नब्बे है । इसका द्वितीय संस्करण, प्रथम संस्करण से काफ़ी भिन्न है । द्वितीय संस्करण में निम्नलिखित रचनाएँ हैं -

उर्वशी
बभ्रुवाहन
अयोध्या का उद्धार
वन-मिलन
प्रेमराज्य

नाट्य

प्रायश्चित्त, सज्जन

कथा-प्रबंध

ब्रह्मर्षि, पंचायत, प्रकृति सौंदर्य, सरोज ,भक्ति

पराग

अष्टमूर्ति, कल्पना-सुख, मानस, शारदीय शोभा, रसाल-मंजरी, रसाल, वर्षा में नदी-कूल, उद्यान-लता, प्रभात-कुसुम , विनय, शारदीय महापूजन, विभो, विदाई, नीरद, शरद-पूर्णिमा, संध्या तारा, चंद्रोदय, इंद्र-धनुष, भारतेंदु प्रकाश, नीरव-प्रेम, विस्मृत प्रेम, विसर्जन ।

2- चित्राधार (प्रथम संस्करण) वक्तव्य, पृष्ठ संख्या १-२ ।

मकरन्द विंदु

परिवर्द्धित 'चित्राधार' की विवेचना के पूर्व हमें प्रकाशक के वक्तव्य को देखना होगा - " इस संग्रह में उनकी बीस वर्ष के अवस्था तक की प्राय: सभी कृतियाँ संग्रीहीत कर दी गई हैं । इस संग्रह के प्रथम संस्करण में जो कि सं० १९७५ में प्रकाशित हुआ था - जो और रचनायें उस अवस्था के बाद की थीं ; और जहां से उनकी खड़ीबोली की रचनाओं का प्रारंभ होता था, निकाल दी गई हैं । यह छोटा सा संग्रह आशा है, पाठकों का कम मनोरंजन न करेगा ।"[3]

'प्रसाद' जी का जन्म सन् १८८९ ई० में हुआ । उनकी बीस वर्ष की अवस्था सन् १९०९ ई० में हुई होगी । अब हम कुछ उदाहरणों को लेकर देखें कि 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण की जो रचनाएँ 'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में नहीं रखी गईं, क्या वास्तव में वे १९०९ ई० के बाद की हैं और जो रचनाएँ द्वितीय संस्करण में विद्यमान हैं क्या वे १९०९ ई० तक लिखी जा चुकी थीं ।

'छाया' सन् १९१२ की रचना है । अत: वह बीस वर्ष के बाद की कृति है । 'उर्वशी' सन् १९१८ में ('चित्राधार' के प्रथम संस्करण में) प्रकाशित हुई थी । यह 'उर्वशी चम्पू' जो स० १९०९ में प्रकाशित हुई थी का परिवर्द्धित रूप है । यह निश्चित-सा है कि 'उर्वशी' सन् १९०९ के बाद किसी समय परिवर्द्धित हुई होगी । अतएव बीस वर्ष की अवस्था तक की रचना 'उर्वशी-चम्पू' हुई न कि 'उर्वशी' । फिर भी 'उर्वशी' चित्राधार के द्वितीय संस्करण में सम्मिलित की गई । यदि 'उर्वशी' को इस आधार पर सम्मिलित किया गया कि वह 'उर्वशी चम्पू' का ही एक रूप है, तो इस आधार पर १९१३ ई० में प्रकाशित खड़ीबोली के 'प्रेम पथिक' को भी 'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में स्थान मिलना चाहिए था । इसके विपरीत 'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में खड़ी बोली का 'प्रेम पथिक' स्थान नहीं प्राप्त कर सका । साथ ही, सन् १९०९ के 'इन्दु' में प्रकाशित ब्रजभाषा के 'प्रेम पथिक' को भी सम्मिलित नहीं किया गया । 'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' सन् १९०९ में पुस्तकाकार में प्रकाशित हो चुका था, फिर भी इसे 'चित्राधार' के द्वितीय

३- चित्राधार (द्वितीय संस्करण) दो शब्द ; पृष्ठ संख्या २ ।

संस्करण में नहीं रखा गया ; यद्यपि यह बीस वर्ष की अवस्था तक की कृति है ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कुछ कृतियाँ, जो 'प्रसाद' जी के बीस वर्ष तक की अवस्था की हैं, उन्हें 'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में स्थान नहीं मिला । प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में 'प्राय:' शब्द प्रयुक्त किया है, जिसका अभिप्राय है कि कुछ कृतियाँ ऐसी हैं जिन्हें सम्मिलित होना चाहिए था, किन्तु नहीं हुई । प्रथम संस्करण की रचनाओं को, द्वितीय संस्करण में, सम्मिलित करने और निकाल देने के पीछे 'प्रसाद' जी का एक निश्चित उद्देश्य था जिसे प्रकाशक को अपने वक्तव्य में उल्लिखित करना था । वह उद्देश्य यह था कि जिन रचनाओं को भविष्य में पुस्तकाकार में अथवा किसी पुस्तक की भूमिका के रूप में रखना था, उन्हें 'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में स्थान नहीं दिया गया । 'छाया' बाद में १९२६ में स्वतंत्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई । 'प्रेम-पथिक' का द्वितीय संस्करण सन् १९२८ में प्रकाशित हुआ । 'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' सन् १९३१ में 'चंद्रगुप्त' नाटक की भूमिका बनकर आया । इसके विपरीत उर्वशी, प्रायश्चित्त आदि रचनाएँ भविष्य में स्वतंत्र रूप से प्रकाशित नहीं की गयीं ।

उर्वशी : उर्वशी चंपू और उर्वशी

उर्वशी - चंपू

शीर्षक से ही स्पष्ट है कि " उर्वशी " चंपू है । गद्य-पद्य मिश्रित रचना चंपू नाम से अभिहित की जाती है । इसका प्रथम संस्करण, स्वर्व " प्रसाद " जी द्वारा सन् १९०६ ई० में प्रकाशित हुआ । इस संस्करण के पृष्ठों की संख्या ४३ है । यह रचना सन् १९०६ ई० में लिखी गई थी जैसा कि इसकी भूमिका से स्पष्ट है :
" ------- वि० सं० १९६३ में लिखा जा चुका था ------ ।"[१]

इसका दूसरा संस्करण " उर्वशी " शीर्षक से " चित्राधार " के प्रथम संस्करण में सम्मिलित हुआ । " चित्राधार " के द्वितीय संस्करण में भी इसको सम्मिलित किया गया । यहाँ बीस पृष्ठ हैं ।

" उर्वशी - चंपू " और " उर्वशी " की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दोनों में समानताएँ कम हैं, अंतर अधिक हैं । इन अंतरों को समझने के लिए दोनों की कथा को देखना कदाचित् अनुपयुक्त न होगा ।

उर्वशी - चंपू

इसमें सर्वप्रथम संक्षिप्त निवेदन है । इसमें " प्रसाद " जी अपने कृतित्व को, अपने पूज्य स्वर्गीय देवी प्रसाद सुंघनी साहु के विद्यानुराग का फल मानते हैं जो वात्सल्य प्रेम के साथ उनके ऊपर था । इसके पश्चात भूमिका भाग है । भूमिका में लेखक ने यह स्थापना रखी कि चंपू श्रव्य काव्य है । आगे यह भी लिखा कि " इस उर्वशी में कथा के किसी किसी अंश की छाया महाकवि कालीदास के विक्रमोर्वशीय त्रोटक से ली गई है , तथा उनके किसी कविता का अनुवाद नहीं किया गया है ---- ।"[२] इसके बाद " कथामुख " आता है । इसमें इस प्रकार से कथा का संकेत दिया गया है :

काश्यप भगवान के मनुनामक जाति प्रधान हुए । उनके इला नाम की कन्या हुई । उसे सौम सुंदर सौम्य से पुरुरवा नामक पुत्र हुआ । चंद्रवंश का प्रथम राजा पुरुरवा हुआ । एक दिन वे गंधमादन की एक अधित्यका में पहुंचे । वहाँ उन्हें किसी

१- उर्वशी चंपू : श्री जयशंकर प्रसाद , भूमिका, पृष्ठ संख्या १ ।
२- उर्वशी चंपू : श्री जयशंकर प्रसाद , भूमिका , पृष्ठ संख्या ६-६ ।

स्त्री का क्रंदन सुनाई दिया । पद्मिनी तीर पर अप्सराओं से उन्हें विदित हुआ कि गंधर्वकुमारी उर्वशी को, कैशी नामक दैत्य उठाकर ईशान दिशा की ओर ले भागा है । पुरुरवा शीघ्रता से ईशान दिशा की ओर जाते हैं । वे कैशी दैत्य का संहार करते हैं । उर्वशी पुरुरवा पर मुग्ध हो जाती है । वह उर्वशी को साथ लिए अप्सराओं के निकट जाते हैं । तत्पश्चात अप्सराओं के अनुरोध पर वे विहार भूमि नंदन कानन की ओर चले जाते हैं ।

उर्वशी चंपू :

इसके बाद उर्वशी चंपू की कथा का आरंभ होता है । कथा पांच परिच्छेदों में विभक्त है :

प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में निम्नलिखित सोरठा है :

शंभु नयन प्रतिबिंब, जयति शैलजा बदन पै ।
राजत विधु क बिम्ब, मनहु नीलकमलावलि ।[3]

इंद्र नगर में नन्दन कानन है, जहाँ पुरुरवा और उर्वशी विहार कर रहे हैं । यह निश्चित हो गया कि कल प्रात:काल पुरुरवा प्रतिष्ठानपुर चले जायेंगे । उन दोनों को भावी विरह की चिंता सताने लगी । पुरुरवा संध्या उपासना के लिए चले जाते हैं । इंद्र ने कमला द्वारा उर्वशी को नृत्य के लिए बुलवाया क्योंकि कल पुरुरवा को चला जाना है ।

प्रतिष्ठानपुर में पुरुरवा उर्वशी से वियुक्त होकर उदास बैठे हैं । उसी समय उर्वशी और कमला वहाँ आ गईं । पुरुरवा ने आवेश में उर्वशी को अंक में भर लिया । तत्पश्चात् वे संयोग की आकस्मिकता से मूर्च्छित हो गए । उपचार से उन्हें चेतना आ गई । कमला ने उन्हें बताया कि इंद्रसभा में उर्वशी ने "लक्ष्मी" का अभिनय किया । उसके मुख से पुरुषोत्तम के स्थान पर "पुरुरवा" उच्चरित हो गया ; इंद्र ने आपके प्रति उर्वशी के प्रेम को जानकर उसे आपके पास भेज दिया ।

कालांतर में उर्वशी और पुरुरवा गंधमादन की उपत्यका में बैठे थे । अकस्मात् किसी युवक ने उर्वशी के उरोज पर, सरोज-संपुट का आघात किया ।

३- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ सं० १ ।

पुरुरवा क्रुद्ध होकर उससे युद्ध करने लगा । फिर तूर्यनाद हुआ, युवक के स्थान पर इंद्र उपस्थित थे । तत्क्षण इंद्र और उर्वशी दोनों अंतर्धान हो गये ।

उर्वशी के विछोह में पुरुरवा अत्यंत दुःखी है । वह प्रेम को संबोधित करता हुआ कहता है :

तेरे तीरथ में करि मंजन गाढ़ु ।
भये तृप्त नहिं कबहूँ बुझी न प्यास ।।[४]

व्यथित होकर वह "उर्वशी" कहता है और मूर्च्छित हो जाता है । किसी युवती के मधुर स्वर से उसकी तंद्रा टूटी । सुंदरी उससे कहती है :

अहो पथिक ! यह सोई उपवन कुंज ।
जामे भूलि धरै नहिं पग अलि पुंज ।।[५]

\+ + + + + +

पथिक ! धीर धरि चलिये पथ अति दूर ।
है कटिबद्ध सदा सनेह में चूर ।।[६]

सुंदरी पुरुरवा को स्वर्ण मंजूषा देती है जिसमें एक मणि और पुरुरवा के नाम इंद्र का पत्र रहता है । वह पत्र पढ़ता है, उधर सुंदरी अदृश्य हो जाती है । पत्र से विदित होता है कि कुमार वन में क्रौंचदारण से शापित उर्वशी, लता में परिणत हो गई है, वह मणि की सहायता से पूर्ववत् हो जायेगी । वह उक्त वन में पहुंचा । वहाँ एक बकुल वृक्ष के तले थका होने से सो जाता है । सुप्तावस्था में हाथ में स्थित मणि स्पर्श से बकुलालिंगित लता "उर्वशी" रूप में आ जाती है । जागने पर दोनों प्रतिष्ठानपुर चले जाते हैं ।

प्रतिष्ठानपुर में उर्वशी और पुरुरवा सिंहासनासीन हैं । सर्वत्र प्रमोद है । तभी एक दासी पुरुरवा को मणि के खो जाने की सूचना देती है ।

४- उर्वशी चंपू, पृष्ठ सं० २८ । यही कवि ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" में "पथिक" "प्रेम" से कहता है ।

५- उर्वशी चंपू; पृष्ठ सं० ३० । "प्रेम - पथिक" में दोनों कथन "प्रेम" द्वारा कहे गये हैं ।

६- उर्वशी चंपू; पृष्ठ सं० ३१ ।

पुरुरवा चिंतित होकर उस छत पर आये । उसी समय, नाराच विद्ध गृद्ध उनके सम्मुख चोंच में वही मणि दबाये, गिर पड़ा । साथ में यह पत्र भी लगा था :

चंद्रवंश को सूर , पुरुरवा सुतवीर वर ।
करन शत्रु मद ॰ चूर, ताको शान्ति वान यह ।।[७]

तदुपरांत प्रतिहारी पुरुरवा से निवेदन करती है कि तपोवन से एक बालक को लेकर , दो तपस्विनी आयी हैं । अंदर आने पर, उर्वशी बालक को अंक में भर लेती है । वह सलज्ज भाव से पुरुरवा से कहती है कि यह बालक आपका है । इस पर पुरुरवा ने भी उसे गले लगाया । उसी समय उर्वशी रोने लगी '। पुरुरवाके पूछे जाने पर उसने असमय रोने का कारण बतलाया, ' सुरेंद्र की आज्ञा थी कि ----' वह इतना ही कहती है तभी विमान से इंद्र उतरे और उन्होंने उर्वशी को आशीर्वाद दिया । पुरुरवा ने रहस्य जानने की जिज्ञासा प्रकट की । इंद्र ने उन्हें बताया कि मैंने उर्वशी को तुम्हारे (पुरुरवा के) पास सीमित समय के लिए भेजा था और उसे आज्ञा दी थी :

' सुत को सुचि मुखचंद ,
जौ लौं नहिं देखहिं नृपति ।
तौ लौं तहं निर्द्वन्द्व,
बसहु प्रेम परि पूरिहौं ।।[८] '

विधि वशात् वन्य -विहार में उसे प्रसव-वेदना सहन करनी पड़ी । उसने इसे गुप्त रखने के लिए मेरी सहायता चाही । मैंने उसे कौशल से आपकी दृष्टि से ओझल किया । अपने पुत्र को सहचरी को सौंपने के उपरांत वह भ्रम से पार्श्वस्थ कुमार कानन में जा पड़ी और शापित होकर लता में परिणत हो गई । इसके बाद की कथा आप जानते ही हैं । तदनंतर बंदीगण आशीर्वाद के पद गाने लगे ।

उर्वशी :

इसकी कथा छः खंडों में विभक्त है । रमणीक उद्यान प्रदेश के कानन की एक संध्या में पुरुरवा टहल रहे थे । उन्हें रमणी कंठ की क्रंदन ध्वनि

७- उर्वशी चंपू ; पृष्ठ संख्या ३७ ।
८- उर्वशी चंपू ; पृष्ठ संख्या ४१ ।

सुनाई दी । वहाँ जाने पर एक अद्वितीय सुंदरी ने उन्हें आकर्षित कर लिया । वह बताती है कि छाया में व्यक्ति के भ्रम से वह चीख उठी थी । पुरुरवा उसके कटाक्ष से विचलित होकर चले गए ।

किसी दिन पुरुरवा शिला-खंड पर बैठे वनश्री देख रहे थे । पुन: वही युवती आयी । वह वीणा और दो मेष शावक लिये थी । उसने पुरुरवा से अनुरोध किया कि यदि आप इन मेष शावकों को ले लें, तो मैं अपना वस्त्र ठीक कर लूँ, फिर इन्हें जल पिला दूँ । पुरुरवा ने उसके स्वच्छंद व्यवहार के सामने आत्म समर्पण कर दिया ।

झरने के तट पर बैठे हुए पुरुरवा और उर्वशी हँसती हुई सृष्टि का आनंद ले रहे थे । उर्वशी ने फूलों की माला बनाकर पुरुरवा को पहना दिया । पुरुरवा ने उस माला को उर्वशी के गले में डालना चाहा किंतु वह अनिच्छा प्रकट करती है । पुरुरवा हतप्रभ हो गए । यह देखकर उर्वशी ने उनसे माला लिया और उसे पहिन लिया ।

किसी दिन, एक गंधर्व युवक आया । उसने वन्य कुसुम की माला तत्परता से उर्वशी को पहिना दिया । उर्वशी से युवक अत्यंन्त आत्मीय की तरह बात कर रहा था, अत: पुरुरवा उस पर तलवार से वार करने को उद्यत हो जाते हैं । युवक पराजित होकर गिर पड़ा । "बेचारा केयूरक" कहकर उर्वशी उसे उठाने लगी । पुरुरवा शीघ्रता से वहाँ से चल पड़े । असावधानीवश, मेषशावक की पूँछ पुरुरवा से दब गयी और वह चिल्ला उठा । बिना ध्यान दिये पुरुरवा चले गये । इस घटना से उर्वशी का हृदय" तीव्रतर" हो गया ।

द्राक्षा मंडप में उर्वशी पुष्पाभरण भूषिता होकर बैठी है । केयूरक के घाव ठीक हो चले हैं । वह उर्वशी से कहता है -" प्रिये ! शैशव- सहचर को क्या तुम ऐसा भूल जाओगी ? क्या तुम्हें कुछ दया नहीं है ?" इस पर उर्वशी ने वीणा पर गाना शुरु किया -

> वरे पथिक यह सौध उपवन कुंज ।
> जामे भूलि धरे नहिं पग अलि पुंज ।।[६]

६- चित्राधार (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १६ ।
चित्राधार (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या १५ ।

पुरुरवा ने इन दोनों की प्रणय-लीला देखी और वह ईर्ष्या से जल-भुन गए। उर्वशी ने केयूरक को वहाँ से चले जाने का आदेश दिया और स्वयं समीप के `आराम` में चली गई। थोड़ी देर के बाद, उर्वशी दौड़ी आई और पुरुरवा से बोली कि उसके मेषशावक को केयूरक उठा ले गया। उन्हें खोजो। उर्वशी ने जिस दिशा में संकेत किया, तलवार लेकर पुरुरवा उधर ही चल पड़े।

दूसरे दिन प्रात: काल में पुरुरवा खाली हाथ लौटे। उर्वशी ने कड़क कर कहा `अच्छा मैं जाती हूँ केयूरक और अपने प्यारे बच्चों को खोज लूँगी।` पुरुरवा उसका हाथ पकड़कर रोकना चाहते हैं किंतु उर्वशी झटके से हाथ छुड़ाकर मोह-निशा की ओर चली गई।

`उर्वशी- चंपू` और `उर्वशी` की कथा को देखने पर स्पष्ट होता है कि दोनों में समानताएँ कम हैं और विषमताएँ अधिक।

बाद के संस्करण में भूमिका, कथामुख आदि नहीं मिलते। कारण स्पष्ट है कि `उर्वशी - चंपू` स्वतंत्र पुस्तक थी, जबकि बाद में वह अन्य रचनाओं के साथ सम्मिलित हुई।

दोनों की कथा में बहुत अंतर है। विशेष समानता यह दिखाई देती है कि दोनों रूपों में, उर्वशी और पुरुरवा ही कथा के मुख्य चरित्र हैं।

प्रथम संस्करण और बाद के संस्करण में भाषा के स्तर में अंतर है। पद्य की भाषा ब्रज ही है। उसमें कोई नयापन नहीं है। प्रथम संस्करण में गद्य की भाषा क्लिष्ट खड़ीबोली हिंदी है। संस्कृत शब्दों के बाहुल्य ने भाषा को कृत्रिम बना दिया। उदाहरण प्रस्तुत है :

`पक्षीगण अपने पक्ष से विपक्षी हो चुके, वियोगिनीगण सरजनी के पैजनी शब्द तुल्य नलिन मकरंद से मद मधुकर के निकर के आनंदोल्लास को सुनकर पुष्पधन्वा के धनुष्टंकार के शब्द का अनुभव करती हुई व्यथा से अश्रु वर्षण करने लगी है, आकाश के झरोखे से अंधकार के आवरण का अनुसंधान करते हुए कृष्णाभिसारिका की नाईं तारागण कहीं-कहीं झाँकने लगे।` १०

१०- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १०-११ ।

\+ + + + +

" किंचितकालोपरांत महाराज के मुख से एक दीर्घ निश्वास के साथ ही चक्षुकोण में जल विंदु दिखाई दिये , जो कि चंद्र ज्योत्स्ना से पघलित होने से आरण गिरने के समय में चंद्रमंडल से तारापात का दृश्य दिखाते थे ।"[११]

स्पष्ट है कि संस्कृत शब्दों के आधिक्य से भाषा कृत्रिम हो गई । भाषा की दुरूहता के विषय में "प्रसाद" जी ने भूमिका में कहा है :

" ------- उसके गद्य भाग में प्राय: संस्कृत के शब्दों का विशेष प्रयोग भाषा की उत्कृष्टा तथा मनोहरता के हेतु किया गया है क्योंकि यह संस्कृत के सहायता के बिना नहीं हो सकता ------ ।"[१२]

भाषा के उक्त दोष को हम तत्कालीन हिंदी के लिए वरदान कह सकते हैं क्योंकि उस समय विद्वान, जो कि खड़ीबोली के समर्थक थे, हिंदी को समृद्ध करने का सफल प्रयास कर रहे थे, और यह कार्य संस्कृत के शब्दों को ग्रहण किये बिना असंभव सा था । फिर भी आज के संदर्भ में दोष तो कहा ही जाएगा ।

बाद के संस्करण में "उर्वशी" की (गद्य रूप की) भाषा संस्कृत बहुल है किन्तु वह दुरूह नहीं प्रतीत होती । प्रथम संस्करण की तरह, इसमें संस्कृत शब्दों की अनावश्यक भरमार नहीं है । प्रथम संस्करण की तुलना में बाद की भाषा स्वाभाविकता की ओर अग्रसर होती हुई दिखाई देती है । प्रथम संस्करण में गद्य रूप की भाषा कई जगह पर व्याकरिणक दृष्टि से अशुद्ध हो गई है । उदाहरण प्रस्तुत है : " इस उर्वशी में कथा के किसी किसी अंश की छाया महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीय त्रोटक से ली गई है तथा उनके किसी कविता का अनुवाद नहीं किया गया है ------- ।"[१३]

यहाँ "उनके" के स्थान पर "उनकी" होना चाहिए था क्योंकि उसका संबंध "कविता" से है । " इंद्रनगर में नंदन कानन एक अपूर्व मनोहर स्थान है, उसके शोभा की सीमा ही कह सकती है ---- ।"[१४]

११- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण);पृष्ठ संख्या ११ ।
१२- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण); भूमिका, पृष्ठ संख्या ६ ।
१३- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण); भूमिका, पृष्ठ संख्या ५-६ ।
१४- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ३।

यहाँ " उसके " के स्थान पर " उसकी " होना चाहिए था ।

बाद में " उर्वशी " की भाषा शुद्ध रूप में दृष्टिगत होती है ।

" उर्वशी चंपू " में दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त, छप्पय, रोला आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । ये छंद ब्रजभाषा में है । " प्रेम पथिक " (ब्रजभाषा रूप) से कुछ बरवे को छोड़कर, प्राय: भाषा शिथिल है ।[१५]

परिवर्तित " उर्वशी " में छंदों की विविधता पहले की अपेक्षा कम हो गई । छंदों की भाषा ब्रज ही है । इनमें कोई नवीनता नहीं है । कुछ छंद जो प्रथम संस्करण में थे, बाद में भी मिलते हैं; उनमें से कुछ में संशोधन किये गये हैं । प्रथम संस्करण में एक छंद है :

चित्त कल्पना अलि भ्रम मत गुंजार ।
यह तरु में नहिं होत कुसुमित डार ।।[१६]

बाद में यह छंद इस प्रकार है :-

चित्त कल्पने ! अलि भ्रम मत गुंजार ।
यहि तरु में नहिं होतु कुसुमित डार ।।[१७]

प्रथम संस्करण में " कल्पना " था बाद में " कल्पने " हो गया । यह इस कारण किया गया क्योंकि प्रथम संस्करण में छंद की फलाकांक्षा ने उक्त छंद पुरुरवा के प्रति कहा था , बाद में उर्वशी इसे गीत के रूप में गाती है । साथ ही, प्रतीत होता है कि वह आत्म केंद्रित होकर गानकर रही है । दूसरे प्रथम संस्करण में " यह " का प्रयोग हुआ है और बाद के संस्करण में " यहि " का प्रयोग हुआ है । " यहि " रूप ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अधिक निकट पड़ता है । इसीलिए " प्रसाद " जी ने " इन्दु " में प्रकाशित ब्रजभाषा के " प्रेम पथिक " में इस छंद में " यहि " का प्रयोग किया है । तीसरे, प्रथम संस्करण के " होत " के स्थान पर " होतु " का प्रयोग हुआ है । यह संशोधन संतोषजनक नहीं हुआ । शुद्ध रूप " होत " है । सूर के

१५- " प्रसाद " का विकासात्मक अध्ययन - किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ सं० १३० ।
१६- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३० ।
१७- चित्राधार (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १६ ।
चित्राधार (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १५ ।

पदों में भी " होत " का ही प्रयोग हुआ है :

गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिए वृंदावन में जाई ।[१८]

+ + + + + +

पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ।[१९]

+ + + +

प्रान हमारे घात होत हैं, तुम्हारे भाएँ हाँसी ।[२०]

इसी संदर्भ में " उर्वशी चंपू " का निम्नलिखित सवैया द्रष्टव्य है-

औछे उरोज पै चंपई कंचुकी

तौरति जौं किये अरसौ हैं ।

दीरघ कंज से लौचन माते

रसीले उनींदे कछूक लजौं हैं ।

छूटत बान धरे सरसान

चढ़ी रहैं काम कमान सी भौंहैं ।[२१]

बाद के संस्करण में उक्त सवैया निम्नलिखित रूप में है :

सोंधे सरोज की माल सी चारु अंग भरे कैंा है अरसौहैं ।

गोल कपोलन पै अरुनाई अमंद छटा सुख की सरसी हैं ।।

दीरघ कंज से लौचन माते रसीले उनींदे कछूक लजौंहैं ।

छूटत बान धरे सरसान चढ़ी रहैं काम कमान सी भौंहैं ।।[२२]

इस परिवर्तन के संबंध में डॉ० किशोरीलाल गुप्त कहते हैं, इन दोनों सवैया में प्रधान अंतर प्रथम पंक्ति में है और तीन चरण तो दोनों में

१८- सूरसागर सार (चतुर्थ संस्करण) संपादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ; पृष्ठ सं० ४६ ।

१९- सूरसागर सार (चतुर्थ संस्करण) संपादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ; पृष्ठ सं० १६६ ।

२०- सूरसागर सार (चतुर्थ संस्करण)संपादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ; पृष्ठ सं० १६७ ।

२१- उर्वशी चंपू (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ५ ।

२२- चित्राधार (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ५ ।

चित्राधार (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३ ।

एक-से हैं । दूसरे चरण में "मुख" के स्थान पर "सुत" और तीसरे में "कञ्चुक" के स्थान पर "कञ्चुक" छपा है जो संभवत: प्रेस के भूतों की करतूत है । इन परिवर्तनों से कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ।

"अब हमें प्रथम पंक्ति के अन्तर की ओर ध्यान देना चाहिए । 'उर्वशी चंपू' में प्रथम पंक्ति में वर्णन अत्यंत स्थूल एवं उभरा हुआ है । यह वर्णन इन्द्रियों को लुभानेवाला (Sensuous) है, विशेषकर आँखों को । कुछ लोगों को अश्लीलता दोष भी दिखाई पड़ सकता है, यद्यपि यहाँ अश्लीलता न होकर पूर्ण स्पष्टता है ।" उर्वशी" की प्रथम पंक्ति अधिक लाक्षणिक एवं सूक्ष्म है । परन्तु प्रथम रूप में जो एक चित्र आँखों के सामने आ जाता था, सूक्ष्मता के कारण उस चित्र का अब नाश हो गया है । पहले में रंग, रूप, अंग विन्यास सब कुछ था, पर यहाँ कुछ भी नहीं । फिर भी प्रसाद दिनों दिन स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर हो रहे हैं । इसलिए यह संशोधन यहाँ करना पड़ा । इस वर्णन में एक शालीनता आ गई है । यही इस संशोधन की विशेषता है ।"[२३]

प्रथम संस्करण में असंगति नहीं मिलती, किंतु बाद के संस्करण में एक असंगति दिखाई देती है ।" उर्वशी" के तीसरे परिच्छेद में लिखा है - "नवयौवन ,[२४] नवीन समागम में पुलकित भोग में डूबे हुए, विलास-सागर में तैरते हुए, एक दूसरे के सहारे झरना के तट पर बैठे हुए पुरुरवा और उर्वशी हँसती हुई सृष्टि का आनन्द ले रहे हैं।[२५] उर्वशी फूलों की माला बनाकर पुरुरवा के गले में डालती है। उसी माला को पुरुरवा, उर्वशी को पहनाना चाहते हैं किन्तु वह अस्वीकृति प्रकट करती है । इस पुरुरवा उपेक्षित होकर कहते हैं ; तो फिर हम इसे नदी में फेंक देते हैं ।[२६] यहाँ यह बात खटकती है कि जब पुरुरवा और उर्वशी झरने के किनारे बैठे थे तो पुरुरवा माला को नदी में कैसे फेंक सकते थे ?

२३- "प्रसाद" का विकासात्मक अध्ययन ; पृष्ठ संख्या १४२ ।
२४- "उर्वशी" में "नवयौवन" ही मुद्रित है ।
२५- चित्राधार (प्रथम संस्करण) उर्वशी, पृष्ठ संख्या ११ ।
चित्राधार (द्वितीय संस्करण) उर्वशी , पृष्ठ संख्या ६ ।
२६- चित्राधार (द्वितीय संस्करण) उर्वशी, पृष्ठ संख्या १० ।

प्रेम - पथिक

प्रे म - प थि क

(क) आधुनिक काव्य-भाषा के विकास में ब्रजभाषा और खड़ीबोली रूपों की समस्या -

हिन्दी साहित्य के इतिहास के तीन कालों (आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल) में रचनाएँ प्रायः काव्य-रूप में ही हुई । इन कालों में गद्य रचनाओं का अस्तित्व अत्यंत कम था । आधुनिक काल की यह प्रमुख विशेषता है कि गद्य रूप में भी साहित्य लिखा जाने लगा । इसके पूर्व रीतिकाल में रचनायें अधिकांशतः ब्रजभाषा में होती थी । भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि विद्वानों के अथक प्रयत्नों के फल-स्वरूप गद्य-साहित्य खड़ीबोली में लिखा जाने लगा । यह बात अवश्य है कि उस समय की रचनाओं में खड़ीबोली के बीच-बीच में ब्रजभाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है । फिर भी, खड़ीबोली, गद्य-साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी ।

आधुनिक काल के आरंभ में काव्य, ब्रजभाषा में ही रचा जाता था । कवियों को इस भाषा से अत्यंत मोह था । भारतेंदु जब गद्य साहित्य लिखते थे, तो उसकी भाषा होती खड़ीबोली और जब काव्य-रचना करते थे, तो उसकी भाषा ब्रज हुआ करती थी । ये विद्वान खड़ीबोली को काव्य-रचना के लिये सर्वथा अनुपयुक्त समझते थे । इसके पश्चात् कुछ कवियों ने खड़ीबोली में काव्य-रचना करके अत्यंत साहस प्रदर्शित किया । इस प्रकार काव्य-रचना में खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों का ही प्रयोग होने लगा ।

इस स्थिति को देखकर विद्वानों में यह विवाद उत्पन्न हो गया कि काव्य ब्रजभाषा में रचा जाये अथवा खड़ीबोली में । श्री शांतिप्रिय द्विवेदी इस विवाद को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं," ब्रजभाषा और खड़ीबोली के पक्ष-विपक्ष में वाद-विवाद होने लगे थे । जहाँ कविता के लिए कुछ लोग उसको भी गढ़ने की आवश्यकता महसूस कर रहे थे वहाँ कुछ लोग उसके काव्यभाषा होने में ही संदेह करते थे ।"[१] इस विवाद से तत्कालीन हिंदी काव्य की प्रगति अवरुद्ध सी हो गई थी।

१- वर्तमान कविता का क्रम-विकास - श्री शांतिप्रिय द्विवेदी
साहित्य संदेश-भाग ४,आगरा, मार्ग-शीर्ष १९९७ वि०, दिसंबर,१९४० (अंक ४) ।

इस संबंध में साहित्यिकों ने जो विवाद उत्पन्न किये, वे संभवत: सन् १९२० तक चलते रहे। यों तो कवियों ने सन् १९१० के बाद से खड़ीबोली को ही काव्य-भाषा बना लिया था, किंतु उसके बावजूद कुछ लोग बैदम आवाज़ में ब्रजभाषा का समर्थन कर रहे थे। इसके फलस्वरूप आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने १९२० ई० में लिखा, "गद्य और पद्य की भाषा पृथक पृथक न होनी चाहिए। हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। + + + + + + + + गद्य-साहित्य की उत्पत्ति के पहले पद्य में ब्रजभाषा ही का सार्वदेशिक प्रयोग होता था। अब कुछ अंतर होने लगा है। गद्य की इस समय उन्नति हो रही है, अतएव अब यह संभव नहीं कि गद्य की भाषा का प्रभाव पद्य पर न पड़े। जो प्रबल होता है वह निर्बल को अवश्य अपने वशीभूत कर लेता है। यह बात भाषा के संबंध में भी तद्वत् पाई जाती है।"[२]

द्विवेदी जी के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि काव्य खड़ीबोली में लिखा जाए अथवा ब्रजभाषा में, इस समस्या का समाधान १९२० ई० तक नहीं हो पाया था।

ब्रजभाषा के समर्थकों का मत था कि काव्य-भाषा, ब्रजभाषा ही होनी चाहिए क्योंकि काव्य-रचना के लिए खड़ीबोली असमर्थ एवं अनुपयुक्त है। ब्रजभाषा में जो माधुर्य है, वह खड़ीबोली में नहीं है। पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा, "खड़ीबोली का भी मैं विरोधी नहीं हूँ पर साथ ही प्यारी ब्रजभाषा को बहिष्कृत करने के पक्ष में भी नहीं हूँ। पं० केदारनाथ भट्ट के कथनानुसार जिस बोली में भगवान श्री कृष्ण-चंद्र ने तुतलाकर यशोदा से "मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो" कहा था, उसे पद्य रचना के समय तिरस्कृत करना कदापि उचित नहीं है। ब्रजभाषा में जो रस जो लालित्य जो सौंदर्य जो माधुर्य है, वह खड़ीबोली को अभी तक प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं हुआ।"[३]

२- रसज्ञ रंजन (द्वितीय संस्करण) "कवि कर्तव्य (भाग १) पृ०सं० ७-८; लेखक-श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी।

३- द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण प्रयाग, द्वितीय भाग, "हिंदी की वर्तमान अवस्था"; पृष्ठ संख्या एवं १९९।

इसी सम्मेलन (द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) में श्री गोस्वामी गौरचरण ने लिखा " अब प्रश्न यह है कि कविता हिंदी में हो या ब्रजभाषा में ? इसका स्वच्छ उत्तर होगा कि ब्रजभाषा ही में । हाँ पंथ संबंधी या लौकिक कविताएँ खड़ीबोली में हों, तो कुछ हानि नहीं । पर यदि कोई चाहे कि मैं महाभारत वा श्रीमद्भागवत का खड़ीबोली में अनुवाद करूँ तो वह हास्यास्पद होगा । खड़ीबोली में न तो ब्रजभाषा के बराबर प्रस्तार है, न उतनी मधुरता । हमारी समझ में ब्रजभाषा में यावत्भगवत्संबंधी, और साहित्य की कविताएँ हों ।"[४] कहना न होगा कि खड़ीबोली में महाभारत अथवा श्रीमद्भागवत का अनुवाद न कर सकनेवाली बात स्वयं हास्यास्पद है । सक्षम, सफल अनुवादक के लिए यह कठिनाई की बात नहीं है । इन मतों को देखने से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि ये सिर्फ खड़ीबोली के विरोध में लिखे गये हैं । इन मतों के पीछे कोई तार्किक दृष्टि नहीं है ।

सन् १९१० ई० में " प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन, काशी " में संपन्न हुआ था । पं० राधाचरण गोस्वामी इस सम्मेलन में ऐसा लेख प्रस्तुत करते हैं, " हिंदी भाषा के मुखोज्ज्वलनकर्ता मान्यवर बाबू हरिश्चंद्र जी भारतेंदु ब्रजभाषा के प्रधान कवि थे, उनके पिता गिरधर दास जी भी इस भाषा के चालीस ग्रंथों के कर्ता थे । भारतेंदु के मित्र और उपासकों में सब इसी भाषा के काव्य के पक्षपाती हैं, परंतु दैवदुर्विपाक से दो चार महाशय इस सर्वांग सुंदर भाषा की कविता से घृणा करते हैं और " मुरारेस्तृतीय: पन्था: " चलाना चाहते हैं, परंतु ब्रजभाषा की रक्षा ब्रजराज कुमार करेंगे ।"[५] इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि ब्रजभाषा के समर्थक अपनी पराजय होते देख, ईश्वर को पुकारने लगे थे ।

खड़ीबोली के समर्थकों का कहना था कि " परिवर्तित समय और स्थिति के साथ-साथ भाषा में भी परिवर्तन होना आवश्यक है ।" इन लोगों का मत था कि खड़ीबोली ही काव्यभाषा होनी चाहिए । ब्रजभाषा के समर्थकों ने खड़ीबोली के संबंध में यह आपत्ति उठाई थी कि यह बिलकुल नयी भाषा है ; इस भाषा का न कोई इतिहास है न ही भविष्य । पं० श्रीधर पाठक ने अपने लेख में

४- द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण- दूसरा भाग, प्रयाग, हिंदी और ब्रजभाषा ; पृष्ठ संख्या २४२ ।

५- प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण, दूसरा भाग, " ब्रजभाषा ", (पृष्ठ संख्या ५८)

खड़ीबोली के पक्ष में कहा कि "यह नाम (खड़ीबोली) चाहे नया हो, परन्तु हिंदी का यह रूप नया नहीं है, किंतु उतना ही पुराना है जितने कि उसके दूसरे रूप ब्रजभाषा, बैसवाड़ी, बुँदेलखंडी आदि हैं।"[६] ब्रजभाषा के समर्थकों द्वारा उठाई गई उपर्युक्त आपत्ति का, श्रीधर पाठक के उक्त मत से, निराकरण हो जाता है। पाठक जी की ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में समान गति थी। उन्होंने खड़ीबोली को काव्यभाषा बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया।

खड़ीबोली को काव्यभाषा बनाने में जितना परिश्रम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया, कदाचित् और किसी ने नहीं किया। उन्होंने खड़ी-बोली का परिष्कार किया। उसमें जितनी कमियाँ थीं, उन सब को दूर करने का सफल प्रयत्न किया। द्विवेदी जी ने लिखा था कि "किसी भी भाषा में नये-नये ग्रंथ पहले ही से नहीं निकलने लगते। जैसे-जैसे विद्याप्रचार और ज्ञानोन्नति होती जाती है वैसे ही वैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ भी बनते जाते हैं। अतएव जब तक नये-नये ग्रंथ निकलने का समय न आवे तब तक हमें चाहिए कि हम अंग्रेज़ी और संस्कृत आदि भाषाओं के अच्छे-अच्छे ग्रंथों का सरल हिंदी में अनुवाद करके अपने देश और अपने जन-समुदाय का कल्याण साधन करें। इन भाषाओं के साहित्य में अनंत ज्ञान-राशि भरी हुई है।"[७] यह मत उन लोगों के लिए उत्तर था जो कहते थे कि खड़ीबोली में नवीन साहित्य की कमी है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप द्विवेदी जी ने उच्चकोटि के अनेक ग्रंथों का खड़ीबोली में अनुवाद किया।[८] पं० श्रीधर पाठक ने इसी प्रवृत्तिवश अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध स्वच्छंदतावादी कवि गोल्डस्मिथ की "हरमिट" कविता का खड़ीबोली में सन् १८८६ ई० में "एकांतवासी योगी" शीर्षक में अनुवाद किया। पं० बद्रीनाथ भट्ट भी खड़ीबोली के प्रबल समर्थकों में से एक थे। द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के

६- प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण - दूसरा भाग, 'खड़ीबोली की कविता', पृष्ठ संख्या २७।

७- द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। कार्य विवरण दूसरा भाग, "हिंदी-साहित्य की वर्तमान अवस्था" पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० १५६।

८- मेघदूत, रघुवंश का अनुवाद और बेकन - विचार रत्नावली ।

अवसर पर उन्होंने अपने निबंध " खड़ीबोली की कविता " में लिखा कि " अब प्रश्न यह है कि खड़ीबोली वालों से जो कुछ पुराने लोग नाराज़ हैं, उसका कारण क्या है । एक कारण तो यह भी हो सकता है कि इन लोगों में ब्रजभाषा के प्रति श्रद्धा इतनी अधिक है कि ये सृष्टि के अंत तक उसका ही साम्राज्य चाहते हैं । "[९] भट्ट जी अपने इसी निबंध में एक स्थल पर कहते हैं कि " जब ब्रजभाषा को सब लोग समझते थे तब उसमें कविता होती थी - अब अधिकतर लोग ब्रजभाषा अच्छी तरह से नहीं समझते (इसी कारण ब्रजभाषा के ग्रंथों पर टीका की जाती है) । इसलिए अपना उत्साह उसमें खराब न कर खड़ीबोली में लगाना चाहिए । "[१०]

यदि उपर्युक्त मतों पर न्यायपूर्ण दृष्टि डाली जाए तो हमें ज्ञात होगा कि यह मत कितने सशक्त एवं तर्कपूर्ण हैं । काव्यभाषा की समस्या उत्पन्न हो जाने पर उसका कुप्रभाव काव्य पर पड़ा । उस समय काव्य की गति अवरुद्ध सी हो गई । इस संबंध में पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का यह कथन द्रष्टव्य है कि " कोई तो इसे वर्तमान हिंदी यानी खड़ीबोली की तरफ़ खैंचता है और कोई पड़ी बोली अर्थात् ब्रजभाषा की तरफ़ । इस खैंचातानी में पद्य-भाग ही जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया । कुछ उन्नति न कर सका । "[११]

परिवर्तन सृष्टि का आवश्यक और अनिवार्य नियम है । विश्व की समस्त भाषाओं में समय-समय पर परिवर्तन होते आये हैं । एक समय काव्यभाषा के लिए अवधी और ब्रजभाषा में से किसी एक को प्रयोग में लाने की समस्या उत्पन्न हुई थी । इसमें ब्रजभाषा को प्राथमिकता मिली । अवधी की पराजय का बहुत बड़ा कारण यह था कि उसको तुलसी जैसा कोई अन्य प्रतिभाशाली कवि नहीं मिला जबकि ब्रजभाषा को बहुत से प्रतिभा संपन्न कवि मिले । ठीक इसी प्रकार की स्थिति उस समय थी । पं० जगन्नाथ प्रसाद " रत्नाकर " के अतिरिक्त ब्रजभाषा को कोई अन्य सशक्त कवि नहीं मिला । ब्रजभाषा के अन्य कवि छिट-पुट रचनाएँ

९- द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण- भाग दूसरा - खड़ीबोली की कविता - पृष्ठ संख्या २२८ ।

१०- वही, पृष्ठ संख्या २२८ ।

११- द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण, दूसरा भाग - हिंदी [illegible] अवस्था " पृष्ठ १६८ ।

करते थे, लेकिन उनमें कोई दम नहीं रह गया था। खड़ीबोली के समर्थक निष्ठा एवं परिश्रम के साथ खड़ीबोली में परिष्कार करने लगे थे एवं उसमें उत्कृष्ट काव्य-रचना करने लगे थे। इसके परिणामस्वरूप खड़ीबोली ही, काव्य के लिए उपयुक्त मान ली गयी। कविगण प्रायः इसी भाषा में काव्य-रचना करने लगे। कुछ अड़ियल प्रवृत्ति के व्यक्ति आज भी ब्रजभाषा में काव्य-रचना करते हैं और इसे राष्ट्रभाषा बनाने तक के दिवा स्वप्न देखते हैं, लेकिन उन पर कोई ध्यान नहीं देता। हाँ, खड़ीबोली के समर्थक आज भी ब्रजभाषा की प्रशंसा करते हैं एवं उसके प्रति श्रद्धा व आदर का भाव रखते हैं, जैसे कोई अपने पूर्वज के प्रति आदर का भाव रखता है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रिय प्रवास' नामक प्रबंध-काव्य की रचना की। इसे खड़ीबोली हिंदी की प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रबंध-सृष्टि होने का गौरव प्राप्त है। इसका प्रकाशन सन् १९१४ ई० में हुआ। इसकी भूमिका में लिखा गया है कि 'प्रियप्रवास' के बन जाने से खड़ीबोली में एक महाकाव्य की न्यूनता दूर हो गई।' (पृ० २)। इस महाकाव्य के बन जाने से ब्रजभाषा को एक धक्का-सा पहुंचा। इसके बाद मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' (प्रकाशन १९३२ ई०) महाकाव्य की रचना की। जयशंकर 'प्रसाद' ने 'कामायनी' (प्रकाशन १९३६ ई०) की रचना की।

इन महाकाव्यों के प्रणयन से खड़ीबोली की रिक्तता समाप्त हो गई। ऐसी परिस्थिति में ब्रजभाषा के समर्थकों ने अपने हथियार डाल दिये। तब से इस समय तक खड़ीबोली हिंदी ही काव्य-भाषा बनी हुई है। इस प्रकार हिंदी साहित्य में भाषागत एकरूपता आ गई और उसकी द्विधा वृत्ति समाप्त हो गई अर्थात् गद्य और पद्य दोनों ही खड़ीबोली (परिनिष्ठित हिंदी) में रचा जाने लगा।'

(ख) "प्रेम-पथिक" के ब्रजभाषा और खड़ीबोली रूप का तुलनात्मक अध्ययन

"प्रेम-पथिक" का "प्रसाद" जी के काव्य-विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। "प्रसाद" जी ने "प्रेम-पथिक" सर्वप्रथम ब्रजभाषा में लिखा था जिसका कुछ अंश "इन्दु" पत्रिका के कला १, किरण २ भाद्रपद १९६६ वि० में प्रकाशित हुआ था। संवत् १९७० वि० में "प्रेम-पथिक" का खड़ीबोली रूप सामने आया। इस संदर्भ में प्रथम संस्करण (प्रेम-पथिक" का खड़ीबोली रूप) में "प्रसाद" जी का निवेदन द्रष्टव्य है -

> "इस छोटी सी पुस्तक के लिए किसी बड़ी भूमिका की आवश्यकता नहीं। केवल इतना कह देना अधिक न होगा कि यह काव्य ब्रजभाषा में आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था जिसका कुछ अंश तो "इन्दु" के प्रथम भाग में प्रकाशित भी हुआ था। यह उसी का परिवर्तित, परिवर्द्धित तुकान्त विहीन हिंदी रूप है।"
>
> काशी, विनीत,
> माघ शुक्ल ५, १९७० वि० जयशंकर "प्रसाद"

इस पुस्तक का यह छोटा-सा "निवेदन" अत्यंत महत्वपूर्ण है। ब्रजभाषा में रचित संपूर्ण "प्रेम-पथिक" अनुपलब्ध है। "इंदु" में प्रकाशित "प्रेम-पथिक" ही आज उपलब्ध है। उसके अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह अपने में पूर्ण है। यदि "निवेदन" में "कुछ अंश" न होता तो उचित रहता। ब्रजभाषा में लिखित संपूर्ण "प्रेम-पथिक" के उपलब्ध न होने के कारण इस "कुछ अंश" ही को पूर्ण मानना उचित रहेगा, क्योंकि वह संपूर्ण रूप कैसा रहा होगा, यह मात्र कल्पना का विषय है। "प्रेम पथिक" के ब्रजभाषा और खड़ीबोली रूपों का तुलनात्मक अध्ययन, इस बात का सशक्त प्रमाण होगा कि उस समय की काव्य-भाषा किस प्रकार विकसित हुई।

"इंदु" में प्रकाशित "प्रेम-पथिक" में, जो कि ब्रजभाषा में है, १३४ पंक्तियाँ हैं जबकि उसके प्रथम संस्करण में जो कि खड़ीबोली में है, २७० पंक्तियाँ हैं। उसके पूर्व कि हम देखें कि दोनों "प्रेम-पथिक" में क्या अंतर है, हमें दोनों ही कथा को संक्षेप में देखना पड़ेगा।

" प्रेम-पथिक " की कथा (ब्रजभाषा रूप)

" प्रेम-पथिक " के ब्रजभाषा रूप की कथा संक्षेप में यह है - एक पथिक ने अपना अत्यंत सुंदर घर और वाटिका को छोड़ दिया और वह प्रवास के लिए गया । जाते समय वह अत्यंत व्यथित हो गया । उसने ग्राम-देवता को प्रणाम किया । चलते-चलते सूर्य की किरणें प्रखर हो गईं । अत: वह वट-वृक्ष की छाया में बैठ गया । तभी चातक " पी कहाँ " " पी कहाँ " पुकारने लगा जिसे सुनकर उसे अपनी प्रिया का स्मरण हो आया । वह वहाँ से चल पड़ा । आगे उसे एक निर्मल जल का सरोवर मिला जिसमें कमल-दल का विकास हो रहा था । उसने जल पिया और वहाँ सीढ़ी पर बैठ गया । वह पुन: वहाँ से चल पड़ा और मरु-भूमि में जा पहुँचा । प्रेम-पथिक के कपोलों पर आँसू की धारा थी । वह मन ही मन सोचने लगा कि इस वन में एक वृक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई छाया नहीं है । यहाँ तृण भी दिखाई नहीं देता और जो है वह सूखता जा रहा है । मेघ भी भिन्न होकर बरसते नहीं । रात्रि और दिन में कोई अंतर दिखाई नहीं देता । क्या कहूँ किधर जाऊँ , कुछ भी अच्छा नहीं लगता । तभी एक मनुष्य वहाँ प्रकट हुआ और कहने लगा कि तुम तो अत्यंत कोमल प्रकृति के दिखायी देते हो । हे पथिक, यह वही उपवन कुंज है जिसमें अलि पुंज भूलकर भी पग नहीं रखता । उस वृक्ष में फूलों से युक्त कोई डाल नहीं है । इस उपवन में वायु कहीं भी नहीं रहती । इस वायु के स्पर्श से कली मुरझा जाती है । तुम्हें सुकुमार देखकर हम शिक्षा देते हैं कि हे पथिक, वापस लौट जाओ क्योंकि यह पथ दु:ख से परिपूर्ण है । इस पर पथिक ने पूछा - आप कौन हैं और किस स्थान पर रहते हैं जो मुझे सदाशय से महान् शिक्षा देते हैं । मेरे स्वामी मुझे प्रेम जाल से शीघ्र छुटकारा दिलाइये । वह मनुष्य बोला- " मैं स्वयं प्रेम हूँ । तुम अभय हो जाओ । तुम पर मेरी कृपा है । " यह सुनकर पथिक ने व्याकुल होकर प्रेम को पकड़ लिया और कहने लगा - तुमने इतने दिनों तक मुझे व्यथित किया और आज महान् शिक्षा दे रहे हो । प्रिय के नेत्रों में तुम्हीं थे । विष को तुमने ही पुतलियों में भर दिया था । काली और लम्बी लटों में फाँस के समान तुम्हीं थे । अमृतमयी मधुर मुस्कान तुम्हारी ही थी । कपोल पर फलकती

लालिमा तुम्हारा ही प्रतिबिंब थी । मैंने समझ लिया है कि तुम कितने कुशल बहुरूपिये हो क्योंकि नल आदि तुम्हारे ही जाल में फँस गये । शकुंतला, दमयंती आदि सुकुमारियों ने तुम्हारे ही कारण कष्ट पाया । राजकुमारी, कुँवर, विविध गंधर्व और नर, किन्नर, यक्ष आदि ने तुम्हारे तीर्थ में स्नान किया, किंतु वे कभी तृप्त नहीं हुए और उनकी प्यास कभी न बुझी । तुम सुरमा बनकर अपने ही लोगों को मारते हो । इस पर प्रेम हँसकर बोला" तुम धैर्य रखो और कष्ट सहो । कंपन क्रंदन, आलस्य, क्लेश ये सब मेरे आभूषण हैं । यदि प्रिय को प्राप्त करने की कामना तुम्हारे मन में है तो कमल की रीति अपनाओ । सदैव रस में निमग्न होकर प्रीति का उपयोग करो । हे पथिक, धैर्य रखकर पथ पर चलो । सदैव कटिबद्ध रहो और स्नेह में चूर रहो । पथिक कहता है कि शंका, दृढ़ता, इर्षा, शोक- ये सब तुम्हीं में केंद्रित हैं । प्रेम विपत्ति-सागर है, प्रेम रोग है । प्रेम का समुद्र अथाह है, इसमें पड़कर कोई किनारा नहीं प्राप्त कर सकता है ।

पथिक पुन: पुकार कर कहता है - प्रेम से कभी प्रीति न करो प्रेम का नाम भी मत लो । मैं औरों को चेतावनी दे रहा हूँ, क्योंकि मैंने अपनी दशा देख ली है । मैं अब तक प्रेम-जाल में फँसा हूँ । शरीर दुर्बल हो गया, नेत्रों से अश्रु-धार बह रही है । वही आशा रूपी वृक्ष की छाँह की रट लगी है ।

"प्रेम-पथिक" की कथा (खड़ीबोली रूप)

" प्रेम-पथिक" के खड़ीबोली रूप की कथा संक्षेप में इस प्रकार है- पथिक विचार करता है कि जो आज प्रसन्न है वह नष्ट भी हो सकता है । किरणें चमेली को प्रसन्नता से रंजित करती हैं, किन्तु कौन जानता है कि उसे (चमेली को) अंधकार में विलीन स भी होना पड़ेगा । ईश्वर की अद्भुत लीला को कौन समझ सकता है । जीवन पर पड़ा हुआ भविष्य -पट कौन उठा सकता है ? जिस मंदिर में कपूर जलता रहता है, यह कौन बता सकता है कि कभी ऐसी स्थिति आ सकती है कि वहाँ तेल भी जलने न पायेगा । तभी पथिक सरिता के रम्य तटों में एक सुंदर कुटिया को देखता है । वहाँ एक दु:खी तापसी बैठी है । वह पथिक से कहती है कि रात्रि हो जाने के कारण वह वहीं रुक जाए और अपनी आत्म कथा सुनाये ।

पथिक तापसी के अनुरोध को स्वीकार कर लेता है । वह अपनी आत्म-कथा सुनाता है -" जिस नगरी में हम रहते थे उसका नाम " आनन्द नगर " था क्योंकि वहां सदैव आनंद स्रोत उमड़ा करता था । नदी के तट पर अपना एक सुंदर सा घर था जिसमें मैं पिता के साथ रहता था । पास में एक सज्जन अपनी कन्या-पुतली के साथ रहते थे । पिता और वे सज्जन परम मित्र थे । हमदोनों परस्पर खेलते थे । रात्रि होने पर दोनों के पिता हम दोनों को अलग-अलग सदृश अलग कर देते थे । कुछ अज्ञात कारणों से तापसी पुलकित हो कहने लगी " पथिक तुमने अपना नाम अभी तक नहीं बताया ।" पथिक ने कहा -" मुझे पहले कथा सुन लो, फिर मैं अपना नाम बताऊंगा । पिता वृद्ध हुए, रोग ग्रस्त हुए, तो उन्होंने अपने मित्र के हाथों मुझे सौंप दिया । इसी अवसर पर कवि कहता है कि मित्रता की बातें, कोरी कल्पना मात्र है ।

पथिक पुन: कहता है - पिता के मरने पर मैं पिता-मित्र के घर रहने लगा । प्रणयांकुर के सदृश बालिका और मैं बढ़ते थे । हमलोग नित्य नई क्रीड़ा करते । एक दिन की बात है, जब हम अपनी फुलवारी से अच्छे- अच्छे फूल लाये, तब हमने देखा कि आंगन में अन्य कई लोग एकत्रित थे और वहां चांदी के थाल में सामान रखा था । पूछने पर पता चला कि पुतली का फलदान आ रहा है । मेघ के अंतर में प्रेम का चंद्रमा छिप गया । हृदय-कुसुम का कुचला जाना किसी को नहीं सुनाई पड़ा । इसके पश्चात् मैंने आनंद नगर छोड़ दिया और प्रेम के पथ का पथिक हो गया । एक दिन मैं शिला पर बैठकर चंद्रमा को देख रहा था । चंद्रमा के प्रतिबिंब से एक देवदूत सा उज्ज्वल व्यक्ति प्रकट हुआ और कोमल कंठ से कहने लगा- " पथिक , प्रेम की राह अनोखी है । इस पथ में यदि ऊपर घनी छाया है तो नीचे कांटे भी बिछे हुए हैं । प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना का हवन करना होगा । इस पथ का उद्देश्य शांत भवन में टिक रहना नहीं है वरन् उस सीमा पर पहुंचना है जिसके आगे राह नहीं होती । प्रेम का सिद्धांत है - अपना अस्तित्व ही समाप्त कर देना । जो प्रियतम को संपूर्ण विश्व में व्याप्त देखता है उसको विरह नहीं सताता । यह कहते हुए स्वर-लहरी सी वह मूर्ति लोप हो गई ।" पथिक कहता है कि नयनों से, तभी से, इस विश्व को प्रियतम-मय देखता हुआ यहाँ आया हूँ । वह कथा सुननेवाली

तापसी ही पुतली अथवा कमेली थी । वह वृद्ध हो गयी है । किशोर के पूछने पर कमेली कहती है कि उस विवाह में एक क्षण के लिए भी मुझे स्नेह नहीं मिला । पति को मात्र धन से मोह था । स्वार्थी मित्रों ने पति को निर्धन कर दिया । पति की मृत्यु हो गई । मित्र की पत्नी से मित्रों ने काम-वासना प्रकट किया । एक वृद्ध की प्रेरणा से मैं यहाँ वन में आकर रहने लगी । किशोर ने कहा कि अपने प्रेम का विस्तार कर दो । कल्याण-मार्ग में लग जाओ । विश्वात्मा ही सुंदरतम है । हम-तुम दोनों ही उस सौंदर्य सुधासागर के कण हैं । आओ हम हृदय -हृदय से मिल जायें । कमेली ने भी कहा - हमलोग सौंदर्य-प्रेम निधि में मिल जावें, जहाँ अखंड शांति रहती है । दोनों के दृग-तारा स्थिर होकर अरुणोदय देखने लगे । संक्षेप में, " प्रेम-पथिक " के खड़ीबोली रूप की कथा यही है ।

अब हम उन परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे जो " प्रेम-पथिक " के ब्रजभाषा रूप में और " प्रेम-पथिक " के खड़ीबोली रूप में दृष्टिगत हुए हैं । ये परिवर्तन निम्नलिखित हैं -

कथानक में परिवर्तन -

" इंदु " पत्रिका में प्रकाशित ब्रजभाषा के " प्रेम-पथिक " में प्रेम के पथिक की कथा अन्य पुरुष में कही गई है । यह परंपरा भी चली आ रही थी । प्रायः कथा अन्य पुरुष में ही कही जाती थी । इसमें कथा कवि द्वारा कही गई है । इसके विपरीत खड़ीबोली के " प्रेम-पथिक " में किशोर ही तापसी को उत्तम पुरुष में अपनी कथा सुनाता है । दोनों कथाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी-बोली के " प्रेम-पथिक " की कथा अधिक रोचक, परिष्कृत एवं गठी हुई है ।

खड़ीबोली के " प्रेम-पथिक " के आरंभ में कमेली का जो वर्णन हुआ है, वह " इंदु " में प्रकाशित ब्रजभाषा के " प्रेम-पथिक " में नहीं मिलता । कमेली का वर्णन स्वयं में पूर्ण है । यदि और गहराई से देखें तो यही वर्णन इस " प्रेम-पथिक " की कथावस्तु है क्योंकि आगामी कथा का इस वर्णन से पर्याप्त साम्य है । आरंभ के कमेली के वर्णन में कहा गया है कि जो कमेली आज आनंदित हो रही है, कौन जानता है कि उसे अंधकार में भी छिपना होगा । इसके बाद मुख्य कथा में भी यही स्थिति

दिखाई देती है। चमेली और किशोर प्रसन्न चित्त हो विचरण किया करते थे, वही एक दिन की घटना से दु:खी रहने लगे। इस प्रकार के वर्णन से परिवर्तित 'प्रेम-पथिक' की कथा अत्यंत कलात्मक हो गई। इस प्रकार की कला अथवा इस प्रकार की टैक्नीक ब्रजभाषा के 'प्रेम - पथिक' में नहीं मिलती।

"प्रेम-पथिक" के दोनों रूपों में प्रेम का प्रवेश होता है किन्तु दोनों के प्रवेश करने में अंतर है। ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" में प्रेम एक मनुष्य के रूप में अचानक उपस्थित होता है जबकि खड़ीबोली के "प्रेम पथिक" में प्रेम का प्रवेश। दूसरे ढंग से हुआ है। खड़ीबोली के "प्रेम-पथिक" में पथिक एक दिन शिला पर बैठकर चंद्रमा को देख रहा था। चंद्रमा के प्रतिबिंब से एक देवदूत-सा उज्ज्वल व्यक्ति (जो कि प्रेम था) प्रकट हुआ।

परिवर्तित" प्रेम-पथिक" में प्रेम का प्रवेश ब्रजभाषा के 'प्रेम-पथिक' में प्रेम के प्रवेश से, अधिक स्वाभाविक तथा काव्योचित हुआ है। ब्रजभाषा के" प्रेम-पथिक" में प्रेम और पथिक का संभाषण हुआ है, जबकि परिवर्तित" प्रेम-पथिक" में प्रेम के कथन को पथिक मात्र सुनता ही है। ब्रजभाषा के" प्रेम-पथिक" में प्रेम, पथिक को प्रेम-पथ की कठिनाइयों को ही बताता ही है, साथ ही पथिक को प्रत्यावर्तन के लिए प्रेरित भी करता है :-

" लखि सुकुमार तुम्हें हम शिक्षा देत।
फिरहु" पथिक" यह मग अति दु:ख निकेत ।।"

इसके विपरीत परिवर्तित" प्रेम-पथिक" में प्रेम, पथिक को प्रेम-पथ की कठिनाइयों का वर्णन मात्र करता है, उसे इस पथ से वापस लौट जाने को नहीं कहता। इससे स्पष्ट विदित होता है कि प्रेम का आगमन और उसका उपदेश परिवर्तित" प्रेम-पथिक" में काव्योचित एवं सार्थक बन पड़ा है, क्योंकि प्रेम यदि पथिक को अपने ही पथ से (प्रेम-पथ से) प्रत्यावर्तन के लिए कहता है तो वह उचित नहीं प्रतीत होता है।

परिवर्तित" प्रेम-पथिक" में ब्रजभाषा के" प्रेम-पथिक" की अपेक्षा मार्मिकता अधिक है। इसमें नारी तापसी हो जाती है। यह घटना मर्म को अत्यधिक स्पर्श करती है।

ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" की कथा में उतनी रोचकता नहीं है, जितनी खड़ीबोली के "प्रेम-पथिक" में है। जिस समय "प्रसाद" जी ने ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" खड़ीबोली में रूपांतर किया, उस समय तक वे सज्जन[१२] और कल्याणी-परिणय[१३] जैसे नाटक लिख चुके थे। अतः खड़ीबोली के "प्रेम-पथिक" की कथा में नाटकीयता आ गई जिसके फलस्वरूप कथा में अत्यंत रोचकता आ गई है। पथिक तापसी को अपनी आत्म-कथा सुनाता है। तापसी कुछ अज्ञात कारणों से पुलकित हो पथिक से कहती है- "पथिक, तुमने अपना नाम अभी तक नहीं बताया। पथिक कहता है -" सुने, पहले कथा सुन लो, फिर मैं नाम बताऊंगा।" कथा सुनने के पश्चात् तापसी को निश्चय हो जाता है कि यह पथिक अन्य कोई नहीं, उसका बाल्य-प्रेमी किशोर ही है। वह उसे "किशोर" कहकर संबोधित करती है। पथिक भी उसे पहचान जाता है और उसे "चमेली" कहकर संबोधित करता है। इस तरह किशोर और चमेली का मिलन नाटकीय ढंग से होता है। यदि पथिक ने तापसी को पहले ही अपना नाम बता दिया होता, तो कथा की संपूर्ण रोचकता नष्ट हो जाती तथा पाठक की जिज्ञासा भी वहीं समाप्त हो जाती और पाठक को आगे की कथा को पढ़ने और उसका अंत जानने में कोई उत्सुकता न रहती। स्पष्ट है कि खड़ीबोली के "प्रेम-पथिक" की कथा "ब्रजभाषा" के प्रेम पथिक" से अधिक रोचक है।

प्रेम का स्वरूप -

ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" में "प्रसाद" जी की प्रेम के संबंध में कोई निश्चित धारणा न थी। परिवर्तित" प्रेम -पथिक" के लिखते-लिखते प्रेम के संबंध में, उनकी धारणा निश्चित हो गई थी। कवि समझ गया था कि समस्त संसार सुधा का सागर है। विश्वात्मा ही सुंदरतम है। हम सब उस सौंदर्य सुधा सागर के कण है। जो अपने प्रेम को व्यक्ति विशेष में केंद्रित कर देता है, वह दुख पाता है। जो प्रियतम को संपूर्ण विश्व में व्याप्त देखता है, उसको विरह-दुख नहीं सताता -

---

१२- सज्जन - इंदु" पत्रिका (सन् १६१०-११)

१३- कल्याणी-परिणय, नागरी प्रचारिणी पत्रिका(सन् १६१२,भाग २)

" प्रियतम-मय यह विश्व निरखता फिर उसको है विरह कहाँ
फिर तो वही रहा मन में, नयनों में प्रत्युत जग भर में"[१४]

मनुष्य को चाहिए कि विश्वात्मा को आत्मसमर्पण करे । प्रकृति में मन को उलझाना ठीक नहीं है वरन् प्रकृति को भी विश्व-प्रेम के ही अंतर्गत समझना चाहिए -

" आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है ।"[१५]

" प्रसाद" जी परिमित प्रेम के समर्थक नहीं थे वरन् उसे विश्व-व्यापी बनाने के पक्ष में थे । जहाँ स्वार्थ और कामना है, वहां कृत्रिम प्रेम की ही संभावना है । प्रेम रूपी यज्ञ में स्वार्थ और कामना का हवन कर देना पड़ेगा । प्रेम एक पवित्र पदार्थ है । इसमें कपट के लिए कहीं भी स्थान नहीं है । प्रेम ही के कारण संपूर्ण जगत गतिशील है । इसका सिद्धांत है - अपना अस्तित्व ही समाप्त कर देना और विश्व को प्रियतम-मय देखना । इस छोटे से काव्य में " प्रसाद" जी ने बताया है कि प्रेम में शरीर का शरीर से मिलन उचित नहीं है वरन् हृदय का हृदय से सम्मिलन ही उचित है ।

इस प्रकार ब्रजभाषा के " प्रेम-पथिक" की अपेक्षा खड़ीबोली के " प्रेम-पथिक" में प्रेम का एक स्पष्ट , स्वस्थ एवं व्यापक स्वरूप मिलता है ।

<u>प्रतीक- विधान</u>

परिवर्तित " प्रेम-पथिक" में प्रतीक-विधान प्रशंसनीय हुआ है । काव्य के प्रारंभ में चमेली का जो वर्णन हुआ है, वही मुख्य कथा में भी वर्णित है -

संध्या की, हेमाभ तपन की, किरणें जिसको छूती हैं
रंजित करती हैं देखो जिस नई चमेली को मुद से
कौन जानता है कि उसे तम में जाकर छिपना होगा ?
या फिर कोमल विधुकर उसको मीठी नींद सुला देंगे । [१६]

१५- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २३ ।
१६- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १ ।

चमेली और किशोर का सुखमय जीवन व्यतीत हो रहा था किंतु कौन जानता था कि एक दिन दोनों विलग हो जायेंगे और किशोर प्रेम-पथिक हो जायेगा और चमेली तापसी बन जायेगी । साथ ही, कौन जानता था कि उनका मिलन भी ऐसे नाटकीय ढंग से होगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि संपूर्ण कथा के लिए उक्त प्रतीक-विधान उचित बन पड़ा है ।

प्रतीक का निर्वाह निम्नलिखित पंक्ति में भी सुस्पष्ट रूप से हुआ है -

" मेघ खंड उस स्वच्छ सुधामय विधु को एक लगा ढँकने "[१७] .

यहाँ " मेघ-खंड " फल-दान का प्रतीक है और " स्वच्छ सुधामय विधु " किशोर और चमेली के निष्कपट, मधुर बचपन का प्रतीक है । फलदान दोनों के सुखमय जीवन को दु:खमय बनाने की ओर अग्रसर हो गया था । कुछ समय के पश्चात फल-दान ने दोनों के सुखमय जीवन को पूर्णत: दुखमय बना दिया -

" देखो - चंद्र छिप गया पूरा एक मेघ के अंतर में "[१८]

ब्रजभाषा के " प्रेम-पथिक " में इस तरह के प्रतीकों का प्रयोग कहीं नहीं हुआ । इस गुण के कारण परिवर्तित " प्रेम-पथिक " अपेक्षाया अधिक काव्यात्मक हो गया है ।

माषा में परिवर्तन -

" इंदु " में प्रकाशित " प्रेम-पथिक " में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, जबकि परिवर्तित " प्रेम-पथिक " में शुद्ध खड़ीबोली हिंदी का प्रयोग हुआ है । " प्रसाद " जी ने अपने समकालीन कवियों की भांति आरंभिक काव्य-रचना ब्रजभाषा में की किंतु बाद में कवियों ने काव्य-रचना के लिए खड़ीबोली ही को चुना । इसी कारण से " प्रसाद " जी ने भी " प्रेम-पथिक " का खड़ीबोली में रूपांतर किया । यह निश्चित है कि यदि उन्होंने " प्रेम-पथिक " की भाषा न बदली होती तो, वह हिंदी साहित्य में इतनी महत्ता नहीं प्राप्त कर सकता था ।

१७- प्रेम-पथिक, पृष्ठ संख्या १-२ ।

१८- प्रेम-पथिक, पृष्ठ संख्या १-२ ।

परिवर्तित 'प्रेम-पथिक' की भाषा परिनिष्ठित खड़ीबोली हिंदी है। यद्यपि 'प्रसाद' जी ने बीस वर्ष की अवस्था तक ब्रजभाषा ही में काव्य-रचना की थी, तथापि खड़ीबोली पर भी उनका अधिकार था। 'प्रेम-पथिक' की भाषा कहीं भी असाहित्यिक नहीं होने पायी है।

इसकी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों की बहुलता है। इस काव्य में कुछ सुंदर वाक्यों का प्रयोग हुआ है, जिससे खड़ीबोली पर उनका ('प्रसाद' जी का) अधिकार प्रकट होता है जैसे -

'शुभे ! अतीत कथायें यद्यपि कष्ट हृदय को देती हैं'[१८]

+ + + +

पथिक, प्रेम की राह अनोखी भूल-भूल कर चलना है'[१९]

+ + + +

प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वर्ग-विहारी होने का फल पाओगे,'[२०]

साथ ही 'प्रेम-पथिक' के खड़ीबोली रूप की भाषा में लाक्षणिकता भी विद्यमान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'प्रेम-पथिक' की महत्ता, काफ़ी सीमा तक उसकी सुसंस्कृत भाषा के कारण है। खड़ीबोली को काव्यभाषा बनाने में परिवर्तित 'प्रेम-पथिक' का कुछ न कुछ सहयोग अवश्य है।

छंद में परिवर्तन

ब्रजभाषा के 'प्रेम-पथिक' में कई छंदों का प्रयोग हुआ है और यह रचना प्रायः तुकांत है। खड़ीबोली के 'प्रेम-पथिक' में एक ही प्रकार के छंद का प्रयोग किया है। यहाँ सर्वत्र तीस मात्राओं के छंद का प्रयोग हुआ है। यह हिंदी काव्य के लिए नितांत नवीन प्रयोग था। छंद में प्रवाह एवं संगीतात्मकता है। जैसा कि 'प्रसाद' जी ने 'प्रेम-पथिक' में निवेदन किया है, यह रचना तुकांतविहीन है।

१९- प्रेम-पथिक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या ६।
२०- प्रेम-पथिक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या १६।
२१- प्रेम-पथिक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या १६।

उन्होंने ब्रजभाषा के 'प्रेम-पथिक' में ही तुक के संबंध में स्वतंत्रता लेनी आरंभ कर दी थी जैसा कि डॉ० प्रेमशंकर लिखते हैं "इसके ब्रज संस्करण में ही प्रसाद ने छंद के विषय में थोड़ी-सी स्वच्छंदता लेना आरंभ कर दी थी। चारु, उद्गार, सुविचार, वारि, आदि में तुक पूर्णतया नहीं मिलते। आगे चलकर खड़ीबोली का रूप तो अतुकांत ही हो गया।"[22]

इसी तरह ब्रजभाषा के 'प्रेम-पथिक' में है, मन में तुक नहीं मिलता, परिवर्तित 'प्रेम-पथिक' भावावेग में कहीं कहीं तुक मिल गया है। इसमें अर्थ के अनुसार विराम चिन्हों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार एक ही छंद के प्रयोग से परिवर्तित 'प्रेम-पथिक' में एक सहज प्रवाह-सा आ गया है।

अलंकार-विधान

खड़ीबोली के 'प्रेम-पथिक' में प्राय: सभी प्रमुख अलंकारों का समावेश हुआ है। साथ ही, इनसे भाषा में गरिमा भी आ गई है क्योंकि ये सहज रूप में आये हैं। उपमा अलंकार का प्रयोग नवीनता लिये हुए हैं। उपमाएँ, अपनी मौलिकता एवं विलक्षणता के कारण तत्कालीन हिंदी साहित्य में अपना अलग वैशिष्ट्य रखती हैं। उस समय तक उपमान के रूप में अमूर्त तत्वों का प्रयोग नहीं किया जाता था। उपमान प्राय: स्थूल ही होते थे। इसके विपरीत इस काव्य में 'प्रसाद' जी ने अमूर्त तत्वों का भी उपमान के रूप में उपयोग किया। इससे अलंकार विधान में नवीनता आ गई, जैसा कि श्री रामनाथ 'सुमन' ने कहा है - "इसकी उपमाओं पर, इसके अलंकारों पर भी स्वच्छता, सात्विकता, सुन्दरता और संदिग्धता की छाप है।"[23]

'प्रेम-पथिक' की उपमाओं में उपमान नवीनता लिए हुए हैं इस संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

"द्रुमदल आच्छादित कुटीर है, जिस पर लतिका चढ़ी हुई
ईश दया-सी छाई है, उसमें सामग्री एक नहीं।"[24]

२२- प्रसाद का काव्य - डॉ० प्रेमशंकर ; पृष्ठ संख्या १२१ ।
२३- कवि 'प्रसाद' की काव्य-साधना (छठवाँ संस्करण) पृष्ठ ६३-६४ ।
२४- प्रेम-पथिक, पृष्ठ संख्या ३ (प्रथम संस्करण)।

इन पंक्तियों में अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया गया है। निम्न लिखित पंक्तियों में उपमान अत्यंत सात्विकता लिये हुए हैं -

"सुंदर कुटी देख लो कैसी रम्यतटी में सरिता के
शांत तपस्वी-सी है वल्ली के झुरमुट में बनी हुई।"[२५]

इससे स्पष्ट होता है कि परिवर्तित प्रेम-पथिक"(प्रथम संस्करण) में अलंकार-योजना मौलिकता लिए हुए हैं और अलंकारों में भी मुख्य रूप से उपमा अलंकार। इनके प्रयोग से काव्यभाषा में सौंदर्य आ गया। यह विशेषता ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" में नहीं दृष्टिगत होती है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त विशेषताओं के कारण परिवर्तित "प्रेम-पथिक" (जो कि खड़ीबोली में है) ब्रजभाषा के "प्रेम-पथिक" से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं पूर्ण हो गया है।

२५-"प्रेम-पथिक" (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३।

(ग) "प्रेम-पथिक" के प्रथम और द्वितीय संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन

"प्रेम-पथिक" का प्रथम संस्करण सन् १९१३ ई० (१९७० वि०) में 'साहित्य सुमन माला सीरीज़' के अंतर्गत प्रकाशित हुआ था। यह "साहित्य सुमन माला" की चौथी पुस्तक थी। इसकी पृष्ठ संख्या २५ है। इसका द्वितीय संस्करण सन् १९२८ ई० (सं० १९८५) में "भारती भंडार" बनारस सिटी" से प्रकाशित हुआ। इसकी पृष्ठ संख्या २६ है।

प्रथम संस्करण की अनेक पंक्तियों में, द्वितीय संस्करण में, संशोधन किये गये हैं। प्रथम संस्करण की कुछ पंक्तियों में शब्द-परिवर्तन कर दिये गये। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

या फिर कोमल विधुकर उसको मीठी नींद सुला देंगे।[२६]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है-या फिर

या फिर कोमल विधुकर उसको मीठी नींद सुला देगा।[२७]

तृतीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है :-

या फिर कोमल मधुकर उसको मीठी नींद सुला देगा ?

प्रथम संस्करण में "विधुकर" (एकवचन) के साथ देंगे (बहुवचन) क्रिया का प्रयोग व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध है। द्वितीय संस्करण में "देगा" प्रयोग से उक्त दोष दूर हो गया। साथ ही, द्वितीय संस्करण के "विधुकर" के स्थान पर तृतीय संस्करण में "मधुकर" का प्रयोग हुआ है। "विधुकर" का कली के पुष्प को मीठी नींद में सुला देना उतना काव्यात्मक प्रतीत नहीं होता, जितना कि "मधुकर" का कली के पुष्प को सुला देना प्रतीत होता है।

प्रथम संस्करण की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है -

तोड़ी जाकर मिल डालों से, फिर संगिनी कहीं गण है।[२८]

२६- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १। चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १।
२७- प्रेम-पथिक (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १।
२८ प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण), पृष्ठ संख्या १।
चित्राधार (प्रथम संस्करण), पृष्ठ संख्या १।

द्वितीय संस्करण में " कली गण " के स्थान पर " कली-कुल " [२६] का प्रयोग किया गया है । " गण " के स्थान पर " कुल " शब्द रखने से अर्थ में परिवर्तन नहीं आया । कली के समूह के लिए " गण " शब्द कुछ कठोरता का भाव लिये है, जबकि " कुल " शब्द से कोमलता का आभास मिलता है । साथ ही, इस परिवर्तन से अनुप्रास अलंकार भी पंक्ति में आ गया ।

प्रथम संस्करण की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है -

विशद कल्पना-मंदिर सा कब चूर्ण २ हो जावेगा ।[३०]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है -

विशद कल्पना-मंदिर -सा कब चूर-चूर हो जावेगा [३१]

प्रथम संस्करण के " चूर्ण चूर्ण हो जावेगा " के स्थान पर " चूर चूर हो जावेगा " कर दिया गया । वास्तविक मुहावरा है - चूर चूर होना । इसका अर्थ है, बिल्कुल नष्ट हो जाना । इस मुहावरे को (चूर्ण चूर्ण हो जाना) परिवर्तित कर देने से मुहावरे का रूप कृत्रिम हो गया । इस कारण, भाषा की शक्ति कुछ कम हो गयी । अत: द्वितीय संस्करण में इसे परिवर्तित कर देने से मुहावरे की अस्मिता की रक्षा हो गयी ।

प्रथम संस्करण की निम्नलिखित पंक्ति उल्लेखनीय है -

जैसे किसी दुर्ग की खाईं में <u>यमुना जल भरा हुआ</u> ।[३२]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस प्रकार है -

जैसे किसी दुर्ग की खाईं में <u>श्यामल जल भरा हुआ</u> ।[३३]

प्रथम संस्करण के " यमुना जल " के स्थान पर " श्यामल जल " कर दिया गया । यहाँ " यमुना " का जल कहने की विशेष आवश्यकता न थी । इस कारण, इसके

२६- प्रेम-पथिक (द्वितीय संस्करण) , पृष्ठ संख्या २ ।
३०- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ३ ।
चित्राधार (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ३ ।
३१- प्रेम-पथिक (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ संख्या ३ ।
३२- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ३ ।
चित्राधार (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ३ ।
३३- प्रेम-पथिक (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ संख्या ४ ।

स्थान पर " श्यामल " शब्द का प्रयोग कर दिया । साथ ही " श्यामल जल " से " यमुना जल " का भी बोध हो जाता है ।

प्रथम संस्करण की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है -

एक तापसी है व्यतीतयौवना सामने भी बैठी ।[३४]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है -

एक तापसी भी है बैठी दुख पददलिता छाया-सी ।[३५]

प्रथम संस्करण की पंक्ति से विदित होता है कि तापसी का यौवन व्यतीत हो गया । इसके विपरीत द्वितीय संस्करण की पंक्ति से व्यंजित होता है कि तापसी का संपूर्ण व्यक्तित्व ही नष्ट हो गया । इस पंक्ति से उसकी दयनीय अवस्था का बोध सरलता से हो जाता है ।

इस संदर्भ में प्रथम संस्करण की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

क्षण भर में ही बने " मित्रवर " मुँह पीछे फिर दुर्जन हो

"प्रिय" हो " प्रियवर " हो यों तुम हो काम पड़े पर " परिचित " हो ।[३६]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्तियाँ इस रूप में हैं -

क्षण भर में ही बने मित्रवर औरंग या सखा समान

" प्रिय " हो, " प्रियवर " यों सब तुम हो काम पड़े पर " परिचित " हो ।[३७]

यह परिवर्तन उचित हुआ है क्योंकि पंक्ति " मुँह पीछे फिर दुर्जन हो " का तादात्म्य पंक्ति " क्षण भर में ही बने मित्रवर " के साथ ही जुड़ता है। उसका आगे की पंक्ति से कोई साम्य नहीं बैठता । इसके विपरीत पंक्ति " औरंग या सखा समान " का अपने पहले और बाद की भी पंक्तियों से संबंध जुड़ जाता है ।

प्रथम संस्करण की कुछ पंक्तियों को, द्वितीय संस्करण में स्थान नहीं मिला । उदाहरणार्थ प्रथम संस्करण की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है -

हरे पत्र, कोमल किसलय में अपना अंग छिपाती है ।[३८]

३४- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ४ । चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ४ ।
३५- प्रेम-पथिक (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ४ ।
३६- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६ ।
चित्राधार (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६ ।
३७- प्रेम-पथिक (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १० ।
३८- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १ ।
चित्राधार (,, ,,) ; ,, ,, १ ।

उक्त पंक्ति को द्वितीय संस्करण में नहीं रखा गया । यों तो पंक्ति में ऐसा कोई दोष नहीं था, फिर भी उसे इस कारणवश हटा दिया गया क्योंकि यहाँ चमेली के विकसित होने का प्रसंग चल रहा है और उक्त पंक्ति से चमेली के संकुचित होने का बोध होता है ।

प्रथम संस्करण की कुछ पंक्तियों में किए गए परिवर्तन से उपमानों को वैशिष्ट्य प्राप्त हो गया । उदाहरण प्रस्तुत है -

सच्चा मित्र कहाँ मिलता है ? भला बताओ तो मुझको ।[३६]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में मिलती है -

सच्चा मित्र कहाँ मिलता है ? दुखी हृदय की छाया-सा ।

उक्त पंक्ति में अमूर्त उपमान का प्रयोग किया गया है जो निश्चित रूप से नवीनता लिये हुए है ।

००

३६- प्रेम-पथिक (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६ ।
चित्राधार (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६ ।

कानन-कुसुम

कानन कुसुम

" कानन-कुसुम" का प्रथम संस्करण " साहित्य सुमनमाला सीरीज़ " के अंतर्गत प्रकाशित हुआ । उस सीरीज़ की यह तीसरी पुस्तक है । इसके प्रथम संस्करण में इसके प्रकाशित होने का वर्ष नहीं दिया गया । इसके तृतीय संस्करण में दी गई संस्करण सूची के अनुसार, प्रथम संस्करण सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ था, किंतु डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने कुछ प्रमाण देकर इसके प्रकाशित होने का वर्ष सन् १९१३ निर्धारित किया है - " इसके तृतीय संस्करण में संस्करण-सूची दी गई है । इस सूची के अनुसार इसका प्रथम संस्करण १९१२ में हुआ था । किंतु " कानन कुसुम " प्रथम संस्करण के आवरण के तृतीय पृष्ठ पर " सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य " नामक पुस्तक का विज्ञापन दिया गया है और विज्ञापन में आचार्य द्विवेदी जी की सम्मति, सरस्वती सन् १९१३ की चौथी संख्या (अप्रैल ' १३) से उद्धृत की गई है । इसलिए " कानन कुसुम " का प्रकाशन अप्रैल १९१३ से पहले का नहीं हो सकता । फिर " कानन-कुसुम " की रचनाओं में से " करुण-क्रंदन ", " भक्ति-योग ", " निशीथ नदी " अप्रैल " १३ के " इंदु " में और " प्रथम प्रभात " तथा " दलित कुमुदिनी " मई ', १३ के " इंदु " में प्रकाशित हुई है । " विदाई " जुलाई ' १३ के इंदु में प्रकाशित हुई । इससे भी सिद्ध होता है कि " कानन कुसुम " का प्रथम संस्करण जुलाई ' १३ के पश्चात् कभी १९१३ ही में हुआ ।"[१]

इस प्रकार " कानन कुसुम " के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् १९१३ में होना निश्चित होता है । इस संस्करण की पृष्ठ संख्या ६६ है । प्रथम संस्करण में चालीस कविताएँ भिन्न शीर्षकों से स्वतंत्र रूप में हैं और " पराग " शीर्षक के अंतर्गत बीस रचनाएँ हैं ।

"कानन कुसुम " का द्वितीय संस्करण " चित्राधार " के प्रथम संस्करण (सन् १९१८) में संगृहीत हुआ । यह परिवर्तित रूप में है । प्रथम संस्करण ज्यों का

१- प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन - पृष्ठ संख्या ३७ ।

त्यों इसमें संकलित है। पृष्ठ ६६ पर "शुभम्" मुद्रित है, इससे विदित होता है कि इसके बाद की समस्त कविताएँ जोड़ी गयी हैं। द्वितीय संस्करण एक सौ ग्यारह पृष्ठों का है। प्रथम संस्करण के अतिरिक्त जो कविताएँ जोड़ी गई हैं वे किसी विषय-विशेष को ध्यान में रखकर नहीं सम्मिलित की गईं। "कानन-कुसुम" के द्वितीय संस्करण में जोड़ी गईं, कविताएँ प्राय: "इंदु" में समय-समय पर प्रकाशित हुई थीं। "कुरुक्षेत्र" नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। "चित्राधार" के प्रथम संस्करण (१९१८ ई०) में जितनी रचनाएँ हैं, वे सभी किसी न किसी रूप में (पुस्तकाकार में अथवा पत्रिकाओं में) प्रकाशित हो चुकी थीं। "कानन कुसुम" स्फुट कविताओं का एकमात्र संकलन था, अत: अन्य स्फुट कविताएँ "कानन कुसुम" (द्वितीय संस्करण) में जोड़ दी गयीं।

"कानन कुसुम" का तृतीय संस्करण १९२९ ई० (ई०१९८६) में "पुस्तक मंडार, लहेरिया सराय" से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण की पृष्ठ संख्या ६४ है। द्वितीय संस्करण और तृतीय संस्करण में अनेक अंतर दृष्टिगत होते हैं। इनमें हुए परिवर्तनों के अध्ययन से पूर्व, प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय संस्करण की कविताओं को देखना आवश्यक है - (पृष्ठ ५१ व ५२ पर कविताओं की सूची दी गई है)

द्वितीय संस्करण की ब्रजभाषा की कविताएँ प्राय: "चित्राधार" के द्वितीय संस्करण में चली गयीं। कुछ खड़ीबोली की कविताएँ "झरना" के द्वितीय संस्करण में चली गयीं। साथ ही, कुछ खड़ीबोली की कविताओं को बाद में कहीं भी स्थान नहीं दिया गया। इन सब का विवेचन आगे चलकर प्रसंगवश किया जाएगा।

"कानन कुसुम" के द्वितीय संस्करण का "समर्पण" तृतीय संस्करण के "समर्पण" से कुछ दीर्घ है। द्वितीय और तृतीय संस्करण में सर्वप्रथम अंतर भाषागत है। हिंदी-साहित्य-जगत् में 'प्रसाद' जी का अभ्युदय ऐसे समय हुआ जबकि काव्य-भाषा का रूप अनिश्चित-सा था। कवियों के समक्ष ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिंदी, दोनों ही भाषाओं का प्रलोभन था। इस मनोवृत्ति का संकेत "कानन कुसुम" (द्वितीय संस्करण) की कविताओं की भाषा से भलीभांति मिल जाता है। द्वितीय संस्करण की कुछ कविताएँ खड़ीबोली हिंदी में हैं और कुछ ब्रजभाषा में। कुछ कविताएँ ऐसी

(कृपया पृष्ठ ५३ देखिए)

प्रथम संस्करण
(सन् १९१३)

१- बन्दना २- विनय
३- शारदीय महापूजन
४- प्रभो ५- विभो
६- मंदिर ७- करुण-
क्रंदन ८- महाक्रीड़ा
९- करुणा कुंज
१०- प्रथम प्रभात
११- नव बसन्त १२- नीरव
प्रेम १३- विस्मृत प्रेम
१४- विसर्जन १५- मर्म्मकथा
१६- हृदय-वेदना १७-बिदाई
१८- ग्रीष्म का मध्याह्न
१९- जलद आवाहन
२०- नीरद २१- शरदपूर्णिमा
२२- संध्यातारा
२३- चंद्रोदय २४- इंद्र धनुष
२५- भक्ति-योग २६- रजनी
गन्धा २७- सरोज २८-उद्यान
लता २९- मलिना ३०- जल
विहारिणी ३१- ठहरो
३२- बालक्रीड़ा ३३-भारतेंदु
प्रकाश ३४- कोकिल
३५- प्रभातिक कुसुम
३६- सौन्दर्य्य
३७- चारण की वीणा

द्वितीय संस्करण
(सन् १९१८)

द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण की सभी कविताएँ ज्यों की त्यों हैं। बाद में जोड़ी गयी कविताएँ हैं -

४२- विनय
४३- तुम्हारा स्मरण
४४- याचना
४५- पतित-पावन
४६- खंजन
४७- विरह
४८- रमणी हृदय
४९- हाँ सारथे रथ रोक दो
५०- गंगासागर
५१- प्रियतम
५२- खोलो द्वार
५३- मोहन
५४- भावसागर
५५- मिल जावो गले
५६- नहीं डरते
५७- पाई बाग
५८- सत्यव्रत
५९- भरत
६०- शिल्प सौंदर्य
६१- वीर बालक
६२- श्रीकृष्ण जयंती
६३- कुरुक्षेत्र
६४- मकरंद बिंदु

इसमें २८ छोटी-छोटी कविताएँ हैं।

तृतीय संस्करण
(सन् १९२९)

१- प्रभो
२- वन्दना
३- नमस्कार
४- मंदिर
५- करुण-क्रंदन
६- महाक्रीड़ा
७- करुणा-कुंज
८- प्रथम प्रभात
९- नव वसंत
१०- मर्म-कथा
११- हृदय-वेदना
१२- ग्रीष्म का मध्याह्न
१३- भक्ति योग
१४- रजनीगंधा
१५- सरोज
१६- मलिना
१७- जल-विहारिणी
१८- ठहरो
१९- बाल-क्रीड़ा
२०- कोकिल
२१- सौंदर्य
२२- एकांत में
२३- दलित कुमुदिनी
२४- निशीथ नदी
२५- विनय
२६- तुम्हारा स्मरण
२७- याचना
२८- पतित पावन
२९- खंजन
३०- विरह
३१- रमणी-हृदय
३२- हाँ, सारथे ! रथ रोक दो
३३- गंगासागर

प्रथम संस्करण (सन् १९१३)	द्वितीय संस्करण (सन् १९१८)	तृतीय संस्करण (सन् १९२९)
३८- एकान्त में		३४- प्रियतम
३९- दलित-कुमुदिनी		३५- मोहन
४०- निशीथ-नदी		३६- भाव सागर
४१- पराग		३७- मिल जाओ गले
(क) नमस्कार		३८- नहीं डरते
(ख) वसंत		३९- महाकवि तुलसीदास
(ग) चंद्र		४०- धर्म नीति
(घ) कोकिल		४१- गान
(ङ०) बालक		४२- मकरंद बिंदु
(च) शिरिस-सुमन		इसमें ७ छोटी-छोटी
(छ) तरुवर		कविताएँ हैं ।
(ज) भ्रमर		४३- चित्रकूट
(झ) आवाहन		४४- भरत
(ञ) सुनो		४५- शिल्प- सौंदर्य
(ट) कहो		४६- कुरुक्षेत्र
(ठ) कमला कमल पर		४७- वीर बालक
(ड) करत सनमान को		४८- श्रीकृष्ण जयंती ।
(ढ) बताओ कौन और है		
(ण) जीवन नैया		
(त) चूक हमारी		
(थ) प्रेमोपालम्भ		
(द) उत्तर		
(ध) भूल		
(न) प्रियतम राम्		

भी हैं जिनमें दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है ।" कानन कुसुम" के तृतीय संस्करण में कविताओं की भाषा सर्वत्र परिनिष्ठित खड़ीबोली हिंदी है । दो-चार ब्रजभाषा के शब्द किसी कविता में यदि मिल भी जायें तो उसकी (कविता की) भाषा, ब्रजभाषा नहीं कहलायेगी क्योंकि किसी भाषा के स्वरूप का निर्धारण उसके क्रिया-रूपों के आधार पर होता है और तृतीय संस्करण की कविताओं में क्रियारूप खड़ी-बोली के हैं ।

द्वितीय संस्करण में निम्नलिखित कविताओं की भाषा परिनिष्ठित खड़ीबोली हिंदी है -

वंदना, प्रभो, करुणा कुंज, प्रथम प्रभात, हृदय वेदना, ग्रीष्म का मध्याह्न, जलद आवाहन , भक्ति योग, महिमा , जल-विहारिणी, बाल-क्रीड़ा, कोकिल, सौंदर्य, एकांत में, दलित कुमुदिनी, निशीथ नदी और " पराग " के अंतर्गत नमस्कार, मूल; विनय, तुम्हारा स्मरण, याचना, पतित-पावन, खंजन, विरह रमणी-हृदय, हाँ सारथे रथ रोक दो, गंगा सागर, प्रियतम , खोलो द्वार, मोहन, भाव सागर, मिल जाओ गले, नहीं डरते, पाई बाग, सत्यव्रत, भरत, शिल्प सौंदर्य, वीर बालक, श्रीकृष्ण जयंती, कुरुक्षेत्र ; इनके अतिरिक्त " मकरंद बिंदु " की कुछ कविताएँ ।

निम्नलिखित कविताओं में, दोनों भाषाएँ (खड़ीबोली हिंदी और ब्रजभाषा) प्रयुक्त हुई हैं -

महाक्रीड़ा, नव वसंत, मर्म कथा, रजनीगंधा, ठहरो और " पराग" के अंतर्गत प्रियतम ।

अधोलिखित कविताएँ ब्रजभाषा की हैं -

विनय, शारदीय महापूजन, किसी, नीरव प्रेम, विस्मृत प्रेम, विसर्जन, बिदाई, नीरद, शरत्पूर्णिमा, संध्या तारा, चंद्रोदय, इंद्र धनुष, उपासना, भारतेंदु प्रकाश, प्राभातिक कुसुम,

चारण की वीणा और "पराग" के अंतर्गत वसंत, चंद्र , कोकिल, चातक, शिरिस-सुमन, तरुवर, भ्रमर, आवाहन, सुनो, कहो, कमला कमल पर, करत सनमान को, बताओ कौन और है, जीवन नैया, चूक हमारी, प्रेमोपालंभ , उत्तर एवं मकरंद बिंदु की ब्रजभाषा की कविताएँ ।

तृतीय संस्करण में सिर्फ खड़ीबोली की कविताएँ मिलती हैं । कुछ खड़ीबोली की कविताओं को तृतीय संस्करण में नहीं रखा गया । इसका कारण यह है कि ये कविताएँ कवि ने अपनी रुचि से "झरना" के द्वितीय संस्करण (वि० १९८४) में संकलित कर दीं । यदि "कानन कुसुम" का तृतीय संस्करण (जो वि० १९८६ में प्रकाशित हुआ था) वि० १९८४ के पूर्व प्रकाशित हुआ होता, तो "झरना" के द्वितीय संस्करण में ("कानन कुसुम" द्वितीय संस्करण की) जोड़ी हुई खड़ीबोली की निम्नलिखित कविताएँ संभवत: "कानन कुसुम" के तृतीय संस्करण में ही सम्मिलित होतीं-

१- खोलो द्वार
२- पाई बाग़
३- निवेदन
४- कहो
५- आज इस घन की अँधियारी में
६- हृदय में छिपे रहे इस डर से
७- आया देखो विमल वसंत
८- अमा को करिए सुंदर राका
९- सुमन तुम कली बने रह जाओ
१०- प्रियतम ("पराग" के अंतर्गत थी)

यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि "मूल" (ग़ज़ल) यद्यपि खड़ीबोली की रचना थी, तथापि वह न "झरना" के द्वितीय संस्करण में रखी गयी और न ही "कानन कुसुम" के तृतीय संस्करण में । इस संबंध में यह कहा जा

सकता है कि 'मूल', जो कि गज़ल के ढंग पर लिखी गयी है, जैसी अन्य कोई रचना न तो 'झरना' में ही है और न 'कानन कुसुम' में। अपना साम्य न ढूंढ पाने के कारण 'मूल' को बाद में कहीं भी स्थान नहीं मिला। 'कानन कुसुम' के द्वितीय संस्करण में कुछ अन्य कविताएँ आ गयीं। इनमें से कुछ साधारण हैं और कुछ विशिष्ट जैसा कि कवि ने निवेदन किया है -

> 'इसमें रंगीन और सादे, सुगंधवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए, पराग में लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं।'

बाद में जोड़ी हुई कुछ अन्य कवितायें भी अच्छी हैं किंतु 'सत्यव्रत' (चित्रकूट) 'भरत', 'कुरुक्षेत्र' आदि आख्यानक कवितायें विशेष रूप से उत्कृष्ट हैं। प्राचीन चरित्रों को कवि ने नवीन परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है। 'भरत' कविता में कवि 'भरत' के चरित्र के माध्यम से भारतवासियों को उनके पूर्वजों के साहस एवं शौर्य से परिचित कराना चाहता है। उस समय भारतवर्ष गुलामी की ज़ंजीर में बुरी तरह जकड़ा था। उस परिस्थिति में भारतवासियों के समक्ष देश-प्रेम से अनुप्राणित कवितायें, प्रस्तुत करना आवश्यक एवं उपयोगी था। डॉ० प्रेमशंकर भी इन आख्यानक कविताओं को नवीनता से युक्त बताते हैं -

> 'कानन-कुसुम' में चित्रकूट, भरत, शिल्प सौंदर्य, कुरुक्षेत्र, वीर बालक, श्री कृष्णजयंती आदि आख्यानक कविताएँ हैं। लगभग सभी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आधार लेकर लिखी गई हैं। प्राचीन कथा के आधार पर प्रसाद ने नवीन दृष्टिकोण से रचना की है। उसमें आधुनिकता स्पष्ट दिखाई देती है। पात्रों को नवीन स्वरूप कवि ने प्रदान किया है।'[२]

'कानन कुसुम' के द्वितीय संस्करण की ब्रजभाषा की अधिकांश रचनाएँ 'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में संकलित हैं।

द्वितीय संस्करण में खड़ीबोली की एक लम्बी कविता है- सत्यव्रत। 'सत्यव्रत' में राम का चरित्र सर्वप्रमुख है। इसकी कथा को निम्नलिखित खंडों में विभक्त किया जा सकता है -

---

२- प्रसाद का काव्य - डॉ० प्रेमशंकर ; पृष्ठ संख्या १४६।

(क) राम-सीता का वार्त्तालाप

(ख) लक्ष्मण राम को भरत के आगमन की सूचना देते हैं

(ग) सीता स्नान करने के उपरांत फल-फूल लाती हैं, राम मंदाकिनी तट से टहलकर आते हैं, किन्तु लक्ष्मण कहीं नहीं दिखाई देते ।

(घ) लक्ष्मण एक पेड़ पर चढ़े हैं, भरत को सेना के साथ आते देखते हैं, राम से धनुष माँगते हैं क्योंकि उन्हें आशंका है कि भरत राम को मारने हेतु आ रहे हैं । राम लक्ष्मण से कहते हैं कि यह तुम्हारा भ्रम है । उसी समय भरत आते हैं । राम के चरण-स्पर्श के लिए वह जैसे ही हाथ बढ़ाते हैं, राम उन्हें गले लगा लेते हैं ।

(ड०)भरत, वशिष्ठ आदि राम से अनुरोध करते हैं कि वह चलकर अयोध्या का राज्य ग्रहण करें किंतु राम अपने पूर्व निश्चय पर दृढ़ रहते हैं और अयोध्या नहीं लौटते ।

तृतीय संस्करण में "सत्यव्रत" के स्थान पर " चित्रकूट " शीर्षक कर दिया गया । इस कविता में "सत्यव्रत" कविता के अंतिम अंश को नहीं रखा गया । इस प्रकार "चित्रकूट" कविता भरत और राम के मिलन हो जाने पर समाप्त हो जाती है । "सत्यव्रत" में राम के चरित्र को प्रमुखता दी गई है, जबकि "चित्रकूट" में कवि का लक्ष्य है भरत और राम का मिलाप वर्णित करना।

" कानन कुसुम " के द्वितीय संस्करण की "शिल्प सौंदर्य" शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

> ध्वंसावशेष तेरा देखे से भला
> कौन कहेगा कब किसने निर्मित किया,
> शिल्प पूर्ण पत्थल कब मिट्टी हो गया
> किस मिट्टी के ढेर हैं बिखरे हुए । [३]

३- कानन कुसुम (द्वितीय संस्करण); चित्राधार (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ६२।

तृतीय संस्करण में उक्त पंक्तियाँ इस रूप में मिलती हैं -

तुमको देख करुणा इस वेश में
कौन कहेगा कब किसने निर्मित किया
शिल्पपूर्ण पत्थर कब मिट्टी हो गये
किस मिट्टी की ईंटें हैं बिखरी हुई ।[४]

इन पंक्तियों के पूर्व कवि भारत के " ध्वंस शिल्प " को संबोधित कर चुका है -

हे भारत के ध्वंस शिल्प ! स्मृति से भरे
कितनी वर्षा शीतातप तुम सह चुके ।

अतः इसी के बाद की पंक्ति में " ध्वंसावशेष " शब्द का प्रयोग काव्य की दृष्टि से अच्छा नहीं प्रतीत होता । भारत का शिल्प-सौंदर्य जो अब ध्वंसावशेष रूप में है, अपनी स्थिति से दर्शकों के मन में करुणा का भाव उत्पन्न कराता है। इस कारणवश निम्नलिखित पंक्ति अपेक्षाया सार्थक लगती है -

तुमको देख करुणा इस वेश में

द्वितीय संस्करण में " देखे से भला " में पूर्वी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है । तृतीय संस्करण में " तुमको देख " के प्रयोग से कवि ने कथित पंक्ति में, स्वयं को उक्त प्रभाव से मुक्त कर लिया । द्वितीय संस्करण में " पत्थल " शब्द का प्रयोग हुआ था जो अशुद्ध है । तृतीय संस्करण में इसके स्थान पर " पत्थर " (शुद्ध) का प्रयोग मिलता है । द्वितीय संस्करण में " पत्थर " को एकवचन के रूप में लिया गया है जो कि उचित नहीं है क्योंकि एक ही पत्थर पर तो शिल्प-रचना नहीं की गयी। तृतीय संस्करण में " पत्थर " को बहुवचन रूप में प्रयुक्त किया गया है । द्वितीय संस्करण में मिट्टी और ईंट दोनों को पुल्लिंग मानकर प्रयोग किया गया है, जबकि ये दोनों ही स्त्रीलिंग के शब्द हैं । तृतीय संस्करण में इन्हें स्त्रीलिंग माना गया है ।

४- कानन कुसुम (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ११६ ।

द्वितीय संस्करण की खड़ीबोली की जिन कविताओं में ब्रजभाषा की पंक्तियाँ विद्यमान हैं, उन्हें तृतीय संस्करण में हटा दिया गया । उदाहरण प्रस्तुत है -

बन के दक्षिण पौन तुम कलियों से भी हो खेलते ।
अलि बने मकरंद की मीठी झड़ी हो झेलते ।।[५]

" महाक्रीड़ा" की ये पंक्तियाँ तृतीय संस्करण में नहीं रखी गयीं ।

" नव बसंत" की निम्नलिखित पंक्तियाँ तृतीय संस्करण में नहीं मिलतीं -

सौरभित अनुराग चारु पराग बरसाने लगा ।
वह गुलाबी गाल भी कचनार दरसाने लगा ।।[६]

कालांतर में " प्रसाद" जी खड़ीबोली हिंदी में ही काव्य-रचना करने लगे । इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप ब्रजभाषा की पंक्तियाँ बाद में नहीं रखी गयीं । यह विचित्र-सा लगता है कि एक काव्य-संग्रह में दो भाषा की कविताएँ हों । खड़ीबोली हिंदी की ओर " प्रसाद" जी का झुकाव हो जाने के कारण ब्रजभाषा की कविताएँ बाद के संस्करण में विद्यमान नहीं हैं। द्वितीय संस्करण में " विनय" शीर्षक से एक कविता है और तृतीय संस्करण में भी " विनय" शीर्षक की एक कविता है । द्वितीय संस्करण की " विनय" कविता ब्रजभाषा में है, उसे बाद में हटा दिया गया और उसी शीर्षक की खड़ीबोली की कविता तृतीय संस्करण में उपलब्ध होती है जो भाव और विषय की दृष्टि से पहले से भिन्न है । द्वितीय संस्करण की " विनय" कविता क्रम में दूसरे स्थान पर है । इसके पहले " प्रभो" कविता है, जिसमें कवि ईश्वर-महिमा का गुणगान करता है । " विनय" कविता में कवि विनय संप्रेषण के बजाए ईश्वर की महिमा का गुणगान करता है । वह किसी प्रकार की विनती न कर अंत में ईश्वर को नमस्कार करता है -

\+ \+ \+ \+ \+

५- कानन-कुसुम (द्वितीय संस्करण); चित्राधार (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ६ ।

६- कानन-कुसुम (द्वितीय संस्करण); चित्राधार (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या १४।

जो कल्पवृक्ष नित फूलत मोद भीने ।
जो देत स्वच्छ फल मंगल है नवीने ।।
संसार को सदय पालत जौन स्वामी ।
वा शक्तिमान परमेश्वर को नमामि ।।[७]

तृतीय संस्करण में कवि प्रारंभिक कविता ' प्रभो ' में ईश्वर का गुणानुवाद कर चुका होता है । फलस्वरूप वह ' विनय ' में ईश्वर से यह विनती करता है -

\+ \+ \+ \+ \+

काट दो ये सारे दुख-द्वंद्व
न आवे पास कभी छल-छंद
मिलो अब आके आनंदकंद
रहें तव पद में आठो याम
बना लो हृदय-बीच निज धाम
करो प्रभु हमको पूरन-काम ।।[८]

द्वितीय संस्करण की खड़ीबोली की कुछ कविताओं में संशोधन भी किये गये । कुछ स्थलों पर शब्द-परिवर्तन किये गये । इस संदर्भ में ' करुणा कुंज ' की निम्नलिखित पंक्ति उल्लेखनीय है -

ज्वाला का जो ताप तुम्हें झुलसा रहा ।[९]

तृतीय संस्करण में ' जो ' के स्थान पर ' यह ' का प्रयोग किया गया है । ' जो ' से युक्त वाक्य अपूर्ण-सा था क्योंकि उस वाक्य को पूरा करने के लिए आगे पंक्ति नहीं रखी गयी थी । ' यह ' के प्रयोग से यह त्रुटि दूर हो गयी । साथ ही, इस रूप में वाक्य का आगे की पंक्तियों से साम्य भी बैठता है।

७- कानन कुसुम (द्वितीय संस्करण); चित्राधार (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या २
८- कानन कुसुम (तृतीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ४२ ।
९- कानन कुसुम (तृतीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १० ।

द्वितीय संस्करण की " भक्ति योग " कविता की पंक्तियाँ हैं -

उन्नत हुए भ्रू युग्म फिर तो कंबुग्रीवा भी हुई ।
फिर चढ़ गई आमोद मस्तक लालिमा दौड़ी हुई ।।[१०]

तृतीय संस्करण में " आमोद मस्तक " के स्थान पर " आपादमस्तक " [११] का प्रयोग किया गया है । " आमोद मस्तक " के प्रयोग से कोई अर्थ निष्पन्न नहीं होता था । " आपादमस्तक " से व्यंजित होता है कि लालिमा संपूर्ण शरीर में व्याप्त हो गई ।

द्वितीय संस्करण की " सौंदर्य " कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

देखते ही रूप मन प्रमुदित हुआ
घ्राण भी आमोद से सुरभित हुआ ।।[१२]

तृतीय संस्करण में " घ्राण " के स्थान पर " प्राण "[१३] कर दिया गया । " घ्राण " के प्रयोग से विदित होता है कि सौंदर्य का प्रभाव इंद्रिय तक ही सीमित है। सौंदर्य का प्रभाव यहाँ तीव्रता लिए हुए नहीं है, जबकि " प्राण " शब्द से बोध होता है कि सौंदर्य का प्रभाव बहुत गहरे तक पड़ा । यह प्रभाव हृदय पर अंकित होकर अधिक स्थायी बन गया ।

द्वितीय संस्करण की कुछ कविताओं की कुछ पंक्तियाँ तृतीय संस्करण में नहीं रखी गयीं । द्वितीय संस्करण की " बाल क्रीड़ा " शीर्षक कविता की निम्न-लिखित पंक्तियाँ बाद में हटा दी गयीं -

मित्र-मंडली जुटी जहाँ वह नंदन बन है ।
हँसने का जल-यंत्र वहाँ छुटता प्रतिछन है ।।

१०- कानन-कुसुम (द्वितीय संस्करण); चित्राधार (प्रथम संस्करण);पृष्ठ संख्या ३२।
११- कानन-कुसुम (तृतीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या २१ ।
१२- कानन-कुसुम (द्वितीय संस्करण); चित्राधार(प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ४६।
१३- कानन-कुसुम (तृतीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३६ ।

राज्य वहाँ बनता है औ राजा भी बनते ।
आपस में एक सभा जोड़कर न्यायी बनते ।।
स्वच्छंद सदा हँसते रहो आनंदित बन शुद्धमति ।
है काम तुम्हें करना बहुत, ध्यान रहे यह नित्यप्रति ।।[१४]

ये पंक्तियाँ द्वितीय संस्करण की 'बाल क्रीड़ा' शीर्षक कविता के अंत में थीं । ये पंक्तियाँ अपने पूर्व की पंक्तियों से इस दृष्टि से भिन्न है कि पहले की समस्त पंक्तियाँ, बालक को मध्यम पुरुष के रूप में संबोधित करके कही गयी हैं और हटायी गयी पंक्तियों में से पहली बार पंक्तियों में सामान्य बातें कही गयी हैं जो सभी बालकों पर लागू होती हैं । अंतिम दो पंक्तियों में उपदेशात्मकता है । इस अंतर के कारण इन (हटायी गयी) पंक्तियों का, पूर्व की किसी पंक्तियों से साम्य स्थापित नहीं होता ।

द्वितीय संस्करण की 'ग्रीष्म का मध्याह्न' शीर्षक कविता की अंतिम पंक्तियाँ, तृतीय संस्करण में नहीं रखी गयीं-

दुष्टजनों के वाक्य बाण से सूखे काँटे लगते हैं ।
पैरों तक पहुँचे हैं दाबे जाते पर नहिं भगते हैं ।।
दब रहे जो सिमटे थे वे रजकण शिर पर चढ़ते हैं ।
नीच, सदा थोड़ी गरमी पाते ही ऊपर बढ़ते हैं ।।[१५]

ये पंक्तियाँ भी अपने पूर्व की पंक्तियों से भिन्न हैं । पहले की पंक्तियों में कवि ग्रीष्म के मध्याह्न का वर्णन करता है । किंतु उक्त पंक्तियाँ विषय से बिलकुल हट-सी गयी हैं । इन पंक्तियों में कवि ने दुष्ट और नीच जनों की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है । यदि हटायी गयी पंक्तियों में से पहली पंक्ति रखी जाती तो कोई फर्क नहीं आता किंतु अंतिम तीन पंक्तियों का हटाया जाना आवश्यक था ।

००

१४- कानन कुसुम(द्वितीय संस्करण); चित्राधार(प्रथम संस्करण);पृष्ठ संख्या ४४-४५।
१५- कानन कुसुम (द्वितीय संस्करण);चित्राधार(प्रथम संस्करण);पृष्ठ संख्या २३।

झ र ना

झ र ना

" झरना " 'प्रसाद' जी की महत्वपूर्ण एवं सुपरिचित काव्य-कृति है । श्री सुधाकर पाण्डेय के अनुसार, " झरना प्रसाद की रचनाओं में विकास की नयी दिशा का संकेत देता है, जिसमें प्रणय, प्रकृति , स्नेह और छायावादी रचनाओं का संकलन है ।"[१]

इसका प्रथम संस्करण भाद्र कृष्णाष्टमी वि० १९७५ (सन् १९१८) को प्रकाशित हुआ । यह 'हिंदी-ग्रंथ-भंडार कार्यालय, बनारस सिटी' से प्रकाशित हुआ । उसकी पृष्ठ संख्या चौंतीस है । इसमें निम्नलिखित पच्चीस कविताएँ संकलित हैं -

(१) समर्पण (२) परिचय (३) झरना (४) अर्चना
(५) पी कहाँ (६) दर्शन (७) परदेसी की प्रीति (८) स्वप्नलोक
(९) पत्र (१०) सुधा में गरल (११) आशालता (१२) रत्न
(१३) रूकाव (१४) प्यास (१५) प्रत्याशा (१६) धूल का खेल
(१७) अतिथि (१८) बसंत राका (१९) एकतारा (२०) कसौटी
(२१) बैठने ! ठहरो (२२) उपेक्षा करना (२३) झील में
(२४) मिलन (२५) सुधा सिंचन ।

" झरना " का द्वितीय संस्करण अक्षय तृतीया वि० १९८४ (सन् १९२७) को " साहित्य-सेवा-सदन बुलानाला, काशी " द्वारा प्रकाशित हुआ । इस संस्करण में बासठ पृष्ठ हैं । द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण की " पत्र " "बसंत राका " कविताओं को स्थान प्राप्त नहीं हुआ । डॉ० किशोरीलाल गुप्त[२] ने लिखा है कि प्रथम संस्करण की " एक तारा " नामक कविता, द्वितीय संस्करण

१- प्रसाद की कविताएँ - पृष्ठ संख्या ११७ ।

२- प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन - किशोरीलाल गुप्त ; पृष्ठ संख्या ७८ ।

में नहीं रखी गयी । श्री सुधाकर पाण्डेय ने भी इस कविता के दूसरे संस्करण में न होने का अप्रत्यक्ष रूप से संकेत किया है " उन २५ कविताओं में से " झरना " के दूसरे संस्करण में तीन रचनाएँ निकाल दी गई हैं ।"[3] इसके विपरीत, मैंने " एक तारा " कविता द्वितीय संस्करण के पृष्ठ १६ पर देखी है । यह कविता आगामी पृष्ठ पर उद्धृत है । प्रथम संस्करण की " परदेसी की प्रीति " कविता को द्वितीय संस्करण में स्थान प्राप्त हुआ है किंतु उसे " विंदु " के अंतर्गत कर दिया गया है । द्वितीय संस्करण में " समर्पण " और " परिचय " नामक कविताओं को " झरना " के आरंभ में रखा गया और उनका उल्लेख सूची-पत्र में नहीं किया गया । कहने का तात्पर्य है कि द्वितीय संस्करण की कविताओं का आरंभ " झरना " कविता से होता है । उसके विपरीत प्रथम संस्करण में " समर्पण और परिचय " की गणना " झरना " की अन्य कविताओं के साथ हुई थी । द्वितीय संस्करण में कई नयीं कविताएँ आ गयीं जिसके फलस्वरूप अब कविताओं की संख्या (विंदु को मिलाकर) ५१ हो गई ।

इसके अतिरिक्त प्रथम संस्करण की अनेक कविताओं में परिवर्तन एवं संशोधन कर दिया गया है । द्वितीय संस्करण की " झरना ", " अर्चना ", " पी कहाँ ", " परदेसी की प्रीति ", " स्वप्न लोक ", " सुधा में गरल " , " आशालता ", " रत्न ", " प्यास " , " प्रत्याशा " , " धूल का खेल ", " अतिथि ", " कसौटी ", " झील में ", मिलन , कविताएँ संशोधित एवं परिवर्तित रूप में मिलती हैं ।

" झरना " का तृतीय संस्करण सं० १९९१ (सन् १९३४ ई०) में " भारती-भंडार, बनारस सिटी " द्वारा प्रकाशित हुआ । इसकी पृष्ठ संख्या बयासी है । इस संस्करण में " झरना " के द्वितीय संस्करण की " एक तारा " कविता को स्थान नहीं प्राप्त हुआ । द्वितीय संस्करण में " विंदु " के अंतर्गत " , " आज इस घन की अँधियारी में, " हृदय में छिपे रहे इस डर से ", " सुमन, तुम कली बने रह जाओ " कविताएँ एक साथ रखी गई[4] और " क्षमा को करिये सुंदर राका " व

३- प्रसाद की कविताएँ - श्री सुधाकर पाण्डेय ; पृष्ठ संख्या १०७ ।

४- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६१ ।

एक तारा

मिट चुका है जीवन का साध।
बता दो मेरा क्या अपराध ?
न पूछा "दर्द कैसा है तुम्हारा"
अरे तुमने, मुझे ऐसा बिसारा !
चन्द्र-दर्शन से हुआ निराश,
तारका भी देते न प्रकाश,
न निकलो अश्रु आँखों से हमारे।
तुम्हारा ही उसे केवल सहारा॥
गा रहा हूँ बस दुख का राग,
मिल गया विराग में अनुराग,
न वीणा ही रही, वंशी कहाँ है ?
हृदय मेरा हुआ है एकतारा॥
प्रेम के मँगते को दो दान,
न दो तो, करो नहीं अपमान,
हमारी दीन की लकुटी न तोड़ो।
भिखारी को रहा इसका सहारा॥
एक दिन मुझ को भी निश्शङ्क,
लगा रखते थे अपने अङ्क,
अरे निर्दय तुम्हें दुःख में पुकारा।
न पूछा हाल भी तुमने हमारा॥

" आया देखो विमल बसंत " कविताएँ एक साथ रखी गई ।[५] तृतीय संस्करण में उक्त कविताओं को अलग कर दिया गया है ।

झरना के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय संस्करणों की कविताओं को निम्नलिखित सारणी में देखा जा सकता है -

प्रथम संस्करण (सन्१९१८) (पृ०सं०३४)	द्वितीय संस्करण(सन्१९२७) (पृ०सं०६२)	तृतीय संस्करण(सन् १९३४) (पृ०सं०८२)
१- समर्पण	समर्पण-परिचय	१- झरना
२- परिचय	१- झरना	२- अव्यवस्थित
३- झरना	२- अव्यवस्थित	३- प्रथम प्रभात
४- अर्चना	३- प्रथम प्रभात	४- खोलो द्वार
५- पी कहाँ	४- खोलोद्वार	५- रूप
६- दर्शन	५- रूप	६- दो बूँदें
७- परदेशी की प्रीति	६- दो बूँदें	७- पावस-प्रभात
८- स्वप्न लोक	७- पावस-प्रभात	८- बसंत की प्रतीक्षा
९- पत्र	८- बसंत की प्रतीक्षा	९- बसंत
१०- सुधा में गरल	९- बसंत	१०- किरण
११- आशालता	१०-किरण	११- विषाद
१२- रत्न	११- विषाद	१२- बालू की बेला
१३- स्वभाव	१२- बालू की बेला	१३- चिन्ह
१४- प्यास	१३- चिन्ह	१४- दीप
१५- प्रत्याशा	१४- दीप	१५- अर्चना
१६- धूल का खेल	१५- अर्चना	१६- बिखरा हुआ प्रेम
१७- अतिथि	१६- बिखरा हुआ प्रेम	१७- कब
१८- बसंत राका	१७- एक तारा	१८- स्वभाव
१९- एक तारा	१८- कब ?	१९- असंतोष
२०- कसौटी	१९- स्वभाव	२०- अनुनय
	२०- असंतोष	२१- प्रियतम
	२१- अनुनय	२२- कहो ?
	२२- प्रियतम	२३- निवेदन
	२३- कहो ?	२४- प्यास
	२४- निवेदन	२५- पी ! कहाँ
	२५- प्यास	

५- झरना(द्वितीय संस्करण),पृष्ठ संख्या ६२ ।

प्रथम संस्करण(सन् १९१८) (पृष्ठ०३४)	द्वितीय संस्करण(सन् १९२७) (पृष्ठ०६२)	तृतीय संस्करण (सन् १९३४) (पृष्ठ० ८२)
२१- वेदने ! ठहरो	२६- पी ! कहाँ	२६- पाईं बाग
२२- उपेक्षा करना	२७- पाईं बाग	२७- प्रत्याशा
२३- झील में	२८- प्रत्याशा	२८- स्वप्न लोक
२४- मिलन	२९- स्वप्नलोक	२९- दर्शन
२५- सुधा सिंचन	३०- दर्शन	३०- मिलन
	३१- मिलन	३१- आशालता
	३२- आशालता	३२- सुधा सिंचन
	३३- सुधा सिंचन	३३- तुम !
	३४- तुम !	३४- हृदय का सौंदर्य
	३५- हृदय का सौंदर्य	३५- प्रार्थना
	३६- प्रार्थना	३६- होली की रात
	३७- होली की रात	३७- झील में
	३८- झील में	३८- रत्न
	३९- रत्न	३९- कुछ नहीं
	४०- कुछ नहीं	४०- आदेश
	४१- आदेश	४१- देवबालों
	४२- देव बाला	४२- कसौटी
	४३- कसौटी	४३- अतिथि
	४४- अतिथि	४४- सुधा में गरल
	४५- सुधा में गरल	४५- उपेक्षा करना
	४६- उपेक्षा करना	४६- वेदने ठहरो
	४७- वेदने, ठहरो !	४७- धूल का खेल
	४८- धूल का खेल	४८- बिंदु
	४९- बिंदु	४९- बिंदु
	५०- बिंदु	५०- बिंदु
	५१- बिंदु	५१- बिंदु
		५२- बिंदु
		५३- बिंदु

इसके उपरांत "झरना" के प्रथम और द्वितीय संस्करण में हुए परिवर्तनों का विवेचन आवश्यक है। प्रथम संस्करण की दो कविताओं "पत्र" और "वसंत राका" को द्वितीय संस्करण में स्थान नहीं मिला। इसके अतिरिक्त तीस कविताएँ नयी आ गईं। यद्यपि नई जोड़ी गई कविताओं में से कई समय-समय पर "इंदु" में और "कानन-कुसुम" व "चित्राधार" के प्रथम संस्करण में प्रकाशित हो चुकी थीं।[६]

"झरना" के तृतीय संस्करण में प्रकाशक का निवेदन है – "जिस शैली की कविता को हिंदी साहित्य में आज दिन "छायावाद" का नाम मिल रहा, उसका प्रारंभ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ था। ------" यह निवेदन तृतीय संस्करण का है। इसके पूर्व यह निवेदन नहीं मिलता। यह निश्चित है कि "प्रसाद" जी भी इस भूमिका से सहमत रहे होंगे अन्यथा बाद के संस्करणों में यह निवेदन नहीं मिलता। "झरना" के उक्त संस्करण में बारह कविताएँ प्रथम संस्करण की हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रथम संस्करण की कई कविताएँ छायावाद की विशेषताओं से युक्त थीं। इस संस्करण में "पत्र", "वसंत राका" और "एक तारा" कविताएँ छायावाद की विशेषताओं से वंचित हैं। यह उचित था कि द्वितीय संस्करण में इन कविताओं को न सम्मिलित किया जाए, किंतु द्वितीय संस्करण में "एक तारा" कविता को रखा गया जबकि "पत्र" और "वसंत राका" को हटा दिया गया। इस प्रकार झरना के द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण की अपेक्षा अधिक छायावादी कविताएँ हैं।[७] यहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि प्रथम संस्करण की शेष कविताएँ छायावाद की समस्त विशेषताओं से युक्त हैं। प्रायः समस्त कविताओं में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य मिल जाती है। नई जोड़ी गयी कविताओं के संबंध में भी यही बात दिखाई देती है। उन कविताओं में भी छायावाद की थोड़ी बहुत विशेषताएँ मिल जाती हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हमें, प्रथम संस्करण की कुछ कविताओं को और बाद

६- "प्रसाद" का विकासात्मक अध्ययन – डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृ० ७८-७९।
७- "इस प्रकार कई आलोचकों के अनुसार प्रसाद की काव्य कृतियों में "झरना" (द्वितीय संस्करण) छायावादी काव्य शैली का अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधि संकलन है।"
"हिंदी- साहित्य का बृहत् इतिहास" (दशम भाग) – संपादक डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या १५६।

में जोड़ी गई कुछ कविताओं को देखना होगा । इसके पूर्व यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि प्रथम संस्करण की कविताओं में छायावाद की अनुभूति गत विशेषताएँ कम मिलती हैं, जबकि इसकी तुलना में अभिव्यक्तिगत विशेषताएँ अधिक मिलती हैं । द्वितीय और तृतीय संस्करणों की बाद की कविताओं में उक्त दोनों विशेषताएँ प्राय: समान रूप से मिलती हैं ।

प्रथम संस्करण की " झरना " शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में उपचार वक्रता विद्यमान है :

प्रेम की पवित्र परछाँई में
लालसा हरित विटप झाँई में ।[८]

यहां अमूर्त (प्रेम) में मूर्त का आरोप किया गया है ।

प्रथम संस्करण की " सुधा-सिंचन " कविता में स्वानुभूत दु:ख की अभिव्यक्ति हुई है :

बहुत दिन से था हृदय निराश
रहा अब तो समय नहीं ।
लगाऊँगा छाती से आज
सुनो प्रियतम ! अब तुम्हें यहीं ।।[९]

प्रथम संस्करण की " मिलन " कविता की इस पंक्ति में नाद-सौंदर्य की छटा द्रष्टव्य है :

आज इस हृदयाब्धि में, बस क्या कहूँ
तुंगतरल तरंग ऐसी उठ रही ।[१०]

प्रथम संस्करण की " बैठे ! ठहरो " कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में व्यंजना से अर्थ निकलता है :

न मुझसे अड़ना कहीं का लड़ना ;
प्राण है केवल मेरा, बस

८- झरना (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ४ ।
९- झरना (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ३४ ।
१०- झरना (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ३२ ।

वेदने ! ठहरो ! कलह तुम न करो ;
नहीं तो कर दूँगा निश्शस्त्र । [११]

कवि को वेदना व्याकुल किये हुए हैं । वह उससे कहता है कि यदि वह उससे (कवि से) कलह करेगी, तो वह उसे शस्त्रहीन कर देगा क्योंकि उसके (कवि के) पास प्राण है जो अस्त्र का काम करेगा । यहाँ व्यंजना से अर्थ यह निकलता है कि यदि वेदना उसे अत्यधिक क्लेश पहुँचाएगी, तो वह अपने प्राण को ही त्याग देगा और जब उसका शरीर प्राण रहित हो जाएगा, तो वेदना उसे कैसे कष्ट देगी ।

' झरना ' के द्वितीय संस्करण में जोड़ी हुई कविताओं में से कुछ का विवेचन आवश्यक होगा । ' पावस-प्रभात ' में प्रकृति का मनोहारी ढंग से वर्णन हुआ है :

अर्द्ध रात्रि में खिली हुई थी मालती,
उस पर से जो बिछल पड़ा था वह चपल
मलयानिल भी अस्त-व्यस्त है घूमता
उसे स्थान ही कहीं ठहरने को नहीं

\+ \+ \+ \+ \+

क्लांत तारकागण की मधप-मंडली ,
नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती ।
रिक्त चषक सा चंद्र लुढ़ककर है गिरा,
रजनी के आपानक का अब अंत है ।। [१२]

' तुम ' शीर्षक कविता में श्रमिकों के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त की गई है :

दीन दुखियों को देख आतुर अधीर अति
करुणा के साथ उनके भी कभी रोते चलो
थके श्रमी जीवों के पसीने भरे सीमे लग
बीने को सफल करने के लिए सोते चलो । [१३]

११- झरना (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या २६ ।
१२- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ८ ।
१३- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ४१।

' विषाद' शीर्षक कविता में बिंब-विधान द्रष्टव्य है -

शिथिल पड़ी प्रत्यंचा किसकी,
    धनुष भग्न सब छिन्न जाल है ।
वंशी नीरव पड़ी धूल में,
    वीणा का भी बुरा हाल है ।।[१४]

उक्त चित्र में बिंब संश्लिष्ट रूप में आया है, इसीलिए महत्वपूर्ण बन गया है । बिंब की महत्ता उसके संश्लिष्ट होने में ही है, जैसा डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं," चाक्षुष पक्ष यानी कि एक दृश्य-प्रतिमा का निर्माण कर सकना तो वस्तुत: बिंब-विधान का एक प्राथमिक और गौण स्तर है । मुख्य बात यह है कि संश्लिष्ट गठन होने के कारण बिंब में उसके विभिन्न तत्वों के बीच संपर्क और टकराहट से एक द्वंद्वात्मक (डायलेक्टिक) प्रक्रिया निहित रहती है, जो अर्थ को विकासशील और स्वायत्त बनाती है ।"[१५]

इसी प्रकार' प्रथम प्रभात, खोलो द्वार' ,'दीप', ' पाई बाग़ ' आदि सभी कविताओं में छायावादी कोई न कोई विशेषता विद्यमान मिलती है । इसके विपरीत' पत्र' ,' बसंत राका' और' एक तारा' [१६] कविताएँ छायावाद की विशेषताओं से रहित हैं । संभवत: इन्हीं कारणों से' पत्र',' बसंत राका' कविताएँ दूसरे संस्करण में नहीं रखी गई और' एक तारा' तीसरे संस्करण में नहीं रखी गई । ' झरना' के तृतीय संस्करण में छायावाद की सभी विशेषताएँ मिल जाती हैं । इस ~~संस्करण~~ संस्करण की समस्त कविताओं में छायावाद की कोई न कोई विशेषता दृष्टिगत होती है । डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल भी' झरना' की उक्त विशेषताओं

१४- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १२ ।

१५- कामायनी का पुनर्मूल्यांकन - डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ; पृष्ठ संख्या २१ ।

१६- झरना (प्रथम संस्करण) ; पत्र (पृ०११-१२); बसंत राका (पृ०२६) ; एक तारा (पृष्ठ ३७)

झरना (द्वितीय संस्करण) ; एक तारा (पृष्ठ १८)।

से युक्त मानते हैं । [१७] डॉ० भोलानाथ तिवारी का भी यही मत है । [१८]

द्वितीय संस्करण में "समर्पण" और "परिचय" कविताओं को अन्य कविताओं से अलग करके उन्हें आरंभ में रखा गया है । यह अनुचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि कवि समर्पण कर रहा है और समर्पण किसी रचना के आरंभ में रखा जाता है । कवि "परिचय" के छंदों द्वारा यह बोध कराना चाहता है कि "प्रेम के परिचय के परिणाम ये गीत हैं ।"[१९]

प्रथम संस्करण में "परदेसी की प्रीति" शीर्षक कविता, दूसरे संस्करण में "बिंदु" के अंतर्गत कर दी गई है । "बिंदु" की अन्य पाँच कविताएँ बाद में जोड़ी गई हैं । "परदेसी की प्रीति" कविता को "बिंदु" की अन्य पाँच कविताओं के साथ रखने का मुख्य कारण यह है कि ये सभी कविताएँ विषय की दृष्टि से प्रेम-परक और आकार की दृष्टि से अपेक्षाकृत छोटी हैं ।

"झरना" के प्रथम संस्करण की कई कविताएँ परिवर्तित एवं संशोधित रूप में द्वितीय संस्करण में आयी हैं । "झरना" के प्रथम संस्करण की "झरना" कविता की अंतिम पंक्ति यह है :

बात यह तेरी चतुराई में ।
प्रेम की पवित्र परछाँई में ।।[२०]

परिवर्तित संस्करण में उक्त पंक्ति का रूप इस प्रकार है :

सत्य यह तेरी सुघराई में ।
प्रेम की पवित्र परछाँई में ।।[२१]

१७- झरना व "लहर" की मुक्तक कविताएँ मुक्तक काव्य का पूर्णतम व सुंदर रूप प्रस्तुत करती हैं । अभिव्यंजना के समृद्धतम रूप-लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, छंद-निर्माण कौशल, व्यंजक पद-प्रयोग, छंदों में भाव का गठन, लाघव की पुष्टता की दृष्टि से कलात्मक गुंफन और नवीन उपमान-चयन आदि से उक्त कविताएँ संपन्न हैं ।"
-जयशंकर प्रसाद ; वस्तु और कला (पृष्ठ संख्या २४-२५)
१८-" झरना में आकर प्रसाद का "छायावादी" रूप बहुत स्पष्ट हो गया ।"
प्रसाद की कविता (पृष्ठ संख्या १४५)
१९- प्रसाद की कविताएँ - श्री सुधाकर पाण्डेय ; पृष्ठ संख्या १०६ ।
२०- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ४ ।
२१- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या २ ।

कवि झरने से अपने हृदय का साम्य स्थापित करते हुए कहता है कि हृदय रुपी झरना विश्व में दग्ध लोगों को शीतलता पहुँचाने के लिए बह चला है । यह कार्य उसकी (झरना या हृदय की) सुंदरता के अनुरूप सत्य-मार्ग पर चलते हुए और प्रेम का अवलंब लेकर ही संभव हो सकता है। यह अर्थ " बात तेरी चतुराई में " के प्रयोग से छिन्न-भिन्न हो गया था और इस प्रकार उसमें गंभीरता का अभाव हो गया था ।

प्रथम संस्करण की " अर्चना " शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :

लज्जित है प्रियतम के गले लगी नहीं
प्राण प्रदीप न करता वह आलोक है
जिसमें वांछित रूप तुम्हारा देख लें ।[२२]

द्वितीय संस्करण में एक अतिरिक्त पंक्ति जोड़ी गई है :

लज्जित है ; प्रियतम के गले लगी नहीं ।
प्रियतम ! ऐसा ही क्या तुमको उचित था ।
प्राण प्रदीप न करता है आलोक वह -
जिसमें वांछित रूप तुम्हारा देख लूँ । [२३]

इस छंद में तीन परिवर्तन हुए हैं । पहला, " प्रियतम ! ऐसा ही क्या तुमको उचित था " पंक्ति अलग से आ गई । दूसरा, " वह आलोक है " के स्थान पर 'है आलोक वह ' हो गया । तीसरा, " लें " के स्थान पर " लूँ " कर दिया गया । बाद में जोड़ी गई पंक्ति में प्रियतम को उपालंभ दिया गया है । इसके आ जाने से अर्थगत सौंदर्य में वृद्धि हो गई । " वह आलोक है " के स्थान पर " है आलोक वह " इस लिए कर दिया गया है क्योंकि कवि " वह " के अंत में प्रयोग करने के द्वारा " आलोक " पर बल देना चाहता है । साथ ही, " वह " के अंत में प्रयोग करने से इस पंक्ति का

२२- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ५ ।
२३- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १७ ।

अगली पंक्ति से संबंध तड़कता से जुड़ जाता है । ' लै ' क्रिया का संबंध ' मालिका ' से है । ' मालिका ' का प्रसंग ' प्रियतम । ऐसा ही क्या तुमको उचित था ' पंक्ति की समाप्ति के साथ पूरा हो जाता है । अत: उसके आगे की क्रिया का कर्म है उसी को समझना उचित नहीं होगा । इसीलिए ' लै ' के स्थान पर ' लूँ ' कर दिया गया । ' लूँ ' क्रिया का कर्म ' मैं ' है जो पंक्ति में अव्यक्त रूप से विद्यमान है ।

इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

हो जावेगा जब निराश मन फिर कभी
ध्यान हमारा आवेगा, होगी दया
तो क्या दाव्य [२४] न होगे तुम, यह सोच लो
फिर जैसा मन में आवे वैसा करो । [२५]

इन पंक्तियों को द्वितीय संस्करण में नहीं रखा गया । यह परिवर्तन संतोषजनक नहीं हुआ क्योंकि ये पंक्तियाँ, पूर्व पंक्तियों से अनिवार्य रूप से संबद्ध हैं । कवि, किसी न किसी तरह, प्रियतम को जाने से रोकना चाहता है । उसे प्रियतम का रूप देखने की अभिलाषा है । वह चाहता है कि प्रियतम किसी तरह रुक जाये । इन पंक्तियों का छूट जाना, कविता के लिए हानिकर हुआ ।

प्रथम संस्करण की ' पी । कहाँ ' कविता की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है :

चंचला कर रही है <u>उँजाला</u> । [२६]

' उँजाला ' शब्द अशुद्ध होने के कारण द्वितीय संस्करण में ' उजाला ' शब्द प्रयुक्त किया गया है, जो कि शुद्ध है ।

प्रथम संस्करण की ' परदेसी की प्रीति ' कविता की एक पंक्ति यह है :

जिसे चाह लूँ उसे न <u>आँखों</u> से कर कुछ भी दूर । [२७]

२४- झरना (प्रथम संस्करण) में ' दाव्य ' ही मुद्रित हुआ है । वस्तुत: यह ' वाच्य ' है ।
२५- झरना (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ६ ।
२६- झरना (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ७ ।
२७- झरना (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ६ ।

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस प्रकार है :

जिसे चाहे तू , उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर ।[२८]

प्रथम संस्करण का " तूँ " शब्द अशुद्ध था, अत: बाद में " तू " का प्रयोग किया गया है जो कि शुद्ध है । प्रथम संस्करण में " आँखों " प्रयुक्त हुआ है, यह व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध है क्योंकि " आँख " का बहुवचन " आँखों " होता है । द्वितीय संस्करण में " आँखों " का प्रयोग हुआ है । द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण के " आँखों से कर " के स्थान पर " कर आँखों से " का प्रयोग हुआ । " आँखों से कर " के प्रयोग से पंक्ति की लय कुछ अवरुद्ध-सी हो जाती है । " कर आँखों से " के प्रयोग से उक्त अवरोध दूर हो गया ।

प्रथम संस्करण की " स्वप्नलोक " कविता की निम्नांकित पंक्ति उल्लेखनीय है :

हम व्याकुल हो उठे, कि तुमको अंक में ।[२९]

द्वितीय संस्करण में यह पंक्ति इस प्रकार है :

मैं व्याकुल हो उठा कि तुमको अंक में ।[३०]

यहाँ " हम " के स्थान पर " मैं " का प्रयोग हुआ है और उसी के अनुसार क्रिया भी परिवर्तित हुई है । यदि इसी पंक्ति को दृष्टि में रखकर देखा जाए, तो विदित होगा कि यह परिवर्तन पहले से अच्छा हुआ है क्योंकि " हम " शब्द " मैं " का बहुवचन है । यहाँ कवि अपनी बात कहता है, अत: " मैं " का प्रयोग उचित हुआ है । किंतु इस पंक्ति को पूरी कविता से अलग करके देखना अनुचित होगा, अत: जब हम इस पंक्ति के पूर्व की पंक्तियों को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि दो स्थान पर " बहुवचन " के प्रयोग हुए हैं :

हृदय हमारा फूल रहा था कुसुम-सा

\+ \+ \+ \+ \+

२८- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६० ।
२९- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १० ।
३०- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३३ ।

ये सब खिलने लगीं, न इसको ज्ञात था ।

इस प्रकार, दो स्थानों पर बहुवचन शब्द के प्रयोग करने के उपरांत एकवचन का प्रयोग करना अत्यंत असंगत है ।

इसी कविता की अंतिम पंक्ति में भी परिवर्तन किया गया है :

सुप्त सकल उद्वेग को एक बार ही ।

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति परिवर्तित रूप में इस प्रकार है :

सुप्त सकल उद्वेग जग पड़े मोह में ।

यहाँ " एक बार ही " के स्थान पर " पड़े मोह में " कर दिया गया । कवि, प्रियतम को अंक में लेनेवाला ही था, कि प्रियतम ने सुमन की कलिका उसकी ओर फेंकी । उसके आकर्षण से कवि के समस्त सुप्त उद्वेग मस्त होकर जग पड़े । " मोह में " प्रयोग से उद्वेगों के सुमनों की कलिका के आकर्षण से, जाग जाने का अर्थ निकलता है । " आकर्षण " से जाग जाने का अर्थ, प्रथम संस्करण की पंक्ति से नहीं निकलता ।

प्रथम संस्करण की " सुधा में गरल " शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है :

हमें सोने की आशा मिली ।[३१]

द्वितीय संस्करण में यह पंक्ति इस प्रकार है :

हमें जाने की आशा मिली ।[३२]

यहाँ " सोने " के स्थान पर " जाने " का प्रयोग हुआ । इस कविता में कवि ने अपेक्षा की थी कि प्रियतम उसको सुधा (अर्थात् प्रेम) का पान करायेगा किन्तु उसकी आशा के बिलकुल विपरीत उसको प्रियतम से निष्ठुरता ही मिली । कवि पुनः कहता है कि प्रेम का अनुकूल वातावरण बन गया था, किंतु प्रियतम

३१- झरना (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या १४ ।

३२- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ५५ ।

ने उसे लौट जाने का आदेश दिया । कवि का, इस कविता में, लक्ष्य है प्रियतम की निष्ठुरता का परिचय कराना । इस दृष्टि से "हमें जाने की आज्ञा मिली" पंक्ति उपयुक्त सिद्ध हुई । "हमें लौटने की आज्ञा मिली" पंक्ति से प्रियतम की निष्ठुरता का बोध नहीं होता ।

प्रथम संस्करण की "प्रत्याशा" शीर्षक कविता की निम्न लिखित पंक्ति द्रष्टव्य है :

ध्यान हमारा तुम्हें नहीं जो हो रहा ।[३३]

द्वितीय संस्करण में यह पंक्ति इस रूप में है—

ध्यान हमारा नहीं तुम्हें जो हो रहा ।[३४]

यहाँ "तुम्हें नहीं जो" के स्थान पर "नहीं तुम्हें जो" का प्रयोग किया गया । इस परिवर्तन से पंक्ति का प्रवाह पहले से कुछ अवरुद्ध हो गया ।

इसी कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

चंद्र किरण हिम-बिंदु मधुर मकरंद से
बना, धरा है यह हीरे के पात्र में ।[३५]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्तियाँ निम्नलिखित रूप में दिखाई देती हैं -

चंद्र-किरण हिम-बिंदु मधुर मकरंद से -
बनी सुधा, रख दी है हीरक - पात्र में ।[३६]

प्रथम संस्करण की पंक्तियों में अर्थ पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं होता था । चंद्र-किरण , हिम-बिंदु और मधुर मकरंद के मिश्रण से कुछ निर्मित हुआ, यह अर्थ निकलता है ; किंतु क्या निर्मित हुआ, यह नहीं वर्णित किया गया । द्वितीय संस्करण में स्पष्ट किया गया है कि उक्त वस्तुओं के मिश्रण से "सुधा" निर्मित हुई ।

३३- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या २२ ।
३४- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ३२ ।
३५- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या २२ ।
३६- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ३२ ।

इन परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य कविताओं में भी अनेक परिवर्तन एवं संशोधन हुए हैं। इस प्रकार की कविताओं में "आशा लता", "रत्न", "प्यास", "धूल का खेल," "अतिथि", "कसौटी", "फील में" कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, द्वितीय संस्करण के बाद तृतीय संस्करण में भी परिवर्तन एवं संशोधन हुए। "एक तारा" कविता को द्वितीय संस्करण में ही स्थान नहीं मिलना चाहिए था क्योंकि इसमें छायावाद के तत्व नहीं मिलते। अतः तृतीय संस्करण (सन् १६३४ ई०) में "एक तारा" कविता नहीं रखी गई। द्वितीय संस्करण में "बिंदु" के अंतर्गत "आज इस घन की अँधियारी में", "हृदय में छिपे रहे इस डर से", "सुमन, तुम कली बने रह जाओ" कविताएँ एक साथ, एक ही पृष्ठ पर रखी गईं[37] और "अमा को करिये सुन्दर राका" व "आया देखो विमल वसंत" कविताएँ एक साथ एक ही पृष्ठ पर रखी गईं।[38] तृतीय संस्करण में इन कविताओं को अलग कर दिया गया। यह उचित हुआ क्योंकि ये छोटी एवं प्रेमपरक कविताएँ एक दूसरे से स्वतंत्र प्रतीत होती थीं। तृतीय संस्करण में, द्वितीय संस्करण की कुछ कविताओं में, परिवर्तन एवं संशोधन हुए हैं। इनमें से कुछ का विवेचन करना आवश्यक है।

द्वितीय संस्करण की "अर्चना" शीर्षक कविता की एक पंक्ति यह है :

लज्जे ! जा बस अब न छुऊँ मैं एक भी ।[39]

तृतीय संस्करण में यह पंक्ति इस प्रकार है :

लज्जे ! जा, बस अब न छुऊँगी एक भी ।[40]

इस संशोधन में सर्वनाम को क्रिया में अंतर्मुक्त कर दिया गया। इस संशोधन से भाषा कुछ गठित हुई प्रतीत होती है।

द्वितीय संस्करण की "पी ! कहाँ" कविता की एक पंक्ति है :

चंचला कर रही है उजाला।

३७- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६१ ।
३८- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ६२ ।
३६- झरना (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १६ ।
४०- झरना (तृतीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या २२ ।

"उजाला" शब्द शुद्ध है जबकि प्रथम संस्करण में "उँजाला" शब्द था ।

तृतीय में "उजाला" के स्थान पर "उँजाला" शब्द आ गया जो कि अशुद्ध है :

फैला कर रही है उँजाला ।[४१]

परवर्ती संस्करणों में पुनः "उजाला" का प्रयोग हुआ है ।

द्वितीय संस्करण की "स्वप्न लोक" कविता की पंक्ति है :

सुप्त सकल उद्वेग जग पड़े मोह में ।[४२]

उक्त पंक्ति, प्रथम संस्करण की पंक्ति का परिवर्तित रूप है । इसका विवेचन प्रथम एवं द्वितीय संस्करण की तुलना करते समय किया जा चुका है । तृतीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है :

सुप्त सकल उद्वेग मधुरतम मोह में ।[४३]

इस पंक्ति के पूर्व की पंक्ति में "जग पड़े" सुप्त उद्वेगों के लिए प्रयुक्त किया जा चुका था अतः बाद की पंक्ति में "जग पड़े" का प्रयोग कोई महत्व नहीं रखता वरन् खटकता है । इसलिए "जग पड़े" को हटाना पड़ा । इसके स्थान पर "मधुरतम" शब्द का प्रयोग किया गया । सुमनों की झोली फैंकने के आकर्षण को और भी मोहक बनाने के लिए इसका (मधुरतम) प्रयोग किया गया ।

द्वितीय संस्करण की "प्रत्याशा" शीर्षक कविता की पंक्ति है :

ध्यान हमारा नहीं तुम्हें जो हो रहा ।[४४]

प्रथम संस्करण में "तुम्हें नहीं जो ———" का प्रयोग हुआ था । द्वितीय संस्करण में "नहीं तुम्हें जो" के प्रयोग से पंक्ति की लय कुछ अवरुद्ध हो गयी थी । तृतीय संस्करण में द्वितीय संस्करण की पंक्ति को प्रथम संस्करण के रूप में कर दिया गया :

ध्यान हमारा नहीं तुम्हें जो हो रहा ।[४५]

४१- झरना (तृतीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३६ ।
४२- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ३२ ।
४३- झरना (तृतीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ४० ।
४४- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ३२ ।
४५- झरना (तृतीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ३६ ।

उक्त पंक्ति को अपने पूर्व रूप में कर देने पंक्ति का प्रवाह अक्षुण्ण रहा ।

प्रथम संस्करण की " मिलन " शीर्षक कविता की आरंभिक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये ।
यह अलस जीवन सफल अब हो गया ।
कौन कहता है जगत है दु:खमय ।
यह सरस संसार सुख का सिंधु है ।[४६]

ये पंक्तियाँ द्वितीय संस्करण में अविकल रूप में मिलती हैं । तृतीय संस्करण में इन्हें हटा दिया गया । प्रारंभिक दोनों पंक्तियाँ भाव और शैली की दृष्टि से आगे की पंक्तियों की तुलना में, हल्की थीं, इस कारण तृतीय संस्करण में इन्हें स्थान नहीं प्राप्त हुआ । अन्य दो पंक्तियाँ संभवत: इस कारण से हटा दी गयीं क्योंकि जो भाव इन पंक्तियों में निहित है, उसी से मिलता जुलता भाव आगे की पंक्ति में भी विद्यमान है -

विश्व-वैभव से भरा यह धन्य है ।

इसी कविता की निम्नलिखित पंक्ति उल्लेखनीय है -

मिल रहा, सब साज मिल कर बज रहे । [४७]

द्वितीय संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है -

मिल रहे, सब साज मिल कर बज रहे । [४८]

प्रथम संस्करण में " मिल रहा " का प्रयोग हुआ है जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है क्योंकि बहुवचन (चंद्रिका, मलयज पवन, मकरंद , मौरे) के साथ एकवचन की क्रिया (मिल रहा) का प्रयोग हुआ है । द्वितीय संस्करण में " मिल रहे " के प्रयोग से व्याकरण की उक्त अशुद्धि समाप्त हो गई ।

४६- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३२ ।
४७- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३२ ।
४८- झरना (द्वितीय संस्करण); पृष्ठ संख्या ३५ ।

इस कविता की अंतिम चार पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

हृदय कोश खुला है आज तो ।
विश्व भर लूटे महोत्सव का मजा ।।
आज बस आनंद ही आनंद है ।
मिल गये मोहन, हमारे मिल गये ।।[४६]

ये पंक्तियाँ द्वितीय संस्करण में मिलती हैं । तृतीय संस्करण में इन पंक्तियों को हटा दिया गया है । उक्त पंक्तियाँ विषय की दृष्टि से हल्की हैं । इनको अलग से देखने पर इनका हल्कापन कम लगता है किंतु पूर्व की पंक्तियों की तुलना में इनका हल्कापन स्पष्ट हो जाता है ।

'झरना' में हुए इन परिवर्तनों को देखने से ज्ञात होता है कि कवि ने प्रथम संस्करण की तुलना में 'झरना' के द्वितीय संस्करण को अच्छा बनाया और दूसरे संस्करण की तुलना में तीसरे संस्करण को अच्छा बनाया । यह अवश्य है कि इन परिवर्तनों में कुछ संतोषजनक नहीं हुए ।

००

४६- झरना (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३३ ।

आँ सू

आँसू

श्री जयशंकर "प्रसाद" को हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान दिलाने का श्रेय बहुत कुछ उनके प्रसिद्ध काव्य "आँसू" को प्राप्त होता है। "आँसू" अपनी अनेकानेक विशिष्टताओं के कारण अमर हो गया है।

"आँसू" का प्रथम संस्करण (१६८२ वि०) सन् १६२५ ई० में "साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी" से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में एक सौ छब्बीस छंद हैं और इसकी पृष्ठ संख्या बत्तीस है।

आठ वर्ष के पश्चात् अर्थात् सन् १६३३ ई० (१६६० वि०) में "आँसू" का द्वितीय संस्करण "भारती भंडार" रामघाट, बनारस सिटि" से प्रकाशित हुआ। द्वितीय संस्करण परिवर्तित एवं परिवर्द्धित था। इस संस्करण में छंदों की संख्या एक सौ नब्बे हो गयी और पृष्ठ संख्या पचत्तर हो गयी। छंदों की संख्या में वृद्धि के साथ ही साथ प्रथम संस्करण के अनेक छंदों में भी परिवर्तन हुए हैं। उदाहरणार्थ किसी छंद में किसी शब्द को हटाकर दूसरा शब्द प्रयुक्त किया। कहीं छंद की पंक्ति परिवर्तित कर दी। कहीं विशेषण रख दिये हैं। कहीं सर्वनाम में परिवर्तन कर दिये हैं। कहीं वाक्य का वर्तमान काल बदलकर भूतकाल कर दिया और कहीं भूतकाल वाले वाक्य को वर्तमान काल का वाक्य बना दिया।

द्वितीय संस्करण में छंदों के क्रम में भी परिवर्तन कर दिया गया है। प्रथम संस्करण में छंदों के मध्य कोई अवकाश नहीं है जबकि द्वितीय संस्करण में छंदों के मध्य अवकाश प्रस्तुत किया गया है।

सन् १६३८ ई० (१६६५ वि०) में "आँसू" का तृतीय संस्करण "भारती-भंडार" प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में छंदों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई, किंतु द्वितीय संस्करण के तीन-चार छंदों में परिवर्तन हुए हैं। इस संस्करण की पृष्ठ संख्या उन्यासी है।

"प्रसाद" जी ने उपर्युक्त परिवर्तन अकारण नहीं किए। डॉ० किशोरीलाल गुप्त और श्री सुधाकर पांडेय के मतानुसार श्री रामचंद्र शुक्ल का

प्रहार इस परिवर्तन के मूल में है । शुक्ल जी ने " आँसू " के प्रथम संस्करण को ही देखकर उसकी आलोचना की थी । डॉ० किशोरीलाल गुप्त लिखते हैं - इसीलिए आचार्य शुक्ल जी को अपने इतिहास में कहना पड़ा -" सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव निष्पन्न नहीं होता ।" - इतिहास पृ० ८२० । द्वितीय संस्करण में ये मुक्तक मात्राओं में पिरो दिये गये हैं, इसलिए उनका क्रम बहुत बदल गया है ; और इस हालत में उनका समन्वित प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता ।"[१] श्री सुधाकर पाण्डेय का मत है -" आँसू के संबंध में शुक्ल जी की मान्यता है ।" आँसू की वेदना की कोई निर्दिष्ट भूमि नहीं है और उसका समन्वित प्रभाव निष्पन्न नहीं होता ।" संभवत: वेदना की भूमि निर्दिष्ट करने के लिए तथा एक समन्वित प्रभाव की सृष्टि के लिए प्रसाद जी ने वैसा किया हो ------ ।[२]

अपनी रचनाओं में आवश्यकतानुसार सुधार करना " प्रसाद" जी के स्वभाव का धर्म बन गया था । इस कारणवश अन्य कई रचनाओं की तरह " आँसू" में भी परिवर्तन किये गए । इसके अतिरिक्त" आँसू ", " प्रसाद" जी का अत्यंत प्रिय काव्य था जैसा कि श्री विनोद शंकर व्यास का कथन है," यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि" आँसू " कवि को बहुत प्रिय है ।"[३] इस कारण से भी " प्रसाद" जी ने इसे पहले से बेहतर बनाने के प्रयास में इसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये । तृतीय संस्करण में पुन: उन्होंने कतिपय परिवर्तन किये । यह संस्करण" प्रसाद" जी की मृत्यु (सन् १९३७) के उपरांत सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ । यदि वे कुछ समय तक और जीवित रहते, तो हमें कदाचित्" आँसू " कुछ भिन्न रूप में प्राप्त होता ।

" आँसू" के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय संस्करणों के मिलान करने पर हमें निम्नलिखित परिवर्तन परिलक्षित होते हैं :-

" आँसू" के प्रथम संस्करण का पहला छंद यह है -

इस करुणा-कलित हृदय में
क्यों विकल रागिनी बजती ?

१-" प्रसाद" का विकासात्मक अध्ययन - डॉ. किशोरीलाल गुप्त, पृ०सं० ९४ ।
२- प्रसाद की कविताएँ - श्री सुधाकर पाण्डेय, पृ०सं० १७०-१७१ ।
३- प्रसाद और उनका साहित्य-श्री विनोदशंकर व्यास, पृ०सं० १९० ।

क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?[४]

" आँसू " के द्वितीय संस्करण में उक्त छंद में एक अंतर दिखायी देता है। प्रथम संस्करण में इस छंद के दूसरे चरण में " क्यों " का प्रयोग हुआ है, जबकि द्वितीय संस्करण में इस " क्यों " के स्थान पर " अब "[५] का प्रयोग हुआ है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमें विदित होगा कि " क्यों " के स्थान पर " अब " के प्रयोग से छंद कितना सार्थक हो गया है। " अब " के प्रयोग से यह बोध होता है कि कवि का अतीत अत्यंत मधुमय, भव्य एवं आकर्षक था और उसका वर्तमान इस वैभव के अभाव में, रिक्त हो गया है। फलस्वरूप उसकी करुणा-कलित हृदय में दुःख की रागिनियाँ बज रही हैं। प्रथम संस्करण के छंद में प्रयुक्त " क्यों " शब्द उपर्युक्त अर्थ व्यक्त करने में असमर्थ सिद्ध होता है। इस छंद में किया गया परिवर्तन " आँसू " के अर्थ-संदर्भ के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ।

" आँसू " के प्रथम संस्करण का नवाँ छंद इस प्रकार है -

बस गई एक बसती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील-निलय में।[६]

" आँसू " के द्वितीय संस्करण में " बसती " के स्थान पर " बस्ती "[७] का प्रयोग हुआ है। यह परिवर्तन पंक्ति की लय को सुधारने की दृष्टि से हुआ है। पंक्ति में " बसती " कहने में जो रुकावट होती है, वह " बस्ती " के प्रयोग से दूर हो जाती है।

" आँसू " के प्रथम संस्करण का दसवाँ छंद यह है -

ये सब स्फुलिंग हैं, मेरी -
उस ज्वालामयी जलन के,

४- आँसू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १ ।
५- आँसू (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३ ।
६- आँसू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३ ।
७- आँसू (द्वितीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ५ ; छंद संख्या ५ ।

कुछ शेष चिन्ह है केवल
मेरे उस महामिलन के । [८]

द्वितीय संस्करण में, इस छंद में कोई परिवर्तन नहीं हुआ किंतु तृतीय संस्करण में 'उस' के (द्वितीय चरण) स्थान पर 'इस' [९] का प्रयोग हुआ है । कवि का प्रियतम से महामिलन हुआ था किंतु अब उसे विरहाग्नि में जलना पड़ रहा है । इस विरहाग्नि के प्रज्वलित होने से जो चिनगारियाँ निकल रही हैं वस्तुत: ये ही उस महामिलन की मधुर स्मृतियाँ हैं । यह अर्थ तब व्यक्त होता है जबकि 'उस ज्वालामयी' के स्थान पर 'इस ज्वालामयी' प्रयुक्त किया जाए (तृतीय संस्करण में 'इस' का ही प्रयोग हुआ है)। 'उस' के प्रयोग से यह अर्थ निकलता है कि कवि का प्रियतम से महामिलन हुआ था और ये चिनगारियाँ विगत विरहाग्नि की हैं किंतु 'इस' के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि अभी तक विरहाग्नि में जल रहा है ।

प्रथम संस्करण का सातवाँ छंद यह है -

शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृग जल का ;
यह व्यर्थ साँस चलकर
करता है काम अनिल का । [१०]

द्वितीय संस्करण में चतुर्थ चरण के 'करता' के स्थान पर 'करती' [११] का प्रयोग हुआ है । 'साँस (स्त्रीलिंग) के साथ क्रिया 'करता' (पुल्लिंग) का प्रयोग व्याकरणिक दृष्टि से अनुचित है । 'करता' के स्थान पर 'करती' रख देने से छंद में उपस्थित व्याकरणिक असंगति का परिहार हो गया ।

प्रथम संस्करण के तेरहवें छंद की पंक्ति है -

बाड़वज्वाला सोती थी
इस प्रेम-सिंधु के तल में ; [१२]

८- आँसू (प्रथम संस्करण) छंद संख्या १० ; पृष्ठ संख्या ३।
९- आँसू (तृतीय संस्करण) छंद संख्या ६ ; पृष्ठ संख्या ६ ।
१०- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३ ।
११- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७ ; पृष्ठ संख्या ६ ।
१२- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ७ ।

द्वितीय संस्करण में "प्रेम-सिंधु" के स्थान पर "प्रणय-सिंधु "[13] प्रयुक्त हुआ है । इसी प्रकार, प्रथम संस्करण के अट्ठाइसवें छंद की पंक्ति में "जगती "[14] का प्रयोग हुआ है, जबकि द्वितीय संस्करण के इसी छंद में इसके स्थान पर "धरती "[15] का प्रयोग हुआ है । उपर्युक्त दोनों शब्द -परिवर्तन भाषा सौंदर्य की दृष्टि से किए गए हैं, जो कि सफल हुए हैं । "आँसू" के प्रथम संस्करण का अट्ठारहवां छंद यह है-

मादक थी, मोहमयी थी,
    मन बहलाने की क्रीड़ा,
हाँ हृदय हिला देती थी
    वह मधुर प्रेम की पीड़ा ।[16]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा ।[17]

यहाँ तृतीय चरण में "हाँ" के स्थान पर "अब" का और "थी" के स्थान पर "है" का प्रयोग हुआ है । कवि संयोगावस्था में प्रियतम के साथ मोहमयी क्रीड़ा करता था, जो कि मादकता से परिपूर्ण थी किंतु आज प्रियतम से वियोग होने के कारण संयोगावस्था की मधुर स्मृतियाँ हृदय को दु:सह्य कष्ट दे रही हैं । यह स्थिति "अब" और "है" के प्रयोग से स्पष्ट होती है । "हाँ" और "थी" के प्रयोग से यह अर्थ व्यक्त नहीं होता क्योंकि इनके प्रयोग से यह बोध होता है कि संयोगावस्था की मधुर स्मृतियों से हृदय को कष्ट हुआ करता था किंतु इस समय सुखद स्मृतियाँ कोई कष्ट नहीं पहुँचा रही हैं । इस प्रकार भूतकाल के वाक्य को वर्तमान काल में परिवर्तित कर देने से कवि की विरह दशा के कष्ट का अनुभव सरलता से होने लगता है ।

१३- आँसू (द्वितीय संस्करण)- छंद संख्या ८ ; पृष्ठ संख्या ६ ।
१४- आँसू (प्रथम संस्करण)- पृष्ठ संख्या ८ ।
१५- आँसू (द्वितीय संस्करण)- छंद संख्या ६ ; पृष्ठ संख्या ६ ।
१६- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या ५ ।
१७- आँसू (द्वितीय संस्करण) - छंद संख्या १४ ; पृष्ठ संख्या ८ ।

प्रथम संस्करण का ग्यारहवाँ छंद यह है -

चातक की चकित पुकारें
  श्यामा-ध्वनि सरल-रसीली ;
मेरी करुणार्द्र कथा की -
  टुकड़ी, आँसू से गीली ।[१८]

द्वितीय संस्करण में इस छंद में यह परिवर्तन हुआ कि 'सरल' के स्थान पर 'तरल'[१९] शब्द प्रयुक्त किया गया । यह परिवर्तन उचित नहीं हुआ क्योंकि ध्वनि सरल होती है, तरल नहीं । 'तरल' शब्द के प्रयोग से कोई अर्थ नहीं निकलता । 'प्रसाद' जी ने भी इसे अनुचित समझकर 'आँसू' के तृतीय संस्करण में पुन: 'तरल' के स्थान पर 'सरल' शब्द प्रयुक्त किया ।

प्रथम संस्करण का उन्नीसवाँ छंद द्रष्टव्य है -

जीवन की जटिल समस्या
  है जटा-सी बढ़ी कैसी
उड़ती है धूल हृदय में
  किसकी विभूति है ऐसी ।[२०]

द्वितीय संस्करण में उक्त छंद इस प्रकार है -

जीवन की जटिल समस्या
है बढ़ी जटा-सी कैसी
उड़ती है धूल हृदय में
किसकी विभूति है ऐसी ?[२१]

द्वितीय संस्करण के इस छंद के द्वितीय चरण में शब्दों का विपर्यय किया गया है । 'है जटा-सी बढ़ी कैसी' के स्थान पर 'है बढ़ी जटा-सी कैसी' हो गया है । 'जटा - सी' को पहले रखने से छंद के प्रवाह में बाधा उत्पन्न

१८- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या ४ ।
१९- आँसू (द्वितीय संस्करण) - छंद संख्या १६ ; पृष्ठ संख्या ९ ।
२०- आँसू (प्रथम संस्करण)- पृष्ठ संख्या ६ ।
२१- आँसू (द्वितीय संस्करण) - छंद संख्या १८ ; पृष्ठ संख्या १० ।

हो गई थी । "जटा-सी" के बाद में प्रयोग से छंद प्रवाह में उत्पन्न अवरोध दूर हो गया । यहाँ शब्दों के विपर्यय करने से छंद की प्रवाहमयता को वृद्धि प्राप्त हुई है ।

प्रथम संस्करण का ६३वाँ छंद है -

रो रो कर सिसक सिसक कर
कहता मैं विरह कहानी
वे सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी ।[२२]

द्वितीय संस्करण का यह छंद इस प्रकार है -

रो रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुणा - कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी ।[२३]

द्वितीय संस्करण में "विरह" के स्थान पर "करुणा" शब्द का प्रयोग किया है । साथ ही "वे" के स्थान पर "तुम" प्रयुक्त किया है । "विरह" का प्रयोग अनुचित नहीं था, फिर भी "करुणा" का प्रयोग साभिप्राय किया गया है । इस छंद के पूर्व के छंद में कवि अपने प्रियतम को संबोधित करके कह चुका है -

धागों से इन आँसू के
निज करुणा-पट बुनते हो ।

"करुणा-पट" बुननेवाला प्रियतम, प्रिय की करुणा-कहानी सुनकर भी उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करता है । इस संदर्भ में "करुणा" शब्द "विरह" से अधिक उपयुक्त है ।

प्रथम संस्करण में कवि ने प्रियतम को प्राय: मध्यम पुरुष के रूप में संबोधित किया था, वे संबोधन द्वितीय संस्करण में प्राय: अन्य पुरुष के

२२- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या १६ ।

२३- आँसू (द्वितीय संस्करण) - छंद संख्या २१ ; पृष्ठ संख्या ११ ।

रूप में परिवर्तित हो गए हैं । इसके विपरीत द्वितीय संस्करण के प्रस्तुत छंद में प्रथम संस्करण के " वे " के स्थान पर " तुम " रख दिया गया है । प्रियतम को अन्य पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष में संबोधित किया गया है । कवि ने इस छंद के पूर्व के छंद में भी प्रियतम को " मध्यम पुरुष " के रूप में संबोधित किया है । इन छंदों में कवि ने भावावेश की अधिकता के कारण प्रियतम को मध्यम पुरुष में सम्बोधित किया है ।" तुम " के प्रयोग से छंद के सौंदर्य में अभिवृद्धि हुई है ।

प्रथम संस्करण का ३४वाँ छंद द्रष्टव्य है -

मैं बल खा खा जाता था
मोहित बेसुध बलिहारी ;
अंतर के तार खिंचे थे
तीखी थी तान हमारी ।[२४]

द्वितीय संस्करण में " खा खा " के स्थान पर " खाता "[२५] शब्द का प्रयोग हुआ है । " खा खा " की ध्वनि नाद-सौंदर्य में बाधा उत्पन्न करती थी, अत:" प्रसाद " जी ने द्वितीय संस्करण में इसे " खाता " में परिवर्तित कर दिया । यह परिवर्तन नाद-सौंदर्य से प्रेरित होकर किया गया है ।

" आँसू " के प्रथम संस्करण का १५वाँ छंद द्रष्टव्य है -

झंझा झकोर गर्जन है,
बिजली है नीरद माला ;
पाकर इस शून्य हृदय को
सब ने आ, डेरा डाला ।[२६]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस रूप में है -

झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी, नीरदमाला,
पाकर इस शून्य हृदय को
सब ने आ डेरा डाला ।[२७]

२४- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ६ ।
२५- आँसू (द्वितीय संस्करण) ; छंद संख्या २२ ; पृष्ठ संख्या ११ ।
२६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ५ ।
२७- आँसू (द्वितीय संस्करण); छंद संख्या २३ ; पृष्ठ संख्या ११ ।

परिवर्तित संस्करण में " है " के स्थान पर " था " का प्रयोग किया गया है अर्थात् वर्तमान काल के वाक्य को भूतकाल में परिवर्तित कर दिया । जिस समय " आँसू " का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, उस समय कवि का प्रियतम से वियोग हुए अधिक दिन नहीं हुए थे । इसलिए प्रथम संस्करण के छंद प्रायः वर्तमान काल में है । " आँसू " का द्वितीय संस्करण, आठ वर्षों के पश्चात् प्रकाशित हुआ । यह पूर्णतः अतीत-व्यथा का काव्य हो गया । इसलिए द्वितीय संस्करण के छंद प्रायः भूतकाल में हो गए हैं । अतः उपर्युक्त परिवर्तन काल-भेद की स्पष्टता के लिए किया गया है ।

" आँसू " के प्रथम संस्करण का ६६वाँ छंद है -

बिजली माला पहनाकर
मुस्क्याता था आँगन में ;
हाँ, कौन बरस जाता था
रस-बूँद हमारे मन में ?[२८]

" आँसू " के द्वितीय संस्करण में पहली और दूसरी पंक्तियों में परिवर्तन किया गया है । ये पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं -

बिजली माला पहने फिर
मुस्क्याता-सा आँगन में ।[२६]

परिवर्तित संस्करण में " पहनाकर " के स्थान पर " पहने फिर " एवं " था " के स्थान पर " सा " हो गया । प्रथम संस्करण में कवि का प्रियतम किसी अन्य को बिजली-माला पहनाता था, जबकि द्वितीय संस्करण में प्रियतम स्वयं बिजली माला पहने हुए हैं । साथ ही, प्रथम संस्करण में " था " का प्रयोग हुआ है, जिससे यह प्रतीत होता है कि कवि को निश्चय हो गया है कि उसके हृदय में प्रेम की अनुभूति जगानेवाला कौन है । इस तरह इस निश्चय के उपरांत उसका यह प्रश्न असंगत लगने लगता है -

" हाँ कौन बरस जाता था,
रस-बूँद हमारे मन में ? "

२८- आँसू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १७ ।

२६- आँसू (द्वितीय संस्करण) ; छंद संख्या २५ ; पृष्ठ संख्या १२ ।

इसके विपरीत "मुस्काता-सा" के प्रयोग से यह बोध होता है, जैसे कवि ने प्रियतम की मुस्कराहट का आभास मात्र प्राप्त किया है। उसे भ्रम बना रहता है। फलस्वरूप आगे की पंक्तियों में किया गया प्रश्न संगत प्रतीत होता है। इस तरह "बिजली-माला पहने फिर" से जहाँ अर्थ में किंचित परिवर्तन हो गया, वहीं कवि के प्रियतम के तेजोमय स्वरूप का आभास भी मिलता है। इन परिवर्तनों से छंद में अर्थ-गांभीर्य आ गया।
"आँसू" के प्रथम संस्करण का ६४वाँ छंद निम्नलिखित है -

तुम सत्य रहे चिर-सुंदर
  मेरे इस मिथ्या जग के।
थे कभी न क्या तुम साथी
  कल्याण-कलित मम मग के।[30]

"आँसू" के द्वितीय संस्करण में उक्त छंद इस रूप में है -

तुम सत्य रहे चिर-सुंदर
मेरे इस मिथ्या जग के
थे केवल जीवन-संगी
कल्याण-कलित इस मग के।[31]

कवि को इस मिथ्या जग में प्रियतम, जो सत्य एवं चिर-सुंदर था, ही आकर्षित कर सका था। कल्याणकारी प्रेम के सुंदर मार्ग का एक मात्र साथी वही था। कवि को वस्तुतः इस छंद में, यही अर्थ अभीष्ट है। प्रथम संस्करण के "थे कभी न क्या तुम साथी" में वह प्रियतम से प्रश्न करता है, जबकि द्वितीय संस्करण में वह निश्चय के साथ कहता है कि एक मात्र प्रियतम ही उसका, कल्याणकारी प्रेम के सुंदर मार्ग में, जीवन साथी था। इस प्रकार, द्वितीय संस्करण में कवि का जो विश्वास झलकता है, वह प्रथम संस्करण के छंद में दुर्लभ है। दूसरे, प्रथम संस्करण में "साथी" के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि वह कोई साधारण-सा साथी रहा होगा किंतु परिवर्तित संस्करण में "जीवन-संगी" के प्रयोग से "साथी" विशिष्ट हो गया। प्रथम संस्करण में "मम मग के" का प्रयोग हुआ है, जबकि द्वितीय संस्करण में "इस मग के" का प्रयोग मिलता है। "मम"

३०- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या १६।

३१- आँसू (द्वितीय संस्करण) ; छंद संख्या २६ ; पृष्ठ संख्या १२।

का प्रयोग कोई अर्थ व्यक्त करने में असमर्थ है क्योंकि " कल्याणकारी सुंदर " मेरे " मार्ग के से कोई अर्थ नहीं निकलता किंतु " कल्याणकारी सुंदर " इस " (अर्थात् प्रेम) मार्ग के, से एक स्पष्ट अर्थ व्यंजक होता है ।

प्रथम संस्करण का ३९ वाँ छंद द्रष्टव्य है -

कितनी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाए,
स्वर्ग गंगा की धारा में
मिलने की भेंट चढ़ाए [३२]

द्वितीय संस्करण की चतुर्थ पंक्ति में " मिलने की भेंट चढ़ाए " के स्थान पर " उज्ज्वल उपहार चढ़ाये " [३३] हो गया । कवि अपने प्रियतम को उपालंभ देता हुआ कहता है कि उसकी प्रतीक्षा में, कितनी निर्जन रातों में, उसने तारों के दीपक जलाए और उन्हें स्वर्ग-गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया । यही उसका प्रियतम के प्रति उज्ज्वल उपहार है । जब स्वर्ग-गंगा की धारा में तारों के दीपक प्रवाहित किए गए, तब इससे बढ़कर उज्ज्वल उपहार और क्या हो सकता है । इस दृष्टि से यह प्रयोग " मिलने की भेंट चढ़ाए " से श्रेष्ठ हुआ है । " सुमन " जी ने न जाने क्यों इस प्रयोग को अनुचित समझा और कहा, " उज्ज्वल उपहार चढ़ाए " तो बिलकुल उज्ज्वल ही है । [३४] उन्हें इसका कोई कारण अवश्य बताना चाहिए था ।

प्रथम संस्करण का ७५वाँ छंद है -

परिचय ! राका में निधि का
जैसा होता छिपकर है,
ऊपर से किरणें आतीं
मिलती हैं गले लहर से । [३५]

द्वितीय संस्करण में इस छंद की प्रथम एवं द्वितीय पंक्तियों में कुछ परिवर्तन हुए हैं -

---

३२- आँसू (प्रथम संस्करण) , पृष्ठ संख्या ११ ।
३३- आँसू (द्वितीय संस्करण) , छंद संख्या २७ ; पृष्ठ संख्या १३ ।
३४- कवि " प्रसाद की काव्य-साधना - श्री रामनाथ " सुमन " , पृष्ठ संख्या ७१ ।
३५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १९ ।

परिचय राका जलनिधि का
जैसे होता हिमकर है
ऊपर से किरणें आतीं
मिलती हैं गले लहर से ।[३६]

द्वितीय संस्करण में " मैं निधि " के स्थान पर " जलनिधि " का प्रयोग हुआ है । मात्र " निधि " के प्रयोग से कवि का अभीष्ट अर्थ ठीक से व्यक्त नहीं होता है । यद्यपि "निधि" शब्द से प्रकारांतर से समुद्र का बोध हो जाता है, तथापि यह शब्द समुद्र के अर्थ में अधिक प्रचलित न होने के कारण अर्थ की दुरूहता कुछ सीमा तक रह ही जाती है । " जलनिधि " शब्द के प्रयोग से छंद में विद्यमान दुरूहता का परिहार हो जाता है । साथ ही, परिवर्तित संस्करण में " जैसा " के स्थान पर " जैसे " का प्रयोग हुआ । यह प्रयोग भी उचित हुआ है । जैसा का प्रयोग व्याकरणिक दृष्टि से अनुचित था । यदि " प्रसाद " जी ने ये परिवर्तन न किये होते तो छंद के काव्य-सौंदर्य में अभिवृद्धि न होती ।

प्रथम संस्करण का ४५वाँ छंद निम्नलिखित है -

पतझड़ था झाड़ खड़े थे
सूखे-से फुलवारी में,
किसलय दल कुसुम बिछाकर
आए तुम इस क्यारी में ।[३७]

द्वितीय संस्करण में उक्त छंद इस प्रकार है -

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे
सूखी-सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर
आये तुम इस क्यारी में । [३८]

द्वितीय संस्करण में " से " के स्थान पर " सी " एवं " दल " के स्थान पर " नव " का प्रयोग किया गया है । इस छंद में कवि प्रियतम से संयोग के पूर्व की

३६- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ३० ; पृष्ठ संख्या १४ ।
३७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १२ ।
३८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ३३ ; पृष्ठ संख्या १५ ।

स्थिति तथा उसके आगमन के बाद की स्थिति का वर्णन करता है । ' सूखे-से ' के प्रयोग से झाड़ का सूखा होना ज्ञात होता है, किंतु फुलवारी की स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता । फुलवारी हरी-भरी है अथवा सूखी, यह स्पष्ट नहीं हो पाता । इसके विपरीत ' सूखी-सी ' के प्रयोग से फुलवारी का सूखा होना एवं पल्लव पुष्पों से रहित होना व्यंजित होता है । इस परिवर्तन से यह विदित हो जाता है कि प्रियतम के आगमन के पूर्व कवि का जीवन रूपी उपवन पूर्णतः नीरस एवं उजाड़ था । ' दल ' शब्द को हटा देने से छंद में किसी प्रकार की कमी नहीं आई । उसके स्थान पर ' नव ' शब्द प्रयुक्त करने से छंद में अर्थ संबंधी विशिष्टता आ गई । ' नव ' विशेषण युक्त कर देने से यह ज्ञात होता है कि प्रियतम जीवन रूपी क्यारी में जीर्ण पत्ते और मुरझाए फूल बिछाकर नहीं आया वरन् नए पत्ते और नए फूल बिछाकर आया ।

' आँसू ' के प्रथम संस्करण का ४७वाँ छंद उल्लेखनीय है -

शशि- मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधूली में
कौतूहल-से तुम आए ।[३९]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

शशि-मुख पर घूँघट डाले
अंतर में दीप छिपाए
जीवन की गोधूली में
कौतूहल-से तुम आए ।[४०]

इस संस्करण में ' अंचल ' के स्थान पर ' अंतर का प्रयोग किया गया है । यह परिवर्तन संतोषजनक नहीं हुआ क्योंकि ' अंतर ' के प्रयोग से भारतीय नारी का एक चिर-परिचित चित्र आँखों के सामने से ओझल हो जाता है ; जैसा सुमन जी ने लिखा है, इस चित्र को अत्यंत सजीव रूप में, युग-युग से हम देखते आ रहे हैं । उसमें भारतीय नारी का सजीव चित्र अंकित हुआ है । जब गृह में संध्या का आगमन होता है, नारी अंचल में दीप छिपाये हुए, कि कहीं वायु के झकोरों से विकम्पित होकर उसकी लौ बुझ न

३९- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ११ ।
४०- आँसू (द्वितीय संस्करण), छंद संख्या ३४ ; पृष्ठ संख्या १५ ।

जाय, गृह-प्रकोष्ठ की ओर अथवा कुल-देवता के मंदिर की ओर बढ़ती है । इस मनोरम सात्विक रूप में जीवन का, प्रेम और प्रकृति का रहस्य लेकर मंदगति से चलती हुई नारी से भारत की आत्मा परिचित है । इस अंचल के नीचे अनादि काल से नारी हृदय का प्रेम-प्रदीप जल रहा है ।"[४१] इस प्रकार यह परिवर्तन पूर्णत: अनुचित सिद्ध होता है । इस परिवर्तन में छंद का काव्य सौंदर्य नष्ट हो गया । "प्रसाद" जी ने भी इसे अनुचित समझा, अत: "आँसू" के तृतीय संस्करण में उन्होंने पुन: "अंतर" के स्थान पर "अंचल" शब्द का प्रयोग किया । इस प्रकार छंद का सौंदर्य नष्ट होने से बच गया ।

"आँसू" के प्रथम संस्करण का ६३वाँ छंद निम्नलिखित है -

माना कि रूप-सीमा है,
यौवन में, सुंदर ! तेरे,
पर एक बार आए थे
निस्सीम हृदय में मेरे ।[४२]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

माना कि रूप-सीमा है
सुंदर ! तव चिर यौवन में
पर समा गये थे, मेरे
मन के निस्सीम गगन में ![४३]

यहाँ कई परिवर्तन दिखाई देते हैं । द्वितीय चरण में शब्दों के स्थान में परिवर्तन कर दिया गया है । कवि का प्रियतम सर्वप्रथम सुन्दर है, अत: इस बात पर बल देने के लिए "सुंदर" शब्द का पहले प्रयोग किया । प्रथम संस्करण में "यौवन" शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु द्वितीय संस्करण में "चिर-यौवन" शब्द का प्रयोग किया है । प्रथम संस्करण में प्रियतम का यौवन साधारण प्रतीत होता है, किंतु द्वितीय

४१- कवि "प्रसाद" की काव्य-साधना - पृष्ठ संख्या ६६-७० ।
४२- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १७ ।
४३- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ३७ ; पृष्ठ संख्या १६ ।

संस्करण में " चिर " विशेषण के प्रयोग से " यौवन " विशिष्ट हो गया । प्रथम संस्करण में " तेरे " का प्रयोग हुआ जबकि द्वितीय " संस्करण में, इसके स्थान पर " तव " का प्रयोग हुआ है । " तेरे " के स्थान पर " तव " का प्रयोग छंद की रमणीयता की वृद्धि के लिए किया गया है क्योंकि " तव " शब्द कोमल है । प्रथम संस्करण के " पर एक बार आए थे " वाक्य के स्थान पर " पर समा गए थे " वाक्य का प्रयोग हुआ है । " पर एक बार आए थे ------ " वाक्य से यह विदित होता है कि प्रियतम कवि के हृदय में मात्र " एक बार " आया था और फिर चला गया किंतु " पर समा गए थे ------ " वाक्य से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि कवि के प्रियतम के रूप-सौंदर्य ने समग्र रूप से उसके हृदय पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था । प्रथम संस्करण में कवि ने हृदय को " निस्सीम " रूप में वर्णित किया है, जबकि हृदय की निस्सीमता हमारे समक्ष कोई रूप नहीं प्रस्तुत करती । वस्तुतः यह ससीम है । इसके विपरीत द्वितीय संस्करण में " हृदय " के स्थान पर " गगन " को निस्सीम रूप में वर्णित किया है जो कि वास्तव में निस्सीम है ।

प्रथम संस्करण का ४८ वाँ छंद निम्नलिखित है -

बाँधा है विधु को किसने
इन काली जंजीरों से ;
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा आज हीरों से ।[४४]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?[४५]

द्वितीय संस्करण में " है " के स्थान पर " था " का एवं " आज " के स्थान पर " हुआ "

४४- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या १३ ।
४५- आँसू (द्वितीय संस्करण) - छंद संख्या ३६ ; पृष्ठ संख्या १७ ।

का प्रयोग मिलता है । इस छंद में कवि अपने प्रियतम की केशराशि के सौंदर्य का वर्णन करता है । जैसा पहले कहा जा चुका है कि प्रथम संस्करण के प्रकाशन के आठ वर्षों के पश्चात द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, अत: " प्रसाद " जी ने काल-भेद स्पष्ट करने के लिए 'है ' के स्थान पर " था " एवं " आज " के स्थान पर 'हुआ' का प्रयोग किया । काल-भेद के स्पष्टीकरण की दृष्टि से उक्त परिवर्तन उचित हुए ।

प्रथम संस्करण का ४९वाँ छंद द्रष्टव्य है -

काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली,
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली ![४६]

द्वितीय संस्करण में " कैसी " के स्थान पर " कितनी " [४७] का प्रयोग किया गया है । इस छंद में कवि कहता है कि प्रियतम की आँखें काली हैं, इनमें जो लालिमा विद्यमान है, वस्तुत: वह यौवन के मद की लालिमा है । जब कवि को अपने प्रियतम की आँखों में विद्यमान लालिमा के कारण का ज्ञान हो गया है, तब उसका " कैसी " प्रयोग से प्रश्न करना कोई अर्थ नहीं रखता । इसके विपरीत " कितनी " प्रयोग से कवि यौवन के मद की लाली की अधिकता को व्यक्त करना चाहता है । यह परिवर्तन काव्य-सौंदर्य की अभिवृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ ।

प्रथम संस्करण का ५०वाँ छंद द्रष्टव्य है -

सिर रही अतृप्त जलधि में
नीलम की नाव निराली,
काला-पानी बेला-सी
है अंजन रेखा काली ।[४८]

द्वितीय संस्करण में " अतृप्त " के स्थान पर " अतृप्ति " [४९] शब्द का

४६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १३ ।
४७- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ४० ; पृष्ठ संख्या १७ ।
४८- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १३ ।
४९- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ४१ ; पृष्ठ संख्या १८ ।

प्रयोग किया गया है। इस छंद में कवि कहता है कि प्रियतम के नेत्र अतृप्ति के सागर हैं, इन नेत्रों में श्याम रंग कीपुतलियाँ इधर-उधर घूम रही हैं, वस्तुत: ये नीलम की नाव हैं। नेत्रों के काजल की रेखा हमारे नेत्रों के लिए कारा बन गई हैं।" अतृप्ति" के प्रयोग से इस छंद का सादृश्य -विधान पूर्ण हो गया जो कि" अतृप्त" के प्रयोग से अपूर्ण प्रतीत होता था। अत: यह परिवर्तन, छंद में, सादृश्य की पूर्णता के लिए किया गया।

प्रथम संस्करण का ५३वाँ छंद द्रष्टव्य है -

विद्रुम-सीपी संपुट में
मोती के दाने कैसे,
है हंस न शुक यह, फिर क्यों
चुँगने की मुद्रा ऐसे।[५०]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

विद्रुम सीपी संपुट में
मोती के दाने कैसे
है हंस न, शुक यह, फिर क्यों
चुगने को मुक्ता ऐसे ? [५१]

द्वितीय संस्करण में" की मुद्रा" के स्थान पर " को मुक्ता" शब्द प्रयुक्त किया है। इस छंद में कवि अपने प्रियतम के अधरों व दंत पंक्तियों की सुंदरता का वर्णन करता है। वह कहता है कि मूँगे के सदृश लाल अधरों की सीपी में मोती के समान दांत शोभायमान हो रहे हैं। कवि के मन में यह कल्पना जन्म लेती है कि यहाँ हंस तो है नहीं, यहाँ तोता (नाक) स्थित है; फिर यहाँ मोती क्यों रखे हैं? (कवि-समय है कि हंस ही मोती चुगता है)।" की मुद्रा" के प्रयोग से शुक की मुद्रा का तो ज्ञान हो जाता है, किंतु वह क्या चुगता है, इसका ज्ञान नहीं हो पाता। इसके विपरीत" को मुक्ता" के प्रयोग से उक्त चित्र पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है और अधूरी उपमान योजना भी पूरी हो जाती है।

५१- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या १४।

५२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ४४ ; पृष्ठ संख्या ११।

प्रथम संस्करण का ५५वाँ छंद उल्लेखनीय है -

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय दल पुरइन के,
जल-बिंदु सदृश ठहरे कब
इन कोनों में दुख जिनके ।[५२]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय-से पुरइन के
जल-बिंदु सदृश ठहरे कब
उन कानों में दुख जिनके ?[५३]

द्वितीय संस्करण में 'दल' के स्थान पर 'से' का एवं 'कोनों' के स्थान पर 'कानों' का प्रयोग हुआ है। कवि कहता है कि (प्रियतम के) मुख रूपी कमल में दो नए पत्तों के सदृश कर्ण सुशोभित हो रहे हैं । जिस प्रकार कमल के पत्तों पर जल-बिंदु नहीं ठहर पाते, उसी प्रकार उन कानों में किसी दुखी व्यक्ति की वेदना के स्वर नहीं ठहर पाते अर्थात् प्रियतम दुख के स्वर सुन लेता है, किंतु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । 'पुरइन' के साथ 'दल' का प्रयोग निरर्थक था, क्योंकि 'पुरइन' का अर्थ है - 'कमल का पत्ता' । इस छंद में कवि का अभिप्राय इसी अर्थ से है । अतः 'दल' के प्रयोग की आवश्यकता नहीं थी । 'कोनों' के प्रयोग से सिर्फ कमल संबंधी अर्थ व्यक्त होता है किंतु कानों' के प्रयोग से कमल के पत्तों एवं प्रियतम के कानों, दोनों से ही संबंधित अर्थ ध्वनित होता है ।

प्रथम संस्करण का ५६वाँ छंद उल्लेखनीय है -

है किस अनंग के धनु की
यह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहु-लता या
तन-छवि-सर की है लहरी ।[५४]

५२- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १५ ।
५३- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ४६ ; पृष्ठ संख्या १६ ।
५४- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १५ ।

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

थी किस अनंग के धनु की
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी
अलबेली बाहुलता या
तनु छवि-सर की नव लहरी ?[५५]

द्वितीय संस्करण में ' है ' के स्थान पर ' थी ' का, ' यह ' के स्थान पर ' वह ' का तथा ' तन ' के स्थान पर ' तनु ' का प्रयोग हुआ है । ' थी ' और ' वह ' का प्रयोग काल-भेद स्पष्ट करने की दृष्टि से किया गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि आँसू का प्रथम संस्करण वर्तमान व्यथा का काव्य है, जबकि द्वितीय संस्करण अतीत व्यथा का काव्य है । इस काल-भेद को स्पष्ट करने के लिए ही उक्त दोनों परिवर्तन किए गए । ' तन ' के स्थान पर ' तनु ' का प्रयोग किया गया है, इस परिवर्तन का ' आँसू ' पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि दोनों शब्दों का अर्थ- शरीर होता है । इन परिवर्तनों के अतिरिक्त, द्वितीय संस्करण में ' छंद ' की चतुर्थ पंक्ति में प्रयुक्त ' है ' के स्थान पर ' नव ' विशेषण का प्रयोग किया गया है । भुजाओं को शरीर के सरोवर की लहरें कहना, मौलिक कल्पना है । साथ ही, ' नव ' विशेषण युक्त कर देने से उपमान में अतिरिक्त शक्ति एवं नवीनता आ गई ।

प्रथम संस्करण का ५७वाँ छंद विवेचनीय है -

चंचल स्नान कर आवे
चंद्रिका पर्व में जैसी,
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर है ऐसी ।[५६]

द्वितीय संस्करण में ' चंचल ' के स्थान पर ' चंचला ' का और ' है ' के स्थान पर ' था ' का प्रयोग हुआ है । ' चंचल ' के प्रयोग से कोई अर्थ निष्पन्न नहीं होता था, जबकि ' चंचला ' का अर्थ होता है - बिजली (तड़ित)। इसके अतिरिक्त ' है ' के स्थान पर ' था ' का प्रयोग काल-भेद को स्पष्ट करने के लिए किया गया है ।

५५- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ४७ ; पृष्ठ संख्या २० ।
५६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १५ ।

प्रथम संस्करण का ६४वाँ छंद इस प्रकार है -

तुम रूप-रूप थे केवल
    या हृदय भी रहा तुमको ?
जड़ता की सब माया थी
    चैतन्य समझकर हमको ।[५७]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

वह रूप रूप था केवल
या हृदय रहा भी उसमें
जड़ता की सब माया थी
चैतन्य समझ कर मुझमें ।[५८]

द्वितीय संस्करण में ' तुम ' के स्थान पर ' वह ' का ' थे ' के स्थान पर ' था ' का , ' भी रहा ' के स्थान पर ' रहा भी ' का और ' तुमको ' के स्थान पर ' उसमें ' का एवं ' हमको ' के स्थान पर ' मुझमें ' का प्रयोग हुआ है ।

' वह ' और ' उसमें ' का प्रयोग काल-भेद स्पष्ट करने की दृष्टि से किया गया है । ' थे ' के स्थान पर ' था ' का प्रयोग किया गया है । ' वह ' के साथ ' था ' का प्रयोग उचित हुआ है । ' भी रहा ' के प्रयोग से छंद का प्रवाह कुछ कम हो जाता है, क्योंकि ' भी ' पर थोड़े समय के लिए रुक जाना पड़ता है । इसके विपरीत ' रहा भी ' के प्रयोग से छंद में प्रवाह आ गया । ' हमको ' के स्थान पर ' मुझमें ' का प्रयोग छंद में तुक मिलाने के लिए किया गया , क्योंकि द्वितीय चरण में ' तुमको ' के स्थान पर ' उसमें ' का प्रयोग किया गया है ।

प्रथम संस्करण का ६३वाँ छंद यह है -

मेरे जीवन की उलझन
    बिखरी थीं तेरी अलकें,
पीली मधु मदिरा तुमने
    थीं बंद हमारी पलकें ।[५९]

५७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १७ ।
५८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ५० ; पृष्ठ संख्या २१ ।
५९- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २४ ।

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

मेरे जीवन की उलझन
बिखरीं थी उनकी अलकें
पी ली मधु मदिरा किसने
थीं बन्द हमारी पलकें ?[६०]

द्वितीय संस्करण में 'तेरी' के स्थान पर 'उनकी' का प्रयोग किया है। यह परिवर्तन काल-भेद स्पष्ट करने के लिए किया गया है। दूसरे, 'तुमने' के स्थान पर 'किसने' का प्रयोग किया गया है। कवि कहता है कि उसके जीवन में अनेक समस्याएँ उसी तरह व्याप्त थीं, जिस तरह प्रियतम की बिखरी हुई अलकें थीं। उन अलकों को देखने में वह तल्लीन हो गया और उसकी (कवि की) पलकें बंद हो गईं। इसी अवस्था में उसके हृदय के हर्षोल्लास तथा (प्रेम की) मधु-मदिरा का प्रियतम ने पान कर लिया। कवि भाव-विभोर होकर पूछने लगता है कि मधु मदिरा का पान किसने कर लिया ? भाव-विभोर होने की स्थिति 'किसने' के प्रयोग से उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से 'तुमने' के स्थान पर 'किसने' का प्रयोग काव्योचित हुआ है।

प्रथम संस्करण का ७०वाँ छंद द्रष्टव्य है -

थक जाती थी सुख-रजनी
मुख-चंद्र अंक में होता
श्रम सीकर सदृश नखत-से
अम्बर-पट भीगा होता।[६१]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

थक जाती थी सुख-रजनी
मुख-चंद्र हृदय में होता
श्रम-सीकर सदृश नखत से
अंबर पट भीगा होता![६२]

६०- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ५१ ; पृष्ठ संख्या २१।
६१- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १८।
६२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ५६ ; पृष्ठ संख्या २३।

द्वितीय संस्करण में 'अंक' के स्थान पर 'हृदय' का प्रयोग किया गया है। कवि कहता है कि प्रियतम का मुख-रूपी चंद्रमा उसके हृदय रूपी आकाश में रहता था। हृदय आकाश का प्रतीक है, इस कारण से 'प्रसाद' जी ने 'अंक' के स्थान पर 'हृदय' शब्द प्रयुक्त किया। 'अंक' शब्द से सिर्फ मुख से संबंधित अर्थ व्यक्त होता है, किंतु चंद्रमा से संबंधित अर्थ नहीं व्यक्त हो पाता। इस दृष्टि से 'हृदय' का प्रयोग उचित ही हुआ। साथ ही, द्वितीय संस्करण में 'मींगा' के स्थान पर 'मीगा' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'मींगा' शब्द व्याकरणिक दृष्टि से अनुचित था।

प्रथम संस्करण का १००वाँ छंद निम्नलिखित है -

सोएगी कभी न वैसी
उस मिलन-कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल-अलसाई
संभोग सुखों से तेरे।[६३]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन-कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसायी
सुख के सपनों से मेरे।[६४]

द्वितीय संस्करण में 'उस' के स्थान पर 'फिर' का प्रयोग हुआ। 'फिर' शब्द का प्रयोग इसलिए किया क्योंकि कवि अपनी निराशा व्यक्त करना चाहता है। उसे निश्चय हो गया है कि अब कभी उसका प्रियतम से, मिलन-कुंज में, संयोग न हो पायेगा। इसके अतिरिक्त द्वितीय संस्करण में 'संभोग सुखों से तेरे' के स्थान पर 'सुख के सपनों से मेरे' हो गया। 'संभोग' शब्द में कुछ अश्लीलता

६३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २६।

६४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ५७ ; पृष्ठ संख्या २३।

फलकती है, अत: उन्होंने इसके स्थान पर ' सुख के सपने ' का प्रयोग किया । कवि संयोग-काल के सुखद स्वप्न देखता है जिसमें उसका प्रियतम शिथिल एवं अलसायी हुई चाँदनी के सदृश दृष्टिगत होता है । यह अर्थ स्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि चाँदनी रूपमयी प्रेमिका के लिए व्यवहृत हुआ है ।[६५] इसके विपरीत ' संयोग सुखों से तेरे ' के साथ ' चाँदनी शिथिल अलसायी ' प्रयोग उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि इससे कवि की मनोव्यथा पूर्णत: अभिव्यक्त नहीं हो पाती । यहाँ अपनी मनोव्यथा को अभिव्यक्त करना कवि का अभीष्ट है ।

प्रथम संस्करण का ६४वाँ छंद है -

लहरों में प्यास भरी थी
थे भँवर पात्र भी खाली,
मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली ।[६६]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

लहरों में प्यास भरी है
है भँवर पात्र से खाली
मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली ।[६७]

द्वितीय संस्करण में ' थी ' के स्थान पर ' है ' का प्रयोग हुआ है और ' थे ' के स्थान पर भी ' है ' का प्रयोग हुआ है । कवि प्रियतम को उपालंभ देता है कि उसने कवि के मानस के संपूर्ण प्रेम-रस का पान कर लिया, इसके फलस्वरूप उसको तिरस्कृत करके चला गया और अब उसका जीवन रिक्त हो गया है । यह बाद की स्थिति ' है ' के प्रयोग से स्पष्ट होती है । ' थे ' के प्रयोग से प्रतीत होता है

६५- कवि ' प्रसाद ' 'आँसू' तथा अन्य कृतियाँ - प्रो० विनयमोहन शर्मा ; पृ०सं० ११५।

६६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २४ ।

६७- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ५८ ; पृष्ठ संख्या २४ ।

कि कवि का जीवन पहले रिक्त था किंतु अब नहीं है। इसके विपरीत कवि को अपनी वर्तमान व्यथा व्यक्त करना अभीष्ट है।

साथ ही द्वितीय संस्करण में " भी " के स्थान पर " है " का प्रयोग हुआ है। यह परिवर्तन संतोषजनक नहीं हुआ क्योंकि कवि कहना चाहता है कि प्रियतम ने उसके मानस का संपूर्ण प्रेम रस पी लिया, और उसे ठुकराकर चला गया; उसकी (कवि की) इच्छाएँ अभी अतृप्त हैं और उसका हृदय रिक्त है। इसके विपरीत " है " प्रयोग से प्रतीक का निर्वाह भलीभाँति नहीं हो पाता क्योंकि मँवर पात्र, वस्तुत: कवि के हृदय का प्रतीक है और " है " प्रयोग से मँवर, पात्र से अलग हो जाती है। अत: यह परिवर्तन संतोषजनक नहीं हुआ। " प्रसाद " जी ने भी इसे अनुचित समझा, अत: उन्होंने " आँसू " के तृतीय संस्करण में पुन: " भी " का प्रयोग किया।[६८]

प्रथम संस्करण का २१वाँ छंद द्रष्टव्य है -

> किंजल्क जाल हैं बिखरे
> उड़ता पराग है रूखा;
> क्यों स्नेह-सरोज हमारा
> बिकसा मानस में सूखा ?[६९]

द्वितीय संस्करण में उक्त छंद इस प्रकार है -

> किंजल्क-जाल हैं बिखरे
> उड़ता पराग है रूखा
> है स्नेह-सरोज हमारा
> बिकसा, मानस में सूखा।[७०]

द्वितीय संस्करण में " क्यों स्नेह-सरोज हमारा " के स्थान पर " है स्नेह-सरोज हमारा " का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत छंद में कवि अपने प्रिय के चले जाने के बाद की स्थिति का वर्णन करता है। वह कहता है कि उसके

६८- आँसू (तृतीय संस्करण) छंद संख्या ५८; पृष्ठ संख्या २८।

६९- आँसू (प्रथम संस्करण) छंद संख्या ६।

७०- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ५६; पृष्ठ संख्या २४।

मन रूपी सरोवर में कभी प्रेम रूपी कमल विकसित हुआ था (प्रियतम से संयोग होने पर)। वह प्रेमरूपी कमल आज प्रिय के चले जाने पर मुरझा गया है और सूखे, मुरझाए कमल के केसर-समूह बिखर रहे हैं और उसका शुष्क पराग चतुर्दिक उड़ रहा है।

छंद में " क्यों " के प्रयोग से उक्त चित्र पूर्णत: स्पष्ट नहीं हो पाता । कवि इस छंद में प्रियतम के चले जाने के बाद की अपनी स्थिति वर्णित करना चाहता है, किंतु " क्यों " का प्रयोग ऊपर-नीचे के वाक्यों को जोड़ने में असमर्थ रहता है । अत: क्यों " के स्थान पर " है " का प्रयोग काव्योचित हुआ है ।

प्रथम संस्करण का २२वाँ छंद यह है -

छिप गई कहाँ छूकर वे
मलयज की मृदुल हिलोरें ।
क्यों घूम गई हैं आकर
करुणा-कटाक्ष की कोरें ?[७१]

द्वितीय संस्करण में प्रथम पंक्ति के " गई " के स्थान पर " गयीं "[७२] का प्रयोग किया गया है अर्थात् प्रथम संस्करण में क्रिया का रूप एकवचन का था, जबकि द्वितीय संस्करण में क्रिया का रूप बहुवचन का हो गया । " गई " का प्रयोग इस छंद में, व्याकरणिक दृष्टि से दोषपूर्ण था क्योंकि " वे " बहुवचन के साथ क्रिया (गई) एक वचन की थी ।" गयीं " के प्रयोग से यह दोष दूर हो गया क्योंकि अब बहुवचन (वे) के साथ क्रिया भी बहुवचन (गयीं) की हो गई ।

प्रथम संस्करण का ३३वाँ छंद द्रष्टव्य है -

विस्मृति थी, मादकता थी,
मूर्च्छना भरी थी मन में ;
कल्पना रही, सपना था
मुरली बजती निर्जन में ।[७३]

७१- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ६ ।

७२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ६० ; पृष्ठ संख्या २५ ।

७३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ८ ।

द्वितीय संस्करण में इसका परिवर्तित रूप यह है -

विस्मृति है, मादकता है
मूर्च्छना भरी है मन में
कल्पना रही, सपना था
मुरली बजती निर्जन में ।[७४]

द्वितीय संस्करण में पहली और दूसरी पंक्ति में तीन स्थानों पर प्रयुक्त 'थी' के स्थान पर 'है' हो गया है । कवि ने ये परिवर्तन कदाचित् अपनी विरह स्थिति को व्यक्त करने के लिए किये हैं । कवि ने भूतकाल के प्रयोगों को वर्तमान काल में परिवर्तित कर दिया । वह, इस छंद में, प्रियतम से वियोग होने के बाद की स्थिति वर्णित करता है । वह कहता है कि प्रियतम की अनुपस्थिति में उसकी समस्त चेतना पर विस्मृति छा गई है । उसकी स्मृति से वह उन्मादित हो जाता है और सुखद अतीत की स्मृति से उसके मन में मूर्च्छना भर गई है । यह स्थिति 'थी' के प्रयोग से स्पष्ट नहीं होती वरन् यह 'है' के प्रयोग से स्पष्ट होती है । इस प्रकार ये परिवर्तन विरह स्थिति को व्यक्त करने के लिए किये गए हैं ।

प्रथम संस्करण का ८६वाँ छंद यह है -

हीरे सा हृदय हमारा
    कुचला शिरीष कोमल ने,
हिम शीतल प्रेम तुम्हारा
    अब लगा विरह से जलने ।[७५]

द्वितीय संस्करण में इसका परिवर्तित रूप इस प्रकार है -

हीरे-सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमलने
हिमशीतल प्रणय अनल बन
अब लगा विरह से जलने ।[७६]

७४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ६१ ; पृष्ठ संख्या २५ ।
७५- आँसू (प्रथम संस्करण) - पृष्ठ संख्या २१ ।
७६- आँसू (द्वितीय संस्करण)- छंद संख्या ६२ ; पृष्ठ संख्या २६ ।

द्वितीय संस्करण में "प्रेम तुम्हारा" के स्थान पर "प्रणय अनल बन" का प्रयोग किया गया है। "प्रेम" के स्थान पर "प्रणय" का प्रयोग संभवत: भाषा-सौंदर्य की दृष्टि से किया गया है। साथ ही, इसके पीछे तत्सम शब्द के प्रयोग का आग्रह भी है। इस छंद में कवि वर्णित करता है कि संयोगावस्था में जो वस्तुएँ सुखदायक थीं, वही वियोगावस्था में कष्ट पहुँचा रही हैं। संयोगावस्था में जिस प्रेम से शीतलता मिलती थी, आज (वियोगावस्था में) वही अग्नि के समान दाहक सिद्ध हो रहा है। "प्रेम तुम्हारा" के स्थान पर "प्रणय अनल बन" प्रयोग से कवि की विरह-स्थिति के कष्ट का अनुभव सहज ही होने लगता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का प्रियतम के प्रति प्रेम हिम के समान शीतल था, वही प्रेम (प्रियतम से वियोग होने पर) अब अग्नि बनकर कवि को कष्ट पहुँचा रहा है। ये परिवर्तन स्थिति (वियोगावस्था) की स्पष्टता और भाषा-सौंदर्य की दृष्टि से किये गये हैं और सफल हुए हैं।

प्रथम संस्करण का ५६वाँ छंद द्रष्टव्य है -

> कुसुमाकर रजनी के जो
> पिछले पहरों में खिलता,
> सुकुमार शिरीष कुसुम-सा
> मैं प्रात धूल में मिलता। [७७]

द्वितीय संस्करण में यह छंद परिवर्तित रूप में इस प्रकार है -

> कुसुमाकर रजनी के जो
> पिछले पहरों में खिलता
> उस मृदुल शिरीष-सुमन-सा
> मैं प्रात धूल में मिलता। [७८]

द्वितीय संस्करण में "सुकुमार" के स्थान पर "उस मृदुल" शब्द का प्रयोग किया है। "उस" का प्रयोग छंद के अर्थ को पूर्ण करने के लिए किया गया है।

७७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ७।

७८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ६६ ; पृष्ठ संख्या २७।

प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त 'जो' के साथ तृतीय पंक्ति के 'वह' का प्रयोग सर्वथा उचित हुआ है। 'उस' के प्रयोग करने पर 'सुकोमल' को हटाकर दूसरा विशेषण प्रयुक्त करना अनिवार्य था, अन्यथा छंद-विधान में त्रुटि आ जाती। 'प्रसाद' जी ने 'सुकोमल' के स्थान पर 'मृदुल' शब्द का प्रयोग किया। 'मृदुल' में अतिशय कोमलता का भाव निहित है। 'प्रसाद' जी ने 'कामायनी' में श्रद्धा के शरीर की अतिशय कोमलता वर्णित करने के लिए 'मृदुल' शब्द का ही प्रयोग किया है -

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।[७९]

'मृदुल' के प्रयोग से 'आँसू' के उक्त छंद में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी वरन् छंद में इसका प्रयोग 'सुकोमल' से श्रेष्ठतर ही हुआ है। इस दृष्टि से यह परिवर्तन 'आँसू' के अर्थ संदर्भ में सहायक सिद्ध हुआ।

प्रथम संस्करण का २६वाँ छंद यह है -

व्याकुल उस विपुल सुरभि से
मलयानिल धीरे धीरे,
निश्वास छोड़ जाता है
फिर विरह-तरंगिनि तीरे।[८०]

द्वितीय संस्करण में यही छंद परिवर्तित रूप में इस प्रकार है -

व्याकुल उस मधु-सौरभ से
मलयानिल धीरे धीरे
निश्वास छोड़ जाता है
अब विरह तरंगिनी तीरे।[८१]

७९- कामायनी - श्रद्धा सर्ग; पृष्ठ संख्या ५४; छंद संख्या ८। (द्वादश आवृत्ति)।
८०- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ७।
८१- आँसू (द्वितीय संस्करण), छंद संख्या ६७; पृष्ठ संख्या २७।

द्वितीय संस्करण में 'विपुल सुरभि' के स्थान पर 'मधु सौरभ' का एवं 'फिर' के स्थान पर 'अब' का प्रयोग हुआ है। 'मधु-सौरभ' प्रयोग संतोषजनक नहीं हुआ। 'विपुल सुरभि' से सीधा अर्थ निकलता था। मलयानिल की अतिशय सुगंध का जितना आभास 'विपुल-सुरभि' से होता था, उतना 'मधु-सौरभ' से नहीं होने पाता। संभवतः इस परिवर्तन के पीछे 'प्रसाद' जी का 'मधु' शब्द के प्रति अत्यंत मोह होना है। यह परिवर्तन अर्थ की दृष्टि से संतोषजनक नहीं हुआ। दूसरे, 'फिर' के स्थान पर 'अब' का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः 'अब' का प्रयोग कवि की तत्कालीन विरहावस्था को सुव्यक्त करने के लिए किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम पंक्ति में किया गया परिवर्तन जहाँ छंद के अर्थ में (कुछ सीमा तक) बाधक सिद्ध हुआ, वहीं चतुर्थ पंक्ति में हुआ परिवर्तन कवि की विरहावस्था का द्योतक सिद्ध हुआ।

प्रथम संस्करण का ३५वाँ छंद यह है -

चुंबन- अंकित प्राची का
  पीला कपोल दिखलाता,
मैं कोरी आँख निरख कर
  पथ, प्रभात में सो जाता।[८२]

द्वितीय संस्करण का यह छंद इस प्रकार है -

चुंबन अंकित प्राची का
पीला कपोल दिखलाता
मैं कोरी आँख निरखता
पथ, प्रात समय सो जाता।[८३]

द्वितीय संस्करण में 'निरखकर' के स्थान पर 'निरखता' का प्रयोग हुआ है और 'प्रभात में' के स्थान पर 'प्रात समय' का प्रयोग हुआ है। यह परिवर्तन पहले से अच्छा हुआ है। इस परिवर्तन के संबंध में डॉ० किशोरीलाल गुप्त का

८२- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १०।

८३- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ४८ ; पृष्ठ संख्या २८।

कथन द्रष्टव्य है - " पहले रूप में " निरखने " कार्य समाप्त हो गया है - प्रेमी पूर्ण रूप से निराश हो गया है ; और तब वह जान-बूझकर सोने चला गया है । दूसरी पंक्ति में निरखने का कार्य समाप्त नहीं हुआ है, वह अब भी निरख रहा है - यद्यपि अब तक वह निराश हो गया है, पर हताश नहीं हुआ है, इसलिए वह अब भी बराबर प्रतीक्षा करता है - यहाँ वह जान-बूझकर सोने नहीं जाता, बल्कि नींद उसे स्वयं आ जाती है । " प्रभात " में लघु गुरु का कुछ ऐसा क्रम है कि वह इस छंद में पूर्ण रूप से बंध नहीं पाता है, उसके टुकड़े-टुकड़े करके ही संगीत को प्रश्रय दिया जा सकता है । " प्रभात में " के ये दो टुकड़े हो जाते हैं - प्रभा- तमें " । और इस हालत में इसका कोई अर्थ नहीं होता । हर पाठक उक्त पंक्ति यों पढ़ेगा -

" मैं कोरी आँख निरखकर पथ प्रभात में सो जाता "

" प्रभात में " के स्थान पर " प्रात समय " कर देने से यह दोष दूर हो गया है। टुकड़े तो अब भी वही दो हैं, " प्रात समय " पर दोनों एक शब्द के टुकड़े नहीं हैं - स्वयं पूर्ण शब्द है ।[८४]

गुप्त जी के इस कथन से सिद्ध होता है कि ये परिवर्तन अर्थ एवं लय की दृष्टि से किये गये हैं, जो सफल हुए हैं ।

प्रथम संस्करण का ३४वाँ छंद द्रष्टव्य है -

श्यामल अंचल धरणी का
भर मुक्ता आँसू कन-से
छूँछा बादल बन आता
मैं प्रेम प्रभात गगन से ।[८५]

द्वितीय संस्करण इस छंद की तीसरी पंक्ति में " आता " के स्थान पर " आया "[८६] का प्रयोग किया गया है । काल-भेद स्पष्ट करने के लिए " प्रसाद " जी ने यह संशोधन किया । कवि ने प्रियतम को अपने प्रेमरस से सिक्त कर दिया। इस प्रक्रिया में उसका (प्रेम) रस-कोष रिक्त हो गया । आज जबकि प्रियतम उससे

८४- " प्रसाद " का क्रियात्मक अध्ययन - पृष्ठ संख्या १०७-१०८ ।

८५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १०।

विलग हो गया है, उसकी स्थिति छूंछे (रिक्त) बादल के सदृश हो गयी है । उक्त स्थिति " आया " के प्रयोग से स्पष्ट होती है ।

प्रथम संस्करण का ५८वाँ छंद यह है -

विष-प्याली जो मैं पीलूँ
वह मदिरा हो जीवन में,
सौंदर्य-पलक-प्याले का
त्यों प्रेम बना है मन में ।[८७]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

विष प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में
सौंदर्य पलक-प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में ।[८८]

द्वितीय संस्करण में " मैं पी लूँ " के स्थान पर " पी ली थी " का प्रयोग, " जीवन " के स्थान पर " नयन " का प्रयोग, त्यों " के स्थान पर " अब " का प्रयोग और " है मन " के स्थान पर " जीवन " का प्रयोग हुआ है । प्रथम संस्करण में छंद जिस रूप में था, उससे अर्थ विच्छिन्न होता था क्योंकि ऊपर की दो पंक्तियों में कवि प्रियतम के प्रेम रूपी विष की प्याली (के द्रव) को पीने की कल्पना करता है और इस अर्थ का आगे की पंक्तियों से कोई संबंध नहीं प्रतीत होता । इसके विपरीत छंद में किये गए परिवर्तनों से एक स्पष्ट अर्थ व्यक्त होता है - प्रियतम का प्रेम विष-प्याली के समान था । इसको पान करने के पश्चात् वह मदिरा के समान उसकी (कवि की आँखों में व्याप्त हो गया । प्रियतम के सौंदर्य का पलक रूपी प्याले में पान करना हीउसका ध्येय हो गया । प्रियतम के विलग हो जाने के पश्चात उसका प्रेम ही कवि के जीवन का आधार बन गया है । " त्यों " के स्थान पर " अब " का प्रयोग काल-भेद के

८६- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ६९ ; पृष्ठ संख्या २८ ।
८७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १६।
८८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७० ; पृष्ठ संख्या २८ ।

स्पष्टीकरण के लिए किया गया है । ' अब ' के प्रयोग से विदित होता है कि इस समय की स्थिति पहले से भिन्न है क्योंकि उसका प्रियतम से वियोग हो गया है ।

प्रथम संस्करण का ६१ वाँ छंद विवेचनीय है -

छायानट ! छवि परदे में
सम्मोहन बीन बजाता,
संध्या- कुहकिनी अंचल में
कौतुक अपना कर जाता ।[८९]

द्वितीय संस्करण में उक्त छंद निम्नलिखित रूप में है -

छायानट छवि परदे में
सम्मोहन वेणु बजाता
संध्या कुहुकिनी अंचल में
कौतुक अपना कर जाता ।[९०]

द्वितीय संस्करण में ' बीन ' के स्थान पर ' वेणु ' शब्द का प्रयोग किया गया है । ' बीन ' का उपयोग प्राय: सपेरा करता है । यहाँ (छाया) नट का उल्लेख हुआ है । नट सम्मोहन की प्रक्रिया में ' वेणु ' (वंशी) का उपयोग करता है । इस दृष्टि से ' बीन ' के स्थान पर ' वेणु ' का प्रयोग उचित प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त उक्त परिवर्तन के मूल में कृष्ण की वंशी का संदर्भ भी ग्रहण किया जा सकता है, जिसकी ध्वनि गोपिकाओं को सम्मोहित कर लेती थी ।

प्रथम संस्करण में ' कुहकिनी ' शब्द का प्रयोग हुआ है । द्वितीय संस्करण में इसके स्थान पर ' कुहुकिनी ' शब्द का प्रयोग किया गया है । ' कुहकिनी ' शब्द अशुद्ध होने के कारण, इसके स्थान पर शुद्ध शब्द ' कुहुकिनी ' प्रयुक्त किया गया ।

८९- आँसू (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या २४ ।
९०- आँसू (द्वितीय संस्करण) ; छंद संख्या ७२ ; पृष्ठ संख्या २६ ।

प्रथम संस्करण का ११६ वाँ छंद उल्लेखनीय है -

मादकता से आए वे
संज्ञा से चले गए थे,
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे से ।[६१]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से ।[६२]

द्वितीय संस्करण में 'वे' के स्थान पर 'तुम' का प्रयोग किया गया है । द्वितीय संस्करण में कवि ने काल-भेद स्पष्ट करने के लिए प्रायः मध्यम पुरुष को अन्य पुरुष में बदल दिया है किंतु यहाँ अन्य पुरुष को मध्यम पुरुष में परिवर्तित किया गया है । यह परिवर्तन कवि ने संभवतः भावावेश के अतिरेक के कारण से किया है, परंतु यह पहले रूप में ही उचित था क्योंकि उस प्रयोग से छंद में काल-भेद पूर्णतया स्पष्ट हो जाता था ।

दूसरे द्वितीय संस्करण में 'बिलखते' के स्थान पर 'बिलखते' का प्रयोग हुआ है । 'बिलखते' शब्द अशुद्ध था अतः द्वितीय संस्करण में इसे शुद्ध कर दिया गया ।

प्रथम संस्करण का १०२ वाँ छंद द्रष्टव्य है -

मकरंद मेघमाला-सी
वह मदमाती स्मृति आती,
इस हृदय विपिन की कलियाँ
जिसके रस से मुस्क्याती ।[६३]

६१- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३१ ।
६२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७३ ; पृष्ठ संख्या २६ ।
६३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २६ ।

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

मकरंद मेघ-माला-सी
वह स्मृति मदमाती आती
इस हृदय विपिन की कलिका
जिसके रस से मुसकाती ।[६४]

द्वितीय संस्करण में "मदमाती स्मृति" के स्थान पर "स्मृति मदमाती" का प्रयोग किया गया है । इस छंद में कवि अपने प्रियतम से हुए संयोग की स्मृति संजोता है । इसलिए "स्मृति" पर बल देने के कारण "स्मृति" को पहले रखा । साथ ही, द्वितीय संस्करण में कलियों के स्थान पर "कलिका" शब्द का प्रयोग किया है । यह संशोधन व्याकरण की दृष्टि से किया गया है । "कलियाँ (बहुवचन) के साथ "मुसकाती" (एकवचन) का प्रयोग हुआ है जो कि अशुद्ध है । इसके स्थान पर यदि "मुसकातीं" का प्रयोग हुआ होता , तो उचित रहता । यहाँ यह बात ध्यान में रखनी होगी कि "मुसकातीं" के साथ "आती" (द्वितीय चरण में) प्रयोग होने पर तुक-विधान में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती ।" कलिका" के प्रयोग से उक्त व्याकरणिक असंगति दूर हो गई, साथ ही तुक-विधान में भी गड़बड़ी नहीं आने पायी ।"कलिका" के प्रयोग से अर्थ में किसी प्रकार की दीणता नहीं आयी ।

प्रथम संस्करण का ६७वाँ छंद उल्लेखनीय है -

था हृदय शिशिर-कण-पूरित
मधु- वर्षा से शशि तेरे
मुक्ता मंडित इन्दीवर
रहता था नित्य सवेरे ।[६५]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

है हृदय शिशिरकण पूरित
मधु वर्षा से शशि तेरी

६४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७५ ; पृष्ठ संख्या ३१ ।
६५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १८ ।

मन मंदिर पर बरसाता
कोई मुक्ता की ढेरी ।[६६]

द्वितीय संस्करण में ' था हृदय ----' के स्थान पर ' है हृदय ----' का प्रयोग किया गया अर्थात् भूतकाल के वाक्य को वर्तमान काल के वाक्य में बदल दिया गया । यह परिवर्तन स्थिति को स्पष्ट करने की दृष्टि से किया गया है । कवि, प्रियतम से मिलन के क्षणों की मधुर स्मृतियों से आत्मविभोर हो जाता है । यह अर्थ ' है ' के प्रयोग से ही व्यक्त होता है । ' था ' के प्रयोग से प्रतीत होता है कि कवि प्रियतम से मिलन की मधुर स्मृतियों से आत्म विभोर होता था, किंतु अब नहीं । इस प्रकार ' था ' के प्रयोग से कवि की विरह स्थिति नहीं स्पष्ट हो पाती थी ।

द्वितीय संस्करण में तीसरी- चौथी पंक्ति को बदल दिया गया है और उसके स्थान पर ' मन मंदिर पर बरसाता , कोई मुक्ता की ढेरी ' का प्रयोग किया गया है । यह परिवर्तन अर्थ की दृष्टि से किया गया है । प्रथम संस्करण में इस छंद की पहली-दूसरी पंक्तियाँ, तीसरी-चौथी पंक्तियों से जुड़ी हुई नहीं मालूम होती हैं, जबकि द्वितीय संस्करण में इस छंद की उक्त पंक्तियाँ परस्पर संबद्ध हैं । इस प्रकार इनके संबद्ध होने के कारण यह अर्थ निकलता है : कवि कहता है कि प्रियतम, तुम्हारी स्मृतियों की मधु-वर्षा से मेरा हृदय रस सिक्त हो रहा है, इस वर्षा के फलस्वरूप मुझे ऐसा आभास हो रहा है जैसे कोई मेरे मन रूपी मंदिर में मोतियों की ढेरी की वर्षा कर रहा हो । इसके अतिरिक्त प्रथम संस्करण में ' तेरे ' का प्रयोग हुआ है, जबकि द्वितीय संस्करण में ' तेरी ' का प्रयोग हुआ । यह परिवर्तन तुक मिलाने के लिए किया गया है क्योंकि द्वितीय संस्करण में इस छंद की अंतिम पंक्ति है - कोई मुक्ता की ढेरी । ' ढेरी ' से तुक मिलाने के लिए ' तेरे ' के स्थान पर ' तेरी ' का प्रयोग किया गया है ।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि कवि ने प्रथम संस्करण में ' तेरे ' के प्रयोग से प्रियतम को पुरुष रूप में संबोधित किया था । उसे (प्रियतम को) स्त्री रूप में संबोधित करने के लिए ही ' तेरी ' का प्रयोग किया गया । किंतु ध्यान से

६६- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७६ ; पृष्ठ संख्या ३१ ।

देखने पर हमें विदित होगा कि 'प्रसाद' जी ने 'आँसू' में प्रियतम को कहीं पुरुष रूप में संबोधित किया है और कहीं स्त्री रूप में। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छंद में उन्होंने प्रियतम को पुरुष रूप में संबोधित किया है -

पतझड़ था, झाड़ खड़े थे
सूखी-सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर
आए तुम इस क्यारी में।

निम्नलिखित छंद में प्रियतम को स्त्री-रूप में संबोधित किया है -

छलना थी, तब भी मेरा
उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था।

इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने तुक मिलाने के लिए 'तेरे' के स्थान पर 'तेरी' का प्रयोग किया है।

प्रथम संस्करण का ६५वाँ छंद द्रष्टव्य है -

मधु-मालतियाँ सोती थीं
किसलय-उपधान सहारे
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर
गिनता अंबर के तारे।[६७]

द्वितीय संस्करण में उक्त छंद निम्नलिखित रूप में है -

मधु मालतियाँ सोती हैं
कोमल उपधान सहारे
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर
गिनता अंबर के तारे।[६८]

द्वितीय संस्करण में 'थीं' के स्थान पर 'हैं' का प्रयोग हुआ है।

६७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २५।

६८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७८ ; पृष्ठ संख्या ३२।

यह परिवर्तन कवि ने अपनी विरहावस्था को व्यक्त करने के लिए किया है । " थीं " के प्रयोग से स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती थी । इस छंद में कवि प्रियतम से बिछुड़ने के उपरांत अपनी व्याकुलता का वर्णन करता है । कवि कहता है कि जब समस्त संसार निद्रामग्न होता है, उस समय वह व्यर्थ ही प्रियतम के आगमन की राह देखते-देखते रात्रि व्यतीत कर देता है । कवि की यह व्यथा " थीं " के प्रयोग से व्यक्त नहीं हो पाती है । द्वितीय संस्करण में " किसलय " के स्थान पर " कोमल " शब्द का प्रयोग किया गया है । यों तो " किसलय " शब्द से भी कोमलता का कुछ आभास हो जाता है किंतु कवि कहना चाहता है कि मधु मालतियाँ अत्यंत सुखपूर्वक सो रही हैं, इसलिए उसने " किसलय " के स्थान पर " कोमल " शब्द प्रयुक्त किया । इस प्रकार इनके (मधुमालतियों के) सुख के सापेक्ष कवि की व्याकुलता और भी आलोकित हो उठती है ।

प्रथम संस्करण का १२० वाँ छंद विवेचनीय है -

निष्ठुर , आते हो जाओ
मेरा भी कोई होगा ;
प्रत्याशा विरह-निशा की
हम होंगे औ' दुख होगा ।[९९]

द्वितीय संस्करण में यह छंद निम्नांकित रूप में है -

निष्ठुर ! यह क्या, छिप जाना ?
मेरा भी कोई होगा
प्रत्याशा विरह-निशा की
हम होंगे औ', दुख होगा ।[१००]

द्वितीय संस्करण में " आते हो जाओ " के स्थान पर " यह क्या छिप जाना " का प्रयोग हुआ है । " आते हो जाओ " से यह विदित होता है कि प्रियतम आने को तत्पर है किंतु अभी गया नहीं । इसके विपरीत " यह क्या छिप जाना " से स्पष्ट होता है कि कवि प्रियतम के न आने के कारण झुंझला-सा गया है।

९९- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३१।

१००- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ७९ ; पृष्ठ संख्या ३२ ।

इसके फलस्वरूप वह कह उठता है कि मेरे पास तुमसे मिलने की आशा, विरह-रात्रि और विरह-वेदना आदि होंगे जो तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे साथ रहेंगे। यह परिवर्तन कवि की झुंझलाहट के कारण को व्यक्त करने में सफल हुआ है।

प्रथम संस्करण का ३६वाँ छंद उल्लेखनीय है -

जब शांत मिलन संध्या को
हम हेम-जाल पहनाते,
काली चादर की तह का
खुलना न देखने पाते।[101]

द्वितीय संस्करण में 'की तह' के स्थान पर 'के स्तर'[102] का प्रयोग किया गया है। इस परिवर्तन से अर्थ में कोई फ़र्क नहीं हुआ, फिर भी 'तह' शब्द 'स्तर' से कहीं अधिक प्रचलित है। साथ ही 'स्तर' के प्रयोग से छंद का प्रवाह कुछ अवरुद्ध हो गया। यदि यह अपने पूर्व रूप में ही होता तो ज़्यादा उचित होता। इस दृष्टि से यह परिवर्तन संतोषजनक नहीं हुआ।

प्रथम संस्करण का ८४वाँ छंद प्रस्तुत है -

वह छूटता नहीं छुड़ाए
रँग गया हृदय है ऐसा;
आँसू से धुला निखरता
यह रँग अनोखा कैसा।[103]

द्वितीय संस्करण में 'वह' के स्थान पर 'अब'[104] का प्रयोग किया है। कवि स्पष्ट करना चाहता है कि इस समय उसका हृदय प्रियतम के प्रेम से रँग गया और यह रँग प्रयत्न करने पर भी नहीं छूटता। कवि की इस दशा का परिचय 'अब' के प्रयोग से होता है। 'वह' के प्रयोग से अर्थ अस्पष्ट-सा रहता है। इस परिवर्तन से कवि की तत्कालीन विरह दशा का पता चलता है।

१०१- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १० ।
१०२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८० ; पृष्ठ संख्या ३३ ।
१०३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २२ ।
१०४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८१ ; पृष्ठ संख्या ३३ ।

प्रथम संस्करण का ४८वाँ छंद द्रष्टव्य है -

कामना कला की विकसी
कमनीय मूर्त्ति हो तेरी
खिंचती अब हृदय-पटल पर
अभिलाषा बनकर मेरी ।[१०५]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

कामना कला की विकसी
कमनीय मूर्ति बन तेरी
खिंचती है हृदय पटल पर
अभिलाषा बनकर मेरी ।[१०६]

द्वितीय संस्करण में "हो" के स्थान पर "बन" का प्रयोग किया है । यह परिवर्तन अर्थ में स्पष्टता लाने के लिए किया गया है । यद्यपि "हो" के प्रयोग से "बनने" का अर्थ निकलता है तथापि कुछ सीमा तक अस्पष्टता रह ही जाती है क्योंकि इस प्रयोग से दूसरा अर्थ (यदि तुम्हारी मूर्ति कमनीय हो) भी निकलता है जो कि कवि को अभीष्ट नहीं है । "बन" के प्रयोग से अन्य अर्थ की संभावना नहीं रहती । साथ ही, द्वितीय संस्करण में "अब" के स्थान पर "है" का प्रयोग हुआ है । यह परिवर्तन अच्छा नहीं हुआ क्योंकि "अब" के प्रयोग से काल-भेद स्पष्ट हो जाता है किंतु "है" के प्रयोग से वह इतना स्पष्ट नहीं हो सका । प्रथम परिवर्तन से अभीष्ट अर्थ व्यक्त हो गया और द्वितीय परिवर्तन से काल-भेद कुछ अस्पष्ट हो गया ।

प्रथम संस्करण का १०५ वाँ छंद विवेचनीय है -

चढ़ गई और भी ऊँची
रूठी करुणा की वीणा,
दीनता दर्प बन बैठी
साहस से बोली पीड़ा ।[१०७]

१०५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ११ ।
१०६- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८२ ; पृष्ठ संख्या ३४ ।
१०७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २७ ।

द्वितीय संस्करण में 'बोली' के स्थान पर 'कहती'[१०८] का प्रयोग किया गया है। यह परिवर्तन उचित हुआ है। 'बोली' के प्रयोग से ऐसा विदित होता है जैसे कि कवि की दीनता अभिमान में परिवर्तित हो जाने के बाद अपनी व्यथा को साहस से बोलकर चुप हो गई। इससे व्यथा की उग्रता का ज्ञान नहीं हो पाता। इसके विपरीत 'कहती' प्रयोग से यह व्यंजित होता है कि पीड़ा को व्यक्त करने का क्रम जारी है। साथ ही 'कहती' प्रयोग से यह भी विदित होता है कि व्यथा को साहस से व्यक्त करना कवि की दीनता (जो कि अभिमान में परिणत हो गई है) का स्वभाव हो गया है। साथ ही, 'बोली पीड़ा' कहना व्याकरण की दृष्टि से भी अशुद्ध है। इस परिवर्तन से अर्थ में स्वाभाविकता के साथ-साथ व्याकरण में शुद्धता आ गयी।

प्रथम संस्करण का १०६ वाँ छंद विवेचनीय है -

इस तीव्र प्रेम की मदिरा
जी भर कर छक कर मेरी
अब लाल आँख दिखलाकर
मुझको ही तुमने फेरी ।[१०९]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

यह तीव्र हृदय की मदिरा
जी भरकर - छक कर मेरी
अब लाल आँख दिखलाकर
मुझको ही तुमने फेरी ।[११०]

द्वितीय संस्करण में 'इस' के स्थान पर 'यह' का, 'तीव्र' के स्थान पर 'तीव्र' का और 'प्रेम' के स्थान पर 'हृदय' का प्रयोग किया गया है। 'इस' शब्द पुरानी हिंदी का है, अतः 'प्रसाद' जी ने इसके स्थान पर परिनिष्ठित खड़ी बोली हिंदी के 'इस' का प्रयोग किया क्योंकि प्रसाद के समकालीन विद्वान हिंदी को

१०८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८४ ; पृष्ठ संख्या ३४ ।
१०९- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २७ ।
११०- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८५ ; पृष्ठ संख्या ३५ ।

परिनिष्ठित बनाने का प्रयास कर रहे थे । प्रथम संस्करण में ' तीव्र ' शब्द है, द्वितीय संस्करण में इसे शुद्ध कर दिया गया । ' हृदय की मदिरा ' कहने में जो गंभीरता एवं काव्यात्मक सौंदर्य है, वह ' प्रेम की मदिरा ' कहने में नहीं है । ये परिवर्तन ' आँसू ' को पहले से विशिष्ट बनाने में सहायक हुए हैं ।

प्रथम संस्करण का ११४ वाँ छंद विवेचनीय है -

उस पार ! कहाँ ? फिर जाऊँ
तम के मलीन अंचल में ,
जीवन का लोभ न है वह
वेदना छद्म के छल में ।[१११]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

उस पार कहाँ फिर जाऊँ
तम के मलीन अंचल में,
जीवन का लोभ नहीं ,वह
वेदना छद्म मय छल में ।[११२]

द्वितीय संस्करण में ' न है ' के स्थान पर ' नहीं ' का प्रयोग किया गया है । ' न है ' के प्रयोग में ' न ' के बाद रुकना पड़ता है । फलस्वरूप छंद के प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है, परंतु ' नहीं ' के प्रयोग से उक्त बाधा दूर हो जाती है । द्वितीय संस्करण में ' के ' के स्थान पर ' मय ' का प्रयोग हुआ । इस परिवर्तन से छंद में अर्थ संबंधी पूर्णता आ गयी ।

प्रथम संस्करण का ११५वाँ छंद उल्लेखनीय है -

प्रत्यावर्तन के पथ में
पद-चिन्ह न शेष रहे हैं
डूबा है हृदय मरुस्थल
आँसू-निधि उमड़ रहे हैं ।[११३]

१११- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २६ ।
११२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८७ ; पृष्ठ संख्या ३६ ।
११३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३० ।

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

प्रत्यावर्तन के पथ में
पद चिन्ह न शेष रहा है
डूबा है हृदय मरुस्थल
आँसू नद उमड़ रहा है ।[११४]

द्वितीय संस्करण में "रहे हैं" के स्थान पर "रहा है" का और "निधि" के स्थान पर "नद" का प्रयोग किया गया है । इस परिवर्तन के संबंध में डॉ० किशोरी लाल गुप्त का कथन है, "यहाँ भी "निधि" जल-निधि " का अर्थ देने में असमर्थ-सा था, इसलिए इसको "नद" में बदल दिया और एक बहुत बड़ी अतिशयोक्ति को कुछ और हल्का करके स्वाभाविकता के स्तर पर लाने का प्रयास किया गया है । पहले संस्करण में क्रिया बहुवचन में है, वह अब एकवचन में कर दी गई है । यह भी अतिशयोक्ति के हास्यास्पद प्रभाव को दूर करने के लिये ही है ।"[११५]

प्रथम संस्करण का ११६ वाँ छंद द्रष्टव्य है -

अवकाश बने फैले हो
है शक्ति न और सहारा,
अपदार्थ । तिरंगा मैं क्या
हो भी कुछ कूल-किनारा ।[११६]

द्वितीय संस्करण में "बने फैले हो" के स्थान पर "शून्य फैला है" का प्रयोग हुआ है । इस छंद में कवि कहना चाहता है कि प्रियतम के अभाव में उसका हृदय रिक्त हो गया है । यह स्थिति "शून्य फैला है" के प्रयोग से ही व्यक्त होती है । दूसरे "बने फैले हो" से कवि की विरह दशा स्पष्ट नहीं हो पाती क्योंकि इस प्रयोग से पहली पंक्ति, अन्य पंक्तियों से संबद्ध नहीं हो पाती ।

११४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ८८ ; पृष्ठ संख्या
११५- "प्रसाद" का विकासात्मक अध्ययन - पृष्ठ संख्या १०८ ।
११६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३० ।

प्रथम संस्करण का ७८वाँ छंद विवेचनीय है -

तिरती थी तिमिर-उदधि में
नाविक ! यह तेरी तरणी ;
मुख-चंद्र-किरण से खिंचकर
आती समीप हो धरणी ।[११७]

द्वितीय संस्करण में " तेरी " के स्थान पर " मेरी "[११८] का प्रयोग किया गया है । कवि अपनी अतीत की स्मृतियों में खो जाता है और अपनी स्थिति का परिचय देता है । " तेरी " के प्रयोग से उसकी स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती, किंतु " मेरी " के प्रयोग से स्पष्ट हो जाती है । यह परिवर्तन कवि की मनोव्यथा को व्यक्त करने में सहायक सिद्ध हुआ ।

प्रथम संस्करण का ७७वाँ छंद यह है -

सिकता समुद्र ! सूखे में
नैया थी मेरे मन की,
आँसू की धार बहाकर
ले चला प्रेम बेगुन की ।[११९]

द्वितीय संस्करण के इस छंद में " सिकता समुद्र ! सूखे में " के स्थान पर " सूखे सिकता सागर में "[१२०] का प्रयोग किया है । इस परिवर्तन से छंद में प्रवाह लाने का सफल प्रयास किया गया है । द्वितीय संस्करण में " नैया थी " के स्थान पर " यह नैया " का प्रयोग किया है । यह परिवर्तन काल-भेद स्पष्ट करने के लिए किया गया है ।

प्रथम संस्करण का ७९वाँ छंद उल्लेखनीय है -

अब पारावार तरल हो
फेनिल हो गरल उगलता ;

११७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २० ।
११८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ९०; पृष्ठ संख्या ३७ ।
११९- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २० ।
१२०- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ९१ ; पृष्ठ संख्या ३८ ।

मथ डाला किस तृष्णा से
तल में बड़वानल जलता ।[१२१]

द्वितीय संस्करण में 'अब' के स्थान पर 'यह'[१२२] का प्रयोग हुआ है । इस छंद में कवि कहता है कि इस हृदय का मंथन होने पर इसमें से निराशा और वेदना के भाव निकल रहे हैं । क्योंकि कवि यहाँ समुद्र-मंथन (हृदय-मंथन) का चित्र उपस्थित करता है, अत: इस पर बल देने के लिए वह 'अब' के स्थान पर 'यह' का प्रयोग करता है । दूसरे 'यह' में 'अब' का भाव भी निहित है ।

प्रथम संस्करण का ६८वाँ छंद विवेचनीय है -

निश्वास मलय में मिलकर
ग्रह पथ में टकराएगा
अंतिम किरणें बिखराकर
हिमकर भी छिप जाएगा ।[१२३]

द्वितीय संस्करण में यह इस प्रकार है -

निश्वास मलय में मिलकर
छाया पथ छू जायेगा
अंतिम किरणें बिखराकर
हिमकर भी छिप जायेगा ।[१२४]

द्वितीय संस्करण में 'ग्रह पथ में टकरायेगा' के स्थान पर 'छाया पथ छू जायेगा' का प्रयोग किया गया है । इस छंद में कवि कहता है कि उसके विरहजनित निश्वास निरंतर चलते रहेंगे । निश्वास जब ग्रह पथ से टकरायेगा, तो उसके टूटने की भी संभावना होती है और कवि को यह अभीष्ट नहीं क्योंकि उसका लक्ष्य, यह वर्णित करना है कि वह निरंतर चलता रहेगा । इस भाव की रक्षा के लिए ही कवि ने उपर्युक्त परिवर्तन किया है ।

१२१- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २० ।
१२२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ६२ ; पृष्ठ संख्या ३८ ।
१२३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २६ ।
१२४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ६३ ; पृष्ठ संख्या

प्रथम संस्करण का ८०वाँ छंद द्रष्टव्य है -

> है चंद्र हृदय में बैठा
> उस शीतल किरण-सहारे ,
> सौंदर्य प्रेम बलिहारी
> चुँगता चकोर अंगारे ।[१२५]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

> है चंद्र हृदय में बैठा
> उस शीतल किरण सहारे
> सौंदर्य सुधा बलिहारी
> चुगता चकोर अंगारे ।[१२६]

द्वितीय संस्करण में 'प्रेम' के स्थान पर 'सुधा' शब्द का प्रयोग किया है । चकोर ने सौंदर्य-सुधा का पान किया है, अत: वह अंगार चुगने में सर्वथा समर्थ है क्योंकि वह तो सुधा-पान करके अमर हो गया है । यह भाव 'सुधा' के प्रयोग से व्यंजित होता है । इसके विपरीत 'प्रेम' शब्द के प्रयोग से उक्त भाव-गाम्भीर्य नहीं आ पाता । साथ ही, द्वितीय संस्करण में 'चुँगता' के स्थान पर 'चुगता' का प्रयोग किया है । यह संशोधन इस कारण से किया है क्योंकि 'चुँगता' शब्द लिखने में प्रयुक्त नहीं होता । बोलचाल की भाषा में कुछ लोग इसका अवश्य प्रयोग करते हैं ।

प्रथम संस्करण का ९२वाँ छंद द्रष्टव्य है -

> निर्मोह काल के काले—
> पट पर कुछ अस्फुट लेखा,
> सब लिखी पड़ी रह जाती
> सुख-दुख-मय जीवन-लेखा ।[१२७]

द्वितीय संस्करण में 'प्रसाद' जी ने 'जीवन-लेखा' के स्थान पर 'जीवन रेखा'[१२८] का प्रयोग किया है । यह संशोधन काव्यात्मक सौंदर्य की वृद्धि

१२५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २१ ।
१२६- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ९६ ; पृष्ठ संख्या ३९ ।
१२७- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २४ ।
१२८- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या १०२; पृष्ठ संख्या ४१ ।

के लिए किया गया है । दो जगह "ऐसा" प्रयोग, काव्यात्मक दृष्टि से अनुचित प्रतीत होता है, इसलिए चतुर्थ पंक्ति में "ऐसा" के स्थान पर "रैसा" शब्द प्रयुक्त किया । इस प्रकार उस दोषपन से छंद का काव्य-सौंदर्य बढ़ गया ।

प्रथम संस्करण का १२६वाँ छंद विवेचनीय है -

मानव-जीवन वेदी पर
  परिणय है विरह मिलन का,
दुख सुख दोनों नाचेंगे
  है खेल आँख का मन का ।[१२६]

द्वितीय संस्करण में "है" के स्थान पर "हो"[१३०] का प्रयोग किया गया है । "है" के प्रयोग से विदित होता है जैसे कि मानव-जीवन वेदी पर दुख-सुख का परिणय हो गया है और मनुष्य की समस्त विडंबनाओं का अंत हो गया है । वास्तव में, यह स्थिति उत्पन्न नहीं हुई, अतः द्वितीय संस्करण में "हो" के प्रयोग से कवि ने कामना की है कि यदि मानव के जीवन-वेदी पर दुख-सुख का परिणय हो जाये तो उसके (मानव के) जीवन में संतुलन उपस्थित हो जायेगा और उसके लिए दुख-सुख खेल के सदृश हो जायेंगे ।

प्रथम संस्करण का ८७वाँ छंद विवेचनीय है -

इतना सुख ! जो न समाता
  अंतरिक्ष में, जल-थल में,
मुट्ठी में तुम ले बैठे
  आश्वासन देकर छल में ।[१३१]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

इतना सुख जो न समाता
अंतरिक्ष में, जल-थल में
उनकी मुट्ठी में बंदी
था आश्वासन के छल में ।[१३२]

१२६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३१ ।
१३०- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या १०४ ; पृष्ठ संख्या ४२ ।
१३१- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २३ ।
१३२- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या १११ ; पृष्ठ संख्या ४३।

द्वितीय संस्करण की तीसरी एवं चौथी पंक्ति में परिवर्तन किया गया है । प्रथम संस्करण में कवि ने प्रियतम को मध्यम पुरुष में संबोधित किया था, जबकि द्वितीय संस्करण में उसने उसे अन्य पुरुष में संबोधित किया है । यह परिवर्तन काल-भेद स्पष्ट करने के लिए किया गया है क्योंकि द्वितीय संस्करण प्रथम संस्करण के आठ वर्ष बाद प्रकाशित हुआ । साथ ही " ले बैठे " के स्थान पर " बंदी " के प्रयोग से विदित होता है कि कवि का व्यापक सुख, प्रियतम की मुट्ठी में कैद हो गया है ।

प्रथम संस्करण का ८८ वाँ छंद द्रष्टव्य है -

दुख क्या था तुम को मेरा
जो सुख लेकर यों भागे,
सोते में चुंबन लेकर
जब रोम तनिक-सा जागे ।[133]

द्वितीय संस्करण में " तुम को " के स्थान पर " उनको " का प्रयोग[134] किया गया है । यह परिवर्तन भी काल-भेद स्पष्ट करने के लिए किया गया है ।

प्रथम संस्करण का ९०वाँ छंद द्रष्टव्य है -

सुख मान लिया करता था
जिसका दुख था जीवन में,
जीवन में मृत्यु बसी थी
जैसे बिजली हो घन में ।[135]

द्वितीय संस्करण में " बसी थी " के स्थान पर " बसी है " [136] का प्रयोग किया गया है । " थी " के प्रयोग से मालूम पड़ता है जैसे कि जीवन में मृत्यु बसी थी किंतु अब नहीं बसी है । इसके विपरीत " है " के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि जीवन में मृत्यु सदैव विद्यमान रहती है ।

१३३- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २३ ।
१३४- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ११२ ; पृष्ठ संख्या ४५ ।
१३५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २३ ।

प्रथम संस्करण का १०६वाँ छंद उल्लेखनीय है -

उनका सुख नाच रहा था

दुख धूमघट के खिलने से,

श्रृंगार चमकता उनका ।

मेरी करुणा मिलने से ।[137]

" आँसू " के द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

उनका सुख नाच उठा है

यह दुख द्रुम-दल खिलने से

श्रृंगार चमकता उनका

मेरी करुणा मिलने से ।[138]

द्वितीय संस्करण में " नाच रहा था " के स्थान पर " नाच उठा है " का प्रयोग किया गया है । यह परिवर्तन कविनेअपनी स्थिति को व्यक्त करने के लिये किया है । भूतकाल के प्रयोग को वर्तमान काल में बदल दिया गया है । कवि कहता है कि उसके दुख रूपी वृक्ष के खिलने से प्रियतम का सुख नृत्य करने लगता है अर्थात् जब कवि का हृदय वेदना से परिपूर्ण हो जाता है तो प्रिय की सुखद स्मृतियाँ क्रीड़ा करने लगती हैं । यह स्थिति " नाच उठा है " के प्रयोग से व्यक्त होती है । " नाच रहा था " के प्रयोग से कोई स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती क्योंकि इस प्रयोग से पंक्तियाँ परस्पर आबद्ध हो जाती हैं ।

द्वितीय संस्करण में, द्वितीय पंक्ति में " यह " का प्रयोग किया गया है और " से " को हटा दिया गया है । कवि अपने दुख पर बल देना चाहता है, अत: उसने " यह " का प्रयोग किया । दूसरे, " के " को हटाने से अर्थ में तनिक भी दुरूहता नहीं उत्पन्न हुई ।

---

१३६ - आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ११३ ; पृष्ठ संख्या ४६ ।

१३७ - आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २७ ।

१३८ - आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ११४ ; पृष्ठ संख्या ४६ ।

प्रथम संस्करण का १०६वाँ छंद द्रष्टव्य है -

इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम तने हुए आओगे,
इस बढ़ी व्यथा को मेरी,
रोओगे अपनाओगे ।[139]

द्वितीय संस्करण में यह छंद इस प्रकार है -

इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे,- आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रो कर अपनाओगे ।[140]

द्वितीय संस्करण में 'तने हुए' के स्थान पर 'आओगे' का प्रयोग किया गया है । छंद में 'तने हुए' प्रयोग निरर्थक-सा प्रतीत होता है । 'आओगे' प्रयोग करने से छंद में विशिष्टता आ गई । 'आओगे' की पुनरुक्ति से कवि का प्रियतम पर पूर्ण विश्वास झलकता है - उसे विश्वास है कि प्रियतम अब स्वत: उसकी ओर खिंचता हुआ आयेगा । साथ ही द्वितीय संस्करण में 'रोओगे' के स्थान पर 'रो रो कर' का प्रयोग किया गया है । 'रोओगे' प्रयोग से ज्ञात होता है कि प्रियतम पहले तो रोदन करेगा फिर कवि की व्यथा को अपनायेगा । इसके विपरीत, 'रो रो कर' प्रयोग से स्पष्ट होता है कि प्रियतम रोते हुए कवि की व्यथा को अपनायेगा । किसी पर द्रवित होकर उसको रोते हुए अपनाना मार्मिक एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

प्रथम संस्करण में एक सौ छब्बीस छंद थे । द्वितीय संस्करण में छंदों की संख्या एक सौ नब्बे हो गई । बाद में रचित छंद भाव और कला की दृष्टि

१३६- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २८ ।
१४०- आँसू (द्वितीय संस्करण) छंद संख्या ११६ ; पृष्ठ संख्या ४८ ।

से श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं ।" आँसू " में किये गये संशोधनों को अनुचित बतानेवाले श्री रामनाथ" सुमन" भी नये छंदों का स्वागत करते हैं -" जब हम" आँसू" की नवीन कविताओं को देखते हैं (जो नवीन संस्करण में नई लिखी गयी हैं) तो स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ कवि रचना में सफल हुआ है, वहाँ संशोधन में असफल ।[१४१] प्रथम संस्करण में प्रायः निराशा के भाव मिलते हैं, जबकि द्वितीय संस्करण के नवीन छंदों में आशा के स्वर सुनायी पड़ते हैं । इन छंदों में कवि अपने तक ही सीमित नहीं रहा । यही कारण है" आँसू" के पूर्वार्द्ध में जहाँ" मैं " की प्रधानता है, वहाँ उत्तरार्ध में" मैं" शब्द ही नहीं मिलता ।"[१४२] अब वह विश्व-कल्याण की कामना करने लगा । इस प्रकार उसने अपनी संकुचित विरह-वेदना का उदात्तीकरण कर दिया । उसे अब अपने विरह से अधिक" चिर दग्ध वसुधा " को शीतलता पहुँचाने की चिंता है -

> चिर दग्ध दुखी यह वसुधा
> आलोक माँगती तब भी,
> तम तुहिन बरस दो कन-कन
> यह पगली सोय अब-भी ।

अब कवि विश्व के कण-कण से व्यथाओं को चुनने की कामना करता है -

> चुन चुन ले रे कन-कन से
> जगती की सजग व्यथाएँ ;
> रह जायेंगी कहने को
> जन-रंजन -करी कथाएँ ।

१४१- कवि" प्रसाद" की काव्य -साधना - पृष्ठ संख्या ७१-७२ ।

१४२- प्रसाद काव्य विवेचन - डॉ० हरदेव बाहरी ; पृष्ठ संख्या १०६ ।
यहाँ एक बात खटकती है । आँसू के उत्तरार्द्ध में" मैं " (और" मेरे, मेरी) शब्द का प्रयोग भी मिलता है । हाँ, ऐसे छंद अत्यल्प हैं जैसे-

> वेदना मधुर हो जावे
> मेरी निर्दय तन्मयता
> मिल जावे आज हृदय को
> पाऊँ मैं भी सहृदयता ।

यह बात अलग है कि यहाँ प्रयुक्त" मैं" भी संकुचित अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है

यह चाहता है कि संसार बुराइयों से रहित हो जाये -

काशी का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे ;

कवि की विश्व-कल्याण की भावना इस ऊँचायी तक पहुँच जाती है कि वह आँसू से कहता है कि सब का निचोड़ लेकर इस विश्व-सदन में बरसो-

सब का निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकन सा
आँसू इस विश्व-सदन में ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवीन छंदों ने " आँसू " को सामान्य से उच्च धरातल पर आसीन कर दिया । इन छंदों में विश्व-कल्याण की भावना के साथ-साथ कलात्मकता भी विद्यमान है ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने " आँसू " के विषय में कहा है -" सारी पुस्तक का एक समन्वित प्रभाव निष्पन्न नहीं होता ।[१४३] शुक्ल जी की उक्त धारणा " आँसू " के प्रथम संस्करण के आधार पर बनी थी । प्रथम संस्करण में छंदों का क्रम अव्यवस्थित था । इनसे किसी कथा का आभास नहीं मिलता था, किंतु द्वितीय संस्करण में छंदों को इस क्रम से रखा कि एक विरह-कथा का रूप बन सके । इसी बात को ध्यान में रखकर द्वितीय संस्करण में छंदों के मध्य अवकाश दिया गया है, जबकि प्रथम संस्करण में छंदों के मध्य कहीं भी अवकाश नहीं दिया गया । उदाहरण के लिए द्वितीय संस्करण के आरंभ के चारों छंदों में " क्यों " का प्रयोग हुआ है । ये छंद इस दृष्टि से परस्पर साम्य रखते हैं कि इन छंदों में कवि अत्यंत व्यथित होकर प्रश्न कर बैठता है । इन चारों छंदों के बाद अवकाश दिया गया है, उसके बाद दूसरे छंद रखे गये हैं जिसमें कवि अपनी विरह स्थिति का परिचय देता है और "क्यों"

१४३- हिंदी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ संख्या ८२० ।

का प्रयोग नहीं करता । इस तरह दो भिन्न प्रकार की मनःस्थितियों के छंदों के मध्य अवकाश दिया गया है ।

एक दूसरी बात , क्रम-परिवर्तन के पश्चात् यह भी परिलक्षित होती है कि कवि ने पहले व्यक्तिगत विरह वेदना को व्यक्त किया, उसके पश्चात् विश्व-कल्याण की कामना करने लगा । इस प्रकार क्रम-परिवर्तन के उपरांत जिस कथा का आभास होता है, उसकी परिणति जगत की मंगलकामना करने में होती है ।

' आँसू ' में हुए विभिन्न परिवर्तनों का विस्तार में अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि ने जो परिवर्तन किये उनमें वह पूर्ण-रूप से सफल हुआ । पूरे ' आँसू ' में कुछ ही परिवर्तन असंतोषजनक नहीं हुए । अनेकों प्रशंसनीय परिवर्तनों के साथ थोड़े से अनुचित परिवर्तनों का होना दोष नहीं कहा जा सकता । हमने देखा कि द्वितीय संस्करण में कुछ परिवर्तन काव्य-सौंदर्य घटाते हैं, ' प्रसाद ' जी ने तृतीय संस्करण में उन छंदों को उनके मूल रूप में (प्रथम संस्करण के रूप में) कर दिया । इससे स्पष्ट होता है कि ' प्रसाद ' जी दुराग्रही नहीं थे और अपनी त्रुटियों के सुधार में तनिक भी संकोच नहीं करते थे । इन परिवर्तनों के फलस्वरूप ' आँसू ' में अर्थ की पूर्णता, भाव-सौंदर्य, भाषा-सौंदर्य तथा छंद-प्रवाह जैसे गुण आ गये ; साथ ही , एक सूक्ष्म और सांकेतिक कथा का आभास मिलने लगा, जिसमें दार्शनिक स्तर पर कवि ने वेदना के अद्वैत भाव को प्रतिष्ठित किया है ।

का मा य नी

का मा य नी

कामायनी (पांडुलिपि संस्करण)

"कामायनी" हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। "कामायनी" का पांडुलिपि संस्करण सन् १६७१ ई० में "भारती भंडार, प्रयाग" ने मुद्रित किया। इसके प्रकाशन की घटना को प्रकाशक ने "ऐतिहासिक अवसर" कहा, जो कि उचित है क्योंकि "किसी ग्रंथ की मूल पांडुलिपि के प्रकाशन की यह एक पहली घटना है।" उक्त संस्करण १५५ पृष्ठों का है। श्रावणी पंचमी १६८४ को कवि ने "कामायनी" का शुभारंभ किया और इसकी समाप्ति महा शिवरात्रि सं० १६६२ को हुई अर्थात् इसके प्रणयन में लगभग आठ वर्ष लगे। इस संस्करण में सर्गों के नाम इस प्रकार हैं - चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, यज्ञ, ईर्ष्या, इला (बुद्धि), स्वप्न, युद्ध, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनंद।

इस संस्करण के अध्ययन से विदित होता है कि कवि "कामायनी" की रचना करने में किन-किन स्थितियों में से गुज़रा है। कहने का तात्पर्य है कि कवि की रचना-प्रक्रिया का ज्ञान यहाँ स्पष्ट रूप से हो जाता है। उक्त संस्करण में "प्रसाद" जी ने कहीं शब्दों में परिवर्तन किया है, कहीं पंक्तियों में संशोधन किया है, कहीं पंक्तियों में संशोधन करने के उपरांत उनको काट दिया है और नई पंक्तियाँ रखीं, कहीं शब्दों में विपर्यय किया है और कहीं चरणों का क्रम उलट दिया है। कहीं कुछ पंक्तियाँ काट ही दी गयी हैं। ये संशोधन एवं परिवर्तन इस बात के साक्षी हैं कि कवि अपनी कृति को श्रेष्ठतर बनाने के प्रयास में रत था।

इन परिवर्तनों को, कुछ उदाहरणों को देखने से, समझा जा सकता है। पांडुलिपि संस्करण के आरंभ में "कामायनी" (श्रद्धा) लिखा हुआ है। "प्रसाद" जी के मित्र श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ ने "प्रसाद का साहित्य" में संकेत किया है कि पहले "प्रसाद" जी इस ग्रंथ का नाम "श्रद्धा" रखने वाले थे, किंतु अंतिम समय में उन्होंने "श्रद्धा" के स्थान पर "कामायनी" रख दिया। उन्हें "कामायनी" नाम अधिक श्रेष्ठतर लगा होगा।

अनेक स्थलों पर कवि ने पंक्ति के शब्दों में परिवर्तन किया है। इस संदर्भ में निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है -

दब रहे अपने ही भार बोझ खोजते भी न कहीं अवलंब ;[१]

इस पंक्ति में कवि ने 'भार' के स्थान पर 'बोझ' शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ श्रद्धा मनु से कहती है कि उनका (मनु का) स्वयं का एकाकी जीवन उनके लिए ही बोझ बन गया है, फिर भी वे इससे (बोझ से) मुक्ति पाने के लिए अन्य कोई सहारा नहीं तलाश करते। यहाँ 'बोझ' शब्द अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है क्योंकि 'बोझ' शब्द में यह भाव निहित है कि भार को विवश होकर बेमन से ढोया जा रहा है। साथ ही, 'बोझ' शब्द व्यथा की अतिशयता को व्यंजित करने में भी समर्थ है। 'भार' शब्द से इन भावों की व्यंजना नहीं होती। 'बोझ' शब्द से व्यंजित होनेवाले भाव मनु की स्थिति का वास्तविक ज्ञान कराते हैं।

निम्नलिखित छंद में भी शब्द-परिवर्तन किया गया है :-

श्रद्धा के उत्साह वाक्य वचन फिर काम प्रेरणा मिल के
भ्रांत अर्थ बन आगे आये बने ताड़ थे तिल के।[२]

यहाँ 'वाक्य' के स्थान पर 'वचन' शब्द का प्रयोग किया गया है। यद्यपि 'वाक्य' शब्द का प्रयोग नितान्त अनुचित नहीं था, तथापि इसमें हल्कापन अवश्य था। यह शब्द '(वाक्य)' साधारण कथन के लिये प्रयोग किया जाता है। श्रद्धा ने, कर्म करने के लिये, मनु से जो उत्साह से भरपूर कथन कहे, वे साधारण नहीं थे। इस दृष्टि से 'वाक्य' शब्द का प्रयोग अच्छा नहीं था। 'वचन' शब्द प्राय: गंभीर एवं महत्वपूर्ण कथन के लिये प्रयुक्त होता है।

अनेक स्थलों पर 'प्रसाद' जी ने पंक्तियों में संशोधन व परिवर्तन किये हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित छंद प्रस्तुत है :

१- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); 'श्रद्धा' सर्ग ; पृष्ठ संख्या २३।

२- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); 'यज्ञ' सर्ग ; पृष्ठ संख्या ४४।

किरनों का रज्जु समेट लिया, जिसका अवलंबन ले चढ़ती
रस के निर्झर में धँस कर मैं, ~~सुख के~~ आनंद शिखरों के प्रति बढ़ती ।[3]

उक्त छंद में 'सुख के शिखरों' के स्थान पर 'आनंद शिखर' का प्रयोग किया गया है । श्रद्धा 'आनंद' के रहस्य से सुपरिचित है । साथ ही 'आनंद' सुख से ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठित है । 'सुख परिवर्तनशील और भंगुर है, आनंद नित्य तथा स्थिर है । सुख दु:ख की अपेक्षा करता है । सुख-दु:ख का द्वंद्व है । आनंद इस द्वंद्व से मुक्त है । - - - - - - - - सुख का संबंध शरीर और इंद्रियों से है, आनंद का संबंध आत्मा से है - - - - - - - सुख का सत्गुण से विरोध हो सकता है, पर आनंद का नहीं ।'[4] श्री संगमलाल पाण्डेय के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि सुख की तुलना में आनंद श्रेयस्कर है । मनुष्य यदि आनंद की प्राप्ति कर लेता है, तो उसे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होता । इस कारण से 'प्रसाद' जी ने 'सुख' के स्थान पर 'आनंद' शब्द का प्रयोग किया । दूसरे शारीरिक सुख को आत्मिक सुख से कम महत्त्वपूर्ण मानने के कारण उन्होंने उक्त परिवर्तन किया ।

इस संदर्भ में निम्नांकित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :

चल रहा था विजन पथ पर मधुर जीवन खेल
दो अपरिचित से ~~परिस्थिति थी कराती~~ नियति अब चाहती थी मेल ।[5]

यहाँ 'परिस्थिति' के स्थान पर 'नियति' का प्रयोग किया गया है । दूसरे 'थी कराती' के स्थान पर 'अब चाहती थी' का प्रयोग किया गया है । विश्व के समस्त क्रिया-कलापों को 'परिस्थिति' नहीं चलाती वरन् वे नियति (विश्व की नियामिका शक्ति) द्वारा संचालित होते हैं । इस दृष्टि से श्रद्धा और मनु का संयोग नियति की इच्छा पर निर्भर है । 'थी कराती

३- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); 'लज्जा' सर्ग ; पृष्ठ संख्या ४१ ।

४- हिंदी साहित्य कोश (भाग-१); पृष्ठ संख्या ११२ ।

५- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); 'वासना' सर्ग ; पृष्ठ संख्या ३१ ।

मेल" से विदित होता है जैसे कि श्रद्धा और मनु का संयोग हो गया है किंतु अभी स्थिति ऐसी नहीं है। दोनों "मिलन" की ओर अग्रसर हो रहे हैं किंतु अभी मिले नहीं हैं।" अब "चाहती थी" के प्रयोग से ज्ञात होता है कि नियति चाहती है कि इन दोनों का संयोग हो जाये और सृष्टि का विकास हो।

"कामायनी" के पांडुलिपि संस्करण में कहीं-कहीं "प्रसाद" जी ने पंक्तियों में संशोधन किये हैं और बाद में संशोधित पंक्तियों के स्थान पर नयी पंक्तियाँ रखीं।

"चिंता" सर्ग की संशोधित पंक्ति यह है :

कुंज कुसुम कानन [सब] डूबे जलनिधि [सागर] मर्यादाहीन हुआ।[6]

उक्त संशोधित पंक्ति के स्थान पर "प्रसाद" जी ने निम्नलिखित पंक्ति रखी -

उदधि डुबाकर अखिल धरा को बस मर्यादा हीन हुआ।

यह पंक्ति संशोधित पंक्ति से कहीं श्रेष्ठ है। "कुंज कुसुम कानन [सब] डूबे" से जल-प्लावन की व्यापकता का ज्ञान नहीं हो पाता। इससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि जल-प्लावन की घटना किसी सीमित दायरे में हुई होगी। कवि को, इसके विपरीत यह अभीष्ट है कि जल-प्लावन की घटना संपूर्ण विश्व में घटित हुई है। इस घटना की व्यापकता को चित्रित करने के लिये ही कवि ने "उदधि डुबाकर अखिल धरा को" का प्रयोग किया है। साथ ही, नवीन पंक्ति में जो प्रवाह है, वह पूर्व संशोधित पंक्ति में दुर्लभ है।

अनेक पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें कवि ने शब्दों के क्रम में उलट-फेर किया है। इस संदर्भ में कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

जीवन निज अस्तित्व बना रखने में | जीवन आज हुआ था व्यस्त।[7]

६- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); "चिंता" सर्ग ; पृष्ठ संख्या १० ।

७- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); "चिंता" सर्ग ; पृष्ठ १६ ।

वे सब विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाये चले गये ।[८]
जगत चल रहा था धीरे धीरे अपने उस ऋजु पथ में ।
धीरे धीरे खिलते तारे मृग जुतते विधु रथ में ।[९]

इन उदाहरणों से विदित होता है कि ये विपर्यय छंद में प्रवाह उत्पन्न करने के लिये किये गये हैं । छंद में जो अवरोध थे, इन शब्दों के क्रम-परिवर्तन से समाप्त हो गये ।

कुछ विपर्यय छंद के अर्थ को विशिष्ट बनाने की दृष्टि से किये गये हैं :

सुरा सुरभिमय वदन वे नयन भरे अरुण वे नयन
भरे आलस अनुराग ।[१०]

शब्दों के स्थान - परिवर्तन के पूर्व छंद में प्रवाह नहीं था । इसके अतिरिक्त मुख की लालिमा का ज्ञान भी नहीं होता था । विपर्यय करने से छंद में प्रवाह तो उत्पन्न हो ही गया, साथ ही मुख की लालिमा का ज्ञान हो जाता है । यहाँ मुख-मंडल की अरुणिमा का वर्णन अत्यंत आवश्यक था क्योंकि सुरापान के उपरांत मुख पर लालिमा व्याप्त हो जाती है ।

अनेक स्थलों पर 'प्रसाद' जी ने पंक्ति परिवर्तित की है । इस संदर्भ में 'चिंता' सर्ग की एक पंक्ति विवेचनीय है । अतीत के वैभव का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं :

बजते थे नूपुर, झंकृत होते, कंकड़ हिलते थे हार ।[११]

इसके स्थान पर निम्नलिखित पंक्ति रची -

कंकण क्वणित रणित नूपुर थे से हिलते थे छाती पर हार ।

८- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); चिंता सर्ग, पृष्ठ ८ ।
९- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); यज्ञ सर्ग ; पृष्ठ संख्या ४८ ।
१०- कामायनी(पांडुलिपि संस्करण); चिंता सर्ग ; पृष्ठ संख्या ८ ।
११- कामायनी(पांडुलिपि संस्करण); चिंता सर्ग, पृष्ठ संख्या ८ ।

इस परिवर्तन के संबंध में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं - " यहाँ यह संशोधन जहाँ रनिवास के व्यन्यात्मक वातावरण को अनुकूल करता है, वहीं पंक्ति की लय बहुत सुधारता है ।"[१२]

पांडुलिपि संस्करण में कई स्थलों पर "प्रसाद" जी ने पंक्तियों को काट ही दिया है । कुछ पंक्तियाँ स्पष्ट हैं और कुछ पंक्तियाँ इस तरह काटी गयी हैं कि वे काफ़ी प्रयत्न करने पर भी समझ में नहीं आतीं । यह बात नहीं है कि इस प्रकार की जितनी पंक्तियाँ हैं, वे सभी व्यर्थ हैं । कुछ पंक्तियाँ अच्छी हैं । कवि ने अपने ऊपर नियंत्रण रखते हुए ऐसी पंक्तियों को काट दिया । ऐसी पंक्तियाँ काव्य को अनावश्यक विस्तार और स्थूलता से बचाने के लिए काटी गयी हैं । उदाहरणार्थ निम्नलिखित काटी हुई पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

एक दिन ऊपर आकर उसे देखने की इच्छा का वेग, सम्हल न सका, देखा यह देश और भी बढ़ा मधुर उद्वेग[१३]

इस छंद के पहले का छंद है :

मधुरिमा में अपनी ही मौन
एक सोया संदेश महान ,
सजग हो करता था संकेत,
चेतना मचल उठी अनजान ।

काटे हुए छंद के बाद का छंद है :

बढ़ा मन और चले ये पैर, शैल मालाओं का शृंगार
आँख की भूख मिटी यह देख ~~[कटा]~~ लगा
आह कितना सुंदर सम्भार

काटे हुए छंद का संपूर्ण भाव उसके पहले और बाद के छंदों में निहित है । इसलिए इस छंद से अनावश्यक विस्तार ही होता । दूसरे, हिम-गिरि

१२- कामायनी का पांडुलिपि संस्करण-डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ०सं० १० ।
१३- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) ; "श्रद्धा" सर्ग ; पृष्ठ संख्या २१ ।

को देखने के लिए श्रद्धा का उत्साह और उसका शैल मालाओं को देखने का वर्णन जितने काव्यात्मक ढंग से इसके पहले और बाद के छंदों में हुआ है, वह उसमें दुर्लभ है। इस तरह के कई उदाहरण मिलते हैं।

एक स्थल पर 'प्रसाद' जी ने निम्नलिखित पंक्तियाँ काटी हैं :

निर्जन में क्या एक ! अकेले तुम्हें प्रमोद मिलेगा
नहीं ! इसी से अन्य ! हृदय का कोई सुमन खिलेगा ।[१४]

इस छंद में श्रद्धा मनु को उनकी एकांतिक प्रवृत्ति से हटकर समष्टि की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है। वह छंद प्रसंग की दृष्टि से अत्यधिक उपयुक्त था, फिर भी 'प्रसाद' जी ने इसे काट दिया। इसे काट देने से एक महत्त्वपूर्ण छंद से पांडुलिपि संस्करण वंचित हो गया। 'प्रसाद' जी ने भी इसे अनुचित समझा होगा क्योंकि 'कामायनी' के प्रथम संस्करण में इसे पुनः स्थान मिल गया।

'लज्जा' सर्ग की काटी हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

यह कंपन ! यह गुदगुदी ! रही कितने कोमल आघातों से
इच्छा हो पूजन किया करती छिपने की मधु के हाथों से ।[१५]

श्रद्धा ने स्वयं को मनु को समर्पित कर दिया। उसके बाद उसमें शारीरिक और मानसिक परिवर्तन हुए। वह उन परिवर्तनों से भ्रमित है। इन परिवर्तनों के कारणों से वह पूर्णतः अनभिज्ञ है। जब वह इन परिवर्तनों के संबंध में विचार कर रही थी तब उसे एक आकृति-सी दिखाई दी। श्रद्धा उससे उनअनुभूत परिवर्तनों के संबंध में कहती है। उक्त छंद भी उसने इसी प्रसंग में कहा है। श्रद्धा के शरीर में कंपन और गुदगुदी हुई, उसी को वह आकृति (लज्जा) से वर्णित करती है। इस महत्त्वपूर्ण छंद को 'प्रसाद' जी ने काट ही दिया। यदि यह छंद हटाया न गया होता, तो वह 'कामायनी' के हित में होता।

१४- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) 'यज्ञ' सर्ग : पृष्ठ संख्या ५३ ।
१५- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); लज्जा सर्ग ; पृष्ठ संख्या ४० ।

इसी संदर्भ में 'कर्म' सर्ग की काटी हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

> रोम रोम से चिनगारी थी सघन जघन थहराते
> वेणी शिथिल खुली पड़ती थी पलक अंकुर लाते
> वंचित कौन भला करता मनु को शारीरिक सुख से
> निस्सहाय अस्वीकृति करती नहीं नहीं थी मुख से ।[१६]

इन पंक्तियों के पूर्व निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी जा चुकी थीं -

> दो काठों की संधि बीच उस निभृत गुफा में अपने
> अग्नि-शिखा बुझ गई जागने पर जैसे सुख सपने ।

उक्त सांकेतिक वर्णन स्थिति को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है । यहाँ 'प्रसाद' जी ने अनुभव को अधिक महत्व दिया है जैसा कि डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, कर्म सर्ग में जो पंक्तियाँ लिखकर प्रसाद ने काटी हैं वहाँ शरीर अनुभव से कहीं अधिक वस्तु है । और इसीलिए उन्हें लिखकर नहीं, काटकर प्रसाद ने अपने को पहिचाना है, अपने को अधिक प्रसाद बनाया है । क्या लिखना है महत्वपूर्ण है क्या नहीं लिखना , और कहाँ रुक जाना । 'कामायनी' की पांडुलिपि यह अच्छा उदाहरण इस प्रसंग में प्रस्तुत करती है ।'[१७]

कामायनी का पांडुलिपि संस्करण और प्रथम संस्करण

'कामायनी' आधुनिक काल की अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है । इसका प्रथम संस्करण सन् १९३६ (संवत् १९९३) में 'भारती-भंडार,लीडर प्रेस, इलाहाबाद' से प्रकाशित हुआ । इसकी पृष्ठ संख्या २९४ है ।

सन् १९७१ में 'भारती भंडार ,इलाहाबाद' ने पहली बार 'कामायनी' का पांडुलिपि संस्करण मुद्रित किया। इसकी पृष्ठ संख्या १५६ है ।

१६- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); 'कर्म' सर्ग ; पृष्ठ संख्या ५४ ।

१७- कामायनी का पांडुलिपि संस्करण- डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या १२ ।

"कामायनी" के दोनों संस्करणों का मिलान करने पर विदित होता है कि कवि ने कृति के प्रकाशित होने के पूर्व अनेक संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये हैं। पांडुलिपि संस्करण में विराम चिन्हों का अत्यल्प प्रयोग हुआ है, जबकि प्रथम संस्करण में प्राय: सभी स्थलों पर विराम चिन्ह प्रयुक्त हुए हैं। डॉ० नगेन्द्र ने उल्लेख किया है कि इन चिन्हों के प्रयोग से कहीं-कहीं कठिनाई उत्पन्न हो गई। उनका कथन है, "अत: कामायनी में मुद्रण की भूलें तो इतनी नहीं हैं, किंतु विराम-चिन्हों का प्रयोग इस तरह किया गया है कि उससे कई प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यहाँ मैं केवल तीन प्रमुख कठिनाइयों की ओर इंगित करूँगा।" एक तो उन सर्गों में अर्थ-बोध कठिन हो जाता है जहाँ प्रूफ शोधक ने यांत्रिक रीति से छंद के सामान्य यति-नियमों के अनुसार अर्द्धविराम या पूर्ण विराम दे दिए हैं। "दूसरे उन स्थलों पर कठिनाई होती है जहाँ उद्धरण- चिन्हों (" ") का प्रयोग नियमानुसार नहीं हुआ। "तीसरी कठिनाई वहाँ होती है जहाँ प्रूफ शोधक ने अपनी बुद्धि से विराम चिन्ह दे दिए हैं।"[१८]

"कामायनी" के प्रथम संस्करण में प्रयुक्त विराम-चिन्हों मनमानी लगाये गये या "प्रसाद" जी के निर्देशानुसार लगाये गये, यह प्रश्न मेरे समक्ष उपस्थित हुआ। मुझे लगा कि इसका हल श्री वाचस्पति पाठक के पास ही संभव है। इस हेतु २७ सितंबर,१९७७ को मैं "भारती भंडार" के कार्यालय गया। मेरे उक्त प्रश्न के संबंध में पाठक जी ने कहा", कामायनी" की पांडुलिपि में "प्रसाद" जी ने प्राय: विराम-चिन्ह नहीं लगाये। साथ ही, प्रथम संस्करण में प्रयुक्त विराम चिन्ह के लिए उन्होंने कोई निर्देश भी नहीं दिया। प्रूफ देखनेवाले ने विराम चिन्ह लगाये हैं। विराम चिन्हों का प्रयोग "प्रसाद" जी प्राय: नहीं करते थे किंतु यह न समझना चाहिए कि इसके पीछे उनका विराम-चिन्हों के प्रयोग का अज्ञान था।"

पाठक जी के उक्त ~~उद्धरण~~ वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम संस्करण में प्रयुक्त विराम चिन्ह "प्रसाद" कृत नहीं है वरन् मुद्रण की स्थिति में

१८- कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ - डॉ० नगेन्द्र(पृष्ठ सं० ४-५)

प्रूफ-शोधक ने लगा दिये । इस प्रकार, इस ओर की विवेचना अनुपयुक्त होगी ।

पांडुलिपि संस्करण के अनेक शब्द प्रथम संस्करण में परिवर्तित रूप में मिलते हैं । पांडुलिपि संस्करण में "चिंता" सर्ग की पंक्ति है :

दूर दूर तक विस्तृत थी हिम राशि उसी के हृदय समान ।[१९]

प्रथम संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है -

दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान ।[२०]

यहां "विस्तृत थी हिमराशि" के स्थान पर "विस्तृत था हिम स्तब्ध" कर दिया गया । "स्तब्ध" शब्द के प्रयोग से छंद में विशिष्टता उत्पन्न हो गई । जल-प्लावन के बाद की स्थिति का चित्रण कवि इस छंद में करता है । उस समय का वातावरण नीरव था । प्रकृति, विनाश-लीला को देखकर स्तब्ध रह गई थी । उसी के समानांतर देव-सृष्टि के अवशेष मनु का हृदय भी भयाक्रांत होकर स्तब्ध हो गया था । प्रकृति और मनु के हृदय का सुनापन "स्तब्ध" शब्द से व्यंजित होता है । इसके अतिरिक्त "हिमराशि" के स्थान पर "हिम" के प्रयोग से सादृश्य में पूर्णता आ गई । मनु के हृदय का "हिमराशि" से उतना साम्य नहीं स्थापित होता जितना "हिम" से स्थापित होता है क्योंकि "हिम" शब्द पुल्लिंग है और "राशि" स्त्रीलिंग ।

"चिंता" सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

सुख, केवल सुख का वह संग्रह केंद्रीभूत हुआ इतना
छाया पथ में नव तुषार का तरल मिलन होता जितना[२१]

प्रथम संस्करण में "तरल" के स्थान पर "सघन" शब्द का प्रयोग किया गया । यह परिवर्तन भी सादृश्य की पूर्णता के लिए किया गया । पांडुलिपि संस्करण में यह (सादृश्य) त्रुटि पूर्ण था । मनु देव जाति के पुरुषों की

१९- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या ५ ।
२०- कामायनी (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३ ।
२१- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या ७ ।

प्रचुरता का वर्णन करते हैं। देवताओं ने सुख को इतना केंद्रीभूत कर लिया था, जितना आकाश गंगा में नवीन कुहासा सघनित हो जाता है। "तरल मिलन" का प्रयोग विरोधाभास उत्पन्न कर देता है। "सघन मिलन" के प्रयोग से सुख के केंद्रीभूत होने की स्थिति व्यंजित होती है।

"चिंता" सर्ग का एक छंद है :

"ओ जीवन की मरुमरीचिका कायरता के अलस विषाद
अरे पुरातन अमृत ! अपरिवर्तन के रूपों जर्जर अवसाद।[22]

प्रथम संस्करण में यह छंद इस रूप में है :

"ओ जीवन की मरु मरीचिका,
कायरता के अलस विषाद !
अरे पुरातन अमृत ! अगतिमय
मोहमुग्ध जर्जर अवसाद।[23]

यहाँ "अपरिवर्तन के रूपों" के स्थान पर "अगतिमय मोहमुग्ध" का प्रयोग हुआ है। यहाँ मनु पुरातन (देव जाति की) अमरता को संबोधित करते हुए कहते हैं कि उसके मोह में देव जाति बुरी तरह लिप्त थी। उसका मोह-पाश इतना कसा था कि देवताओं का मुक्त हो सकना असंभव था। इसी कारण देव जाति दिन प्रतिदिन गर्वित होती जा रही थी, जर्जरित होकर विनाश की ओर जा रही थी। "मोहमुग्ध" के प्रयोग से छंद में भावात्मक सौंदर्य उत्पन्न हो गया। साथ ही, "अपरिवर्तन के रूपों" से "अगतिमय" शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक है। इस शब्द से यह व्यंजित होता है कि देव जाति की गति थम गयी और देव जाति क्रमशः पतन की ओर उन्मुख होती गई।

"आशा" सर्ग की अधोलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

२२- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ११ ।
२३- कामायनी (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या १८-१६ ।

मनन किया करते वे बैठे ज्वलित अग्नि के पास वहाँ
एक सजीव तपस्या का मानो पतझड़ में राज्य रहा ।[२४]

प्रथम संस्करण में ये पंक्तियाँ इस रूप में हैं :

मनन किया करते वे बैठे
ज्वलित अग्नि के पास वहाँ ;
एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड़ में कर वास रहा ।[२५]

यहाँ " जैसे " के स्थान पर " मानों " कर दिया गया । इससे इतना ही अंतर हुआ कि उदाहरण अलंकार, उत्प्रेक्षा में परिणत हो गया । साथ ही, " राज्य रहा " के स्थान पर " वास रहा " कर दिया गया । तपस्वी का राज्य करना असंगत प्रतीत होता है क्योंकि तपस्वी कहीं एकांत में " वास " करता है ।

पांडुलिपि संस्करण में " श्रद्धा " सर्ग की एक पंक्ति है :
यही दुख उसके विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान ।[२६]

प्रथम संस्करण में यह पंक्ति इस रूप में है -
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान ।[२७]

यहाँ " दुख के " के स्थान पर " दुख सुख " का प्रयोग किया गया । इस परिवर्तन के संबंध में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है - " यहाँ स्पष्ट ही सुख-दुख द्वंद्व में विकास को, " डाइलैक्टिक " को परिलक्षित करना पांडुलिपि के मूल लेखन में नहीं है ।"[२८]

" वासना " सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ विवेचनीय हैं :

प्रलय में भी बच रहे हम फिर मिलन का मोद
रहा मिलने को बचा सूने जगत की गोद

२४- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १५ ।
२५- कामायनी (प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ३३ ।
२६- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या २२ ।
२७- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ५४ ।
२८- कामायनी का पांडुलिपि संस्करण-डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या १२ ।

ज्योत्स्ना सी निकल आई काट कर नीहार
प्रणय विधु है खड़ा नभ में लिये तारक हार ।[२९]

प्रथम संस्करण में "काटकर" के स्थान पर "पार कर" का प्रयोग किया गया । यहाँ मनु श्रद्धा से अपने मिलन की स्थिति का निरूपण करते हैं । "काटकर" शब्द से आभास होता है कि श्रद्धा का शरीर नितांत कठोर है । वस्तुतः श्रद्धा के शरीर को कठोर वर्णित करना कवि को अभीष्ट नहीं क्योंकि "श्रद्धा" सर्ग में वह कह चुका है -

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।[३०]

इस कारण से कवि ने "काटकर" के स्थान पर "पार कर" कर दिया । "पार कर" प्रयोग से श्रद्धा की कोमलता को आघात नहीं लगता ।

"लज्जा" सर्ग की एक पंक्ति है :

मंगल कुंकुम की श्री जिसमें निखरी हो ऊषा सी लाली ।[३१]

प्रथम संस्करण में "ऊषा सी" के स्थान पर "ऊषा की" का प्रयोग हुआ । "ऊषा सी" में सादृश्य की स्थूलता थी । "ऊषा की" के प्रयोग द्वारा स्थूल सादृश्य को सूक्ष्म स्तर पर लाया गया ।

पांडुलिपि संस्करण के "यज्ञ" सर्ग का छंद है :

यज्ञ कर्म से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा
इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम खिलेगा ।[३२]

२९- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ३८ ।

३०- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १६ ।

३१- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ४१ ।

३२- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) ; पृष्ठ संख्या ४५ ।

प्रथम संस्करण में 'यज्ञ' सर्ग के स्थान पर 'कर्म' सर्ग कर दिया गया ।(इसका विवेचन आगे किया जाएगा किंतु प्रसंग में आ जाने के कारण, इसका उल्लेख आवश्यक है) । 'कर्म' सर्ग में उक्त छंद इस प्रकार है :

कर्म यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा ;
इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम खिलेगा ।[३३]

यहाँ 'यज्ञ कर्म' के स्थान पर 'कर्म यज्ञ' कर दिया गया । प्रथम संस्करण में 'यज्ञ' के स्थान पर 'कर्म' को प्रमुखता दी गई । इसीलिए 'यज्ञ कर्म' के स्थान पर 'कर्म यज्ञ' रखा गया । 'यज्ञ' के स्थान पर 'कर्म' सर्ग रखने का मूल कारण यही है । साथ ही, प्रथम संस्करण में 'अनार' के स्थान पर 'मानस' का प्रयोग किया गया है । 'अनार की आशा का कुसुम खिलेगा' प्रयोग में 'अनार' शब्द निरर्थक-सा है और अशोभन भी । इसके स्थान पर 'मानस' शब्द का प्रयोग भावात्मक और काव्यात्मक ,दोनों ही दृष्टि से श्लाघ्य है ।

'यज्ञ' सर्ग की पंक्ति है :

उनके कुछ भी अधिकार नहीं हैं वे तो सब ही हैं फीके ।[३४]

प्रथम संस्करण के 'कर्म' सर्ग में उक्त पंक्ति इस रूप में है :

उनके कुछ अधिकार नहीं क्या वे सब ही हैं फीके ।[३५]

श्रद्धा, मनु को क्षुद्र जीवों के अधिकारों के प्रति सजग करने हेतु उनसे प्रश्न करती है कि क्या इन प्राणियों का कोई भी अधिकार नहीं । इस संदर्भ में 'क्या' शब्द का प्रयोग उचित हुआ । पांडुलिपि संस्करण में 'क्या' का प्रयोग न होने के कारण स्पष्ट नहीं हो पाता कि यह कथन श्रद्धा का मनु के प्रति प्रश्न है या इस कथन में श्रद्धा की सहमति है ।

३३- कामायनी (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या ११३ ।

३४- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या ५२ ।

३५- कामायनी (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या १२६ ।

"ईर्ष्या" सर्ग का एक छंद है :

मैं यह तो मान नहीं सकता सुख सहज लब्ध यों छूट जायँ

जीवन का जो संघर्ष चले वह विफल रहे हम घास खायें । [36]

प्रथम संस्करण में छंद की अंतिम पंक्ति में " घास खायें " के स्थान पर " छले जायँ " कर दिया गया । " घास खायें " अत्यंत साधारण बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होता है । अतः इसे हटाकर " छले जायँ " का प्रयोग किया गया । यह प्रयोग शिष्ट एवं साहित्यिक है ।

पांडुलिपि संस्करण में " युद्ध " सर्ग की पंक्ति उल्लेखनीय है :

अपनी दुर्बलता में मनु तब तो हाँफ रहे थे । [37]

प्रथम संस्करण के " संघर्ष " सर्ग में यही पंक्ति संशोधित रूप में मिलती है :

अपनी दुर्बलता में मनु तब हाँफ रहे थे । [38]

बाद की पंक्ति में " तो " हटा दिया गया । " तो " यहाँ निरर्थक था और छंद-प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करता था ।

"दर्शन" सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

वह खड़ा प्रणत है चरण पूल

फकड़ा कुमार कर मृदुल फूल । [39]

प्रथम संस्करण में यह पंक्तियाँ इस रूप में हैं :

वह खड़ा प्रणत है चरण पूल

फकड़ा कुमार कर मृदुल फूल । [40]

३६- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या ५८ ।

३७- कामायनी(पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या ६० ।

३८- कामायनी(प्रथम संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १६८ ।

३९- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या १२० ।

४०- कामायनी (प्रथम संस्करण); पृष्ठ संख्या २४४ ।

यहाँ ' इला ' के स्थान पर ' इड़ा ' शब्द का प्रयोग किया । वस्तुत: इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा क्योंकि ' इड़ा ' और ' इला ' दोनों को ' प्रसाद ' जी ने पांडुलिपि संस्करण में एक ही माना । दूसरे, ' सदृश ' के स्थान पर ' मृदुल ' का प्रयोग किया गया । ' सदृश ' के छूट जाने से सादृश्य-विधान में सूक्ष्मता आ गई ; साथ ही, उपमान में ' मृदुल ' शब्द से अतिरिक्त नवीनता एवं विशिष्टता उत्पन्न हो गई ।

' प्रसाद ' जी ने बहुत से ऐसे संशोधन तथा परिवर्तन किए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वे क्रमश: स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हो रहे हैं । साथ ही, कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ आभास होता है कि सादृश्य पहले से स्थूल हो गया । एक उदाहरण प्रस्तुत है :

यह प्रभात की स्वर्ण किरन की झिलमिल चंचल सी छाया ।

प्रथम संस्करण में ' किरन की ' के स्थान पर ' किरन सी ' का प्रयोग हुआ । यहाँ स्थूलता आ गई, ऐसा प्रतीत होता है किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो विदित होगा कि ' प्रसाद ' जी ने श्रद्धा के लिए दो भिन्न उपमानों का आयोजन करने के लिए ' किरन की ' के स्थान पर ' किरन सी ' का प्रयोग किया । पूर्व रूप में श्रद्धा के लिए एक उपमान था ।

पांडुलिपि के अनेक छंद ऐसे हैं जिनमें शब्दों का क्रम प्रथम संस्करण में बदल दिया गया । प्राय: शब्दों में क्रम-परिवर्तन, छंद में प्रवाहमयता लाने हेतु किया गया । कुछ उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जाएगी ।

' चिंता ' सर्ग की पंक्तियाँ हैं :

प्रहर दिवस कितने बीते / इस को अब कौन बता सकता
इनके सूचक उपकरणों का, कोई चिन्ह न पा सकता ।[४१]

प्रथम संस्करण में उक्त छंद इस रूप में मिलता है :

---

४१ - कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या १० ।

प्रहर दिवस कितने बीते, अब
इसको कौन बता सकता ।
इनके सूचक उपकरणों का
चिन्ह न कोई पा सकता ।[४२]

यहाँ 'कोई चिन्ह न' के स्थान पर 'चिन्ह न कोई' कर दिया गया । इस परिवर्तन से, छंद के प्रवाह में जो थोड़ी-सी रुकावट 'कोई' के बाद आ जाती थी, दूर हो गई ।

'आशा' सर्ग की निम्नलिखित पंक्ति उल्लेखनीय है :

रक्त कुसुम के नव पराग सी उड़ा दे न तू इतनी धूल ।[४३]

प्रथम संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है :

रक्त कुसुम के नव पराग सी
उड़ा न दे तू इतनी धूल ।[४४]

'यहाँ 'उड़ा दे न' के स्थान पर 'उड़ा न दे' का प्रयोग किया गया । 'दे न' के मध्य लय संबंधी यत्किंचित रुकावट थी, वह उक्त विपर्यय से दूर हो गई ।

'श्रद्धा' सर्ग की निम्नलिखित पंक्ति द्रष्टव्य है :

तप नहीं (केवल) जीवन ~~का संपूर्ण~~ सत्य, यह करुण क्षणिक (दीन) अवसाद ।[४५]

प्रथम संस्करण में यह पंक्ति इस रूप में है :

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद ।[४६]

४२- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १७ ।
४३- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या १८ ।
४४- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३१ ।
४५- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या २३ ।
४६- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ५५ ।

यहाँ "वह करुण क्षणिक" के स्थान पर "करुणा वह क्षणिक" का प्रयोग किया गया। यह परिवर्तन भी छंद के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए किया गया है।

"चिंता" सर्ग की पंक्ति उल्लेखनीय है :

तलवासी जलनिधि के जलचर विकल निकलते उतराते।[४७]

प्रथम संस्करण में उक्त पंक्ति इस रूप में है :

जलनिधि के तलवासी जलचर
विकल निकलते उतराते।[४८]

यहाँ "तलवासी जलनिधि के" स्थान पर "जलनिधि के तलवासी" कर दिया गया। "जलनिधि" को प्रमुखता देने के लिए यह परिवर्तन किया गया, ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि ये जलचर समुद्र के निवासी हैं और "तल" तो उसका (समुद्र का) एक भाग है।

कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ क्रम-परिवर्तन किया गया है किंतु उनसे कुछ अंतर नहीं आया। "दर्शन" सर्ग की पंक्ति, इस संदर्भ में, उल्लेखनीय है :

झलके कब से पर पड़े न झर
व्यथिता रजनी के श्रम सीकर।[४९]

प्रथम संस्करण में उक्त दोनों चरणों को उलट दिया गया -

व्यथिता रजनी के श्रम सीकर
झलके कब से पर पड़े न झर।[५०]

इस परिवर्तन से कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा।

४७- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या १० ।
४८- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १६ ।
४९- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या १२१ ।
५०- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २४५ ।

पाँडुलिपि संस्करण में कुछ छंद ऐसे हैं जिनमें प्रथम संस्करण में, क्रिया के काल में परिवर्तन कर दिये गए हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है :

उस लता कुंज की झिल-मिल से हेमाभ रश्मि है खेल रही।[५१]

प्रथम संस्करण में संशोधित रूप में उक्त पंक्ति यह है :

उस लता कुंज की झिल- मिल से
हेमाभ रश्मि थी खेल रही।[५२]

स्वप्नावस्था में मनु को काम उपदेश देता है। मनु सचेत होकर प्रश्न करते हैं किंतु उनको उत्तर देने के लिए वहाँ कोई नहीं उपस्थित था। इसके बाद कवि वर्णित करता है कि अरुणोदय हो गया और सुनहरी किरणें लता कुंज से होकर आने लगीं। इस स्थिति को वर्णित करने के लिए "है" क्रिया का प्रयोग त्रुटिपूर्ण था, अतः इसके स्थान पर "थी" का प्रयोग किया गया।

"स्वप्न" सर्ग की एक पंक्ति द्रष्टव्य है :

एक ओर रक्खे थे सुंदर मढ़े चर्म से, सुखद वहाँ।[५३]

प्रथम संस्करण में यह पंक्ति इस रूप में है :

एक ओर रक्खे हैं सुंदर मढ़े चर्म से सुखद वहाँ।[५४]

यहाँ "थे" के स्थान पर "है" कर दिया गया। यह संशोधन अच्छा नहीं हुआ क्योंकि इसके कुछ पूर्व की पंक्तियों में क्रिया भूतकाल की हैं और प्रसंग भी वही चल रहा है :

नाग केसरों की क्यारी में अन्य सुमन भी थे बहुरंग।[५५]

इस प्रकार उक्त संशोधन से क्रिया के काल में असंगति उत्पन्न हो गई।

५१- कामायनी (पाँडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ३० ।
५२- कामायनी (प्रथम संस्करण) काम सर्ग ; पृष्ठ संख्या ७८ ।
५३- कामायनी (पाँडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ७६ ।
५४- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १८३ ।
५५- कामायनी (पाँडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ७६ ।

" कामायनी " के प्रथम संस्करण में दो-एक स्थलों पर लिंग संबंधी परिवर्तन मिलते हैं। उदाहरणार्थ "आनंद" सर्ग का यह छंद उल्लेखनीय है :

संध्या समीप आयी थी
उस सर के वल्कल वसना
तारों से अलक गुँथा था
पहने कदंब की रसना। [५६]

प्रथम संस्करण में उक्त छंद इस रूप में है :

संध्या समीप आयी थी
उस सर के, वल्कल वसना,
तारों से अलक गुँथी थी
पहने कदंब की रसना। [५७]

यहाँ "गुँथा था" के स्थान पर "गुँथी थी" का प्रयोग किया गया। पांडुलिपि संस्करण में "अलक" को पुल्लिंग मानकर, उसी के अनुरूप पुल्लिंग क्रिया (गुँथा था) का प्रयोग किया गया। वस्तुतः "अलक" शब्द स्त्रीलिंग है, अतः उक्त प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध था। प्रथम संस्करण में "अलक" को स्त्रीलिंग माना गया और उसी के कारण स्त्रीलिंग की क्रिया (गुँथी थी) भी रखी गई।

पांडुलिपि संस्करण के अनेक छंदों के वाक्यों में संशोधन या परिवर्तन हुए हैं।

पांडुलिपि संस्करण के "यज्ञ" सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ विवेचनीय हैं :

श्रद्धा जाग रही थी तब भी छाई थी मादकता
मधुर भाव उस कोमल तन में अपना ही रस छकता। [५८]

प्रथम संस्करण के "कर्म" सर्ग में उक्त छंद इस रूप में है :

५६- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या १४८।
५७- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २८५।
५८- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ५१।

श्रद्धा जाग रही थी तब भी
छाई थी मादकता,
मधुर भाव उसके तन मन में
अपना ही रस छकता ।[५६]

यहाँ " उस कोमल तन में " के स्थान पर " उसके तन मन में " कर दिया गया । पांडुलिपि में विद्यमान छंद से ज्ञात होता है कि मादकता और मधुर भावना श्रद्धा के शरीर में व्याप्त हो गई । इसके विपरीत प्रथम संस्करण के छंद से घोतित होता है कि मादकता और मधुर भावना श्रद्धा के शरीर और मन, दोनों ही में व्याप्त हो गई । श्रद्धा में प्रेम-भावना का पूरी तरह से संचार हो गया, ऐसा अनुभव होने लगा । पांडुलिपि संस्करण के छंद में प्रभाव शरीर तक ही सीमित था, अत: एकांगी था । इस संशोधन की प्रक्रिया में " कोमल " विशेषण को हटाना पड़ा । यहाँ " प्रसाद " जी ने वर्णन से अधिक महत्व, अनुभव को दिया, इस कारण उन्हें " कोमल " विशेषण को हटाने में संकोच नहीं हुआ । दूसरे , पीछे के कई छंदों में यह (कोमल) विशेषण श्रद्धा के लिए प्रयुक्त किया जा चुका था ।

इस संदर्भ में " स्वप्न " सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं:

उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब देव शक्तियाँ क्रोध भरी ।
रुद्र नयन खुल गया अचानक, प्रजा स्वतंत्र विरोध भरी ।[६०]

प्रथम संस्करण में उक्त छंद का रूप यह है :

उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब देव-शक्तियाँ क्रोध भरी ,
रुद्र-नयन खुल गया अचानक, व्याकुल काँप रही नगरी ।[६१]

यहाँ " प्रजा स्वतंत्र विरोध भरी " के स्थान पर " व्याकुल काँप रही नगरी " का प्रयोग हुआ है । यह परिवर्तन दो कारणों से किया गया प्रतीत

५६- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १२६ ।
६०- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण); पृष्ठ संख्या ८१ ।
६१- कामायनी (प्रथम संस्करण): पृष्ठ संख्या १८५ ।

होता है । शिव के विनाशकारी तीसरे नेत्र के खुलने का तात्कालिक प्रभाव दर्शाने के लिए उक्त वाक्य- व्याकुल काँप रही नगरी - रखा गया । दूसरा कारण यह है कि उक्त पंक्तियों में, देव-शक्तियों के कोप का प्रसंग चल रहा है और उनके बीच प्रजा का विरोध वर्णित करना अप्रासंगिक है । प्रजा का विरोध दर्शानेवाली पंक्तियाँ बाद में अलग से रखी गई हैं ।

'आनंद' सर्ग का निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है :

हे देव ! आज समझी मैं
कुछ भी न समझ थी मुझको
सब को भुला रही थी
अभ्यास यही है मुझको ।[६२]

प्रथम संस्करण में यह छंद इस रूप में है :

भगवति, समझी मैं ! सचमुच
कुछ भी न समझ थी मुझको
सब को ही भुला रही थी
अभ्यास यही था मुझको ।[६३]

पूर्व रूप में इड़ा का कथन मनु के प्रति प्रतीत होता है, क्योंकि वहाँ 'देव' को संबोधित किया है । इसके विपरीत प्रथम संस्करण में 'भगवति' कहकर, इड़ा ने श्रद्धा को संबोधित किया । मनु को संबोधित करना अशुद्ध है क्योंकि इसके पूर्व ही कवि ने कहा है -

भर रहा अंक श्रद्धा का
मानव उसको अपना कर
था इड़ा शीश चरणों पर
वह पुलक भरी गद्गद स्वर ।
बोली - "मैं धन्य हुई हूँ
जो यहाँ भूल कर आयी

६२- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या १५० ।
६३- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २८७ ।

हे देवि ! तुम्हारी ममता
बस मुझे खींचती लायी ।

इससे स्पष्ट होता है कि इसके बाद भी इड़ा का कथन श्रद्धा के प्रति है । इस कारण से प्रथम संस्करण में उसे " भगवति " कहकर संबोधित किया । इसी छंद में " है " के स्थान पर " था " का प्रयोग किया गया । इड़ा , अपनी पहले की प्रवृत्ति के विषय में आत्मालोचन कर रही है, अतः " है " का प्रयोग अशुद्ध था ।

इस छंद के तृतीय चरण में " ही " का अतिरिक्त प्रयोग किया गया । यह संशोधन मात्राओं की कमी को पूरा करने की दृष्टि से किया गया ।

" आनंद छंद में १४-१४ मात्राओं पर विश्राम होता है ।" [६४]

पांडुलिपि संस्करण में तृतीय चरण में १२ मात्राएँ थीं जिससे छंद की लय में व्यवधान उत्पन्न होता था -

सबको भुला रही थी = १२ मात्राएँ

संशोधन के उपरांत प्रथम संस्करण की पंक्ति में १४ मात्राएँ हो गयीं-

सबको ही भुला रही थी = १४ मात्राएँ

पांडुलिपि संस्करण के कुछ छंदों का, प्रथम संस्करण में, क्रम बदल दिया गया । उदाहरणार्थ पांडुलिपि में " इड़ा " सर्ग में - हाँ अब तुम बनने को स्वतंत्र - यह छंद - यह कौन ? अरे फिर वही काम ! - इस छंद के बाद है और इस छंद के बाद यह छंद है -

मनु ! उसने तो कर दिया दान ।

प्रथम संस्करण में इन छंदों का क्रम-परिवर्तन कर दिया गया । अब उनका क्रम इस रूप में आ गया -

(१) यह कौन ? अरे फिर वही काम ।
(२) मनु ! उसने तो कर दिया दान ।
(३) हाँ अब तुम बनने को स्वतंत्र ।

६४- प्रसाद की कविताएँ - श्री सुधाकर पांडेय ; पृष्ठ संख्या ३४५ ।

(१) व (२) छंदों का आपस में अनिवार्य संबंध है । मनु कहते हैं -

यह कौन ? अरे फिर वही काम !

\+ + + +

पाया तो, उसने भी मुझको दे दिया निज अमृत धाम
फिर क्यों न हुआ मैं पूर्ण काम ?

काम तत्काल मनु के प्रश्न का उत्तर देता है -

मनु ! उसने तो कर दिया दान

\+ + + +

" कुछ मेरा हो " यह राग भाव संकुचित पूर्णता है अजान
मानस जलनिधि का क्षुद्र यान ।

इस क्रम-परिवर्तन से उक्त छंदों में जो पूर्वापर संबंध स्थापित हो गया, वह पांडुलिपि संस्करण के छंदों में दुर्लभ था ।

प्रथम संस्करण में " आनंद " सर्ग के अंतर्गत चार नए छंदों का समावेश हुआ है । ये छंद श्रद्धा के स्वरूप को और भव्य एवं उज्ज्वल बनाते हैं । इन छंदों का दर्शन संभवत: उचित होगा -

(१) श्रद्धा के मधु अधरों की
छोटी छोटी रेखाएँ ;
रागारुण किरण[६५] कला सी
विकसीं बन स्मिति लेखाएँ ।

(२) वह कामायनी जगत की
मंगल कामना अकेली
थी ज्योतिष्मती प्रफुल्लित
मानस तट की वन बेली ।

६५- प्रथम संस्करण के शुद्धि-पत्र में " किरुण " के स्थान पर " किरण " है ।

(३) वह विश्व चेतना पुलकित
थी पूर्णकाम की प्रतिमा
जैसे गंभीर महा-ह्रद
हो भरा विमल जल महिमा ।

\+ + + +

जिस मुरली के निस्वन से
यह शून्य रागमय होता ;
वह कामायिनी विहँसती
अग जग था मुखरित होता ।[६६]

'कामायनी' के प्रथम संस्करण में कुछ सर्गों के शीर्षक परिवर्तित रूप में मिलते हैं । पांडुलिपि संस्करण में यज्ञ 'सर्ग, प्रथम संस्करण में' कर्म', सर्ग हो गया ।' यज्ञ' शीर्षक' कर्म' से संकुचित प्रतीत होता है क्योंकि यज्ञ को कर्म का एक अंग कहा जा सकता है, कर्म नहीं । मनु स्वयं कर्म की परिभाषा (बलि युक्त) यज्ञ मानते हैं, जो कि उनका भ्रम है । इसी के फलस्वरूप श्रद्धा मनु से विरक्त हो जाती है । यदि यज्ञ, कर्म का ही प्रतिरूप होता, तो श्रद्धा मनु के बलि युक्त यज्ञ से प्रसन्न होती । कर्म को महत्ता प्रदान करने के लिए,' यज्ञ' के स्थान पर' कर्म' शीर्षक कर दिया गया ।' कर्म' शीर्षक की एक पंक्ति से यह बात अच्छी प्रकार से स्पष्ट हो जाएगी- कर्म यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा ।[६७] पांडुलिपि संस्करण में 'कर्म यज्ञ' के स्थान पर' यज्ञ कर्म' का प्रयोग हुआ था -

'यज्ञ कर्म से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा ।[६८]

पांडुलिपि में' इला' सर्ग था । प्रथम संस्करण में यह' इड़ा'

६६- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या २६० ।

६७- कामायनी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ११३ ।

६८- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) यज्ञ सर्ग, पृष्ठ संख्या ४५ ।

सर्ग हो गया । इससे कोई अंतर नहीं आया क्योंकि " प्रसाद " जी ने पाण्डुलिपि के छंदों में कहीं इला लिखा और कहीं इड़ा । प्रथम संस्करण में सर्वत्र " इड़ा " का प्रयोग मिलता है । इसलिए सर्ग का नामकरण भी " इड़ा " ही किया गया । वैदिक साहित्य में इड़ा , इला, इरा, इडा नाम मिलते हैं ।[६६]

पाण्डुलिपि संस्करण में " युद्ध " सर्ग था । प्रथम संस्करण में यह " संघर्ष " सर्ग हो गया । " युद्ध " शीर्षक से घोतित होता है कि केवल बाह्य युद्ध हुआ होगा । इसके विपरीत इस सर्ग में बाह्य संघर्ष के साथ-साथ आंतरिक संघर्ष का भी वर्णन हुआ है । आंतरिक संघर्ष इन पंक्तियों में व्यंजित हुआ है -

मनु चिंतित से पड़े शयन पर सोच रहे थे,
क्रोध और शंका के श्वापद नोच रहे थे ।

मनु का व्यक्तिवाद जब चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तो बाह्य संघर्ष होता है । वस्तुतः आंतरिक एवं बाह्य दोनों संघर्षों को निरूपित करने हेतु " युद्ध " के स्थान पर " संघर्ष " शीर्षक रखा ।

००

६६- वैदिक कोश - श्री सूर्यकांत ; पृष्ठ संख्या ४६-४७ ।

रा ज्य श्री

राज्य श्री

'राज्य श्री' 'प्रसाद' जी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। उन्होंने स्वयं इसके प्राक्कथन में लिखा है -'इस प्रकार से मैं इसे अपना प्रथम ऐतिहासिक रूपक समझता हूँ।'[1] इससे पूर्व उन्होंने पौराणिक प्रसंगों और इतिहास से जुड़ी हुई किंवदंतियों को कथानक के रूप में चुना था।'राज्य श्री' में वे व्यापक रूप में इतिहास का आधार लेते हैं।[2] 'राज्य श्री' के प्रथम प्रकाशन से पूर्व 'सज्जन' (इन्दु कला २,८-११ संयुक्तांक, फाल्गुन ६७ से ज्येष्ठ ६८)'कल्याणी-परिणय' (नागरी प्रचारिणी पत्रिका जुलाई १६१२, भाग २) और 'प्रायश्चित्त'। इंदु-कला ५, खंड-१, जनवरी पौष ७०) आदि नाटक प्रकाशित हुए थे। 'सज्जन' नाटक पौराणिक संदर्भ पर आधारित था।'कल्याण-परिणय' में कथा-विस्तार के अभाव के कारण ऐतिहासिक आधार को व्यापकता नहीं मिल पायी।'प्रायश्चित्त' में जयचंद का प्रायश्चित्त दिखाना ही नाटककार का मुख्य लक्ष्य है, अत: इसमें ऐतिहासिक आधार के विस्तार की कोई संभावना नहीं थी।

सर्वप्रथम यह इंदु कला ६, खंड १, जनवरी १६१५ ई० में प्रकाशित हुआ। इस वर्ष यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुआ। इसी रूप में यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण (१६१८ ई०) में संगृहीत था। इसके पश्चात् संवत् १६८५ (सन् १६२८) में 'राज्यश्री' का परिवर्तित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण 'भारती भंडार, बनारस सिटी' से निकला। इसके प्रथम संस्करण में पृष्ठों की संख्या ३६ थी। इसमें तीन अंक थे- प्रथम अंक में पांच दृश्य, द्वितीय अंक में छ: दृश्य और तृतीय अंक में पांच दृश्य थे। द्वितीय संस्करण में 'प्राक्कथन' था जो कि प्रथम संस्करण में नहीं था। इसकी पृष्ठ संख्या अब सत्तर हो गई। पात्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई। शांति देव, सुरमा, पुलकेशिन और सुएनच्वांग- ये चार अतिरिक्त पात्र हैं। इस संस्करण में उन्होंने शांतिदेव से और विकटघोष को एक ही व्यक्ति माना है। इसमें अंकों की संख्या

१- राज्यश्री (प्राक्कथन) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या ४।
२- प्रसाद के नाटक : रचना और प्रक्रिया : पृष्ठ संख्या ११२ - डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव।

चार हो गईं । प्रथम अंक में सात दृश्य, द्वितीय अंक में सात दृश्य, तृतीय अंक में पांच दृश्य और चतुर्थ अंक में चार दृश्य हो गये ।

इन परिवर्तनों को निम्नलिखित तालिका से भलीभाँति समझा जा सकता है -

	अंक	दृश्य	कुल अंक	पृष्ठ संख्या	पात्र
प्रथम संस्करण (सन् १९१५)	प्रथम द्वितीय तृतीय	पांच छः पांच	तीन	उंतालिस	अठारह (मुख्य)
द्वितीय संस्करण (सन् १९२८) (सं० १९८५)	प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ	सात सात पांच चार	चार	सत्तर	शांतिदेव सुरमा पुलकेशिन सुएनच्वांग ये अतिरिक्त पात्र हैं ।

इन परिवर्तनों का प्रभाव 'राज्यश्री' नाटक की कथावस्तु संवाद-योजना, रोचकता आदि पर पड़ा । ये परिवर्तन निम्नलिखित हैं :-

कथानक में परिवर्तन

'राज्यश्री' के प्रथम संस्करण का कथानक घटनाओं की श्रृंखला मात्र है । घटनायें, एक के बाद एक, शीघ्रता से घटित होती हैं । प्रत्येक पात्र संघर्षरत है । इसके फलस्वरूप नाटक में शुष्कता आ गई है । 'राज्यश्री' के द्वितीय संस्करण में भी कथानक घटनाओं की बहुलता के कारण बोझिल हो गया है किंतु

यहाँ कुछ नवीन पात्रों एवं प्रसंगों से नाटक की शुष्कता काफी सीमा तक दूर हो गई । शांतिदेव एवं सुरमा, जो कि काल्पनिक पात्र हैं, की कथा से कथानक में विशिष्टता आ गई है । प्रथम संस्करण में विकटघोष का ध्यान राज्यश्री मात्र पर केंद्रित रहता है जबकि परिवर्तित संस्करण में वह सुरमा और राज्यश्री, दोनों की ओर आकृष्ट रहता है । इस तरह उसका चरित्र और भी गर्हित हो जाता है । ठीक यही स्थिति मालवेश देवगुप्त की है - प्रथम संस्करण में वह सिर्फ राज्यश्री को प्राप्त करने की चेष्टा करता है, किंतु द्वितीय संस्करण में वह मालिन सुरमा से भी प्रणयालाप करता है । इस कारणवश हमें उसके चरित्र से और भी घृणा हो जाती है । सुरमा की अवतारणा, राज्यश्री के चरित्र को महत्त्व देने के लिए की गई है । धन-ऐश्वर्य के पीछे भागनेवाली, कुचक्र में संलग्न सुरमा की तुलना में राज्यश्री का चरित्र अपेक्षाकृत उज्ज्वल प्रतीत होता है । एक स्थल पर सुरमा स्वयं कहती है - " राज्यश्री को देखती हूँ, तब मुझे अपना स्थान सूचित होता है - पता चलता है कि मैं कहाँ हूँ ।"[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि सुरमा, जो कि काल्पनिक चरित्र है, नाटक की महत्त्वपूर्ण स्त्री पात्र है ।

पुलकेशिन और सुएनच्वांग दोनों ऐतिहासिक पात्र हैं, जो कि प्रथम संस्करण में नहीं थे । पुलकेशिन, दक्षिण का, चालुक्य राजा था । हर्ष ने उत्तर भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया, तत्पश्चात् उसने दक्षिण विजय का प्रयास किया किंतु पुलकेशिन ने उसे पराजित किया । इस घटना का समर्थन स्मिथ की पुस्तक " अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया " से होता है । डॉ० रामकुमार दीक्षित ने भी लिखा है - " पुलकेशिन के एक लेख में हर्ष की पराजय का वर्णन इन शब्दों में किया गया है - 'युधिपतितगजेन्द्रानीक वीभत्सभूतो भयविगलितहर्षों येन चाकारि हर्षः' ।"[4] " राज्यश्री " में हर्ष को पराजित न दिखाकर उसे संधि के लिए इच्छुक दिखलाया है । विद्वानों को इस पर आपत्ति है । इस आपत्ति के उत्तर

३- राज्यश्री (द्वितीय संस्करण)- चतुर्थ अंक,तीसरा दृश्य,पृष्ठ संख्या ६६ ।

४- कन्नौज - डॉ० रामकुमार दीक्षित, पृष्ठ संख्या ६ ।

में यह कहा जा सकता है कि 'प्रसाद' जी ने इस घटना में जो परिवर्तन किया, इसके पीछे उनकी इतिहास के प्रति अज्ञानता नहीं थी । वह इस सत्य से पूर्णतः परिचित थे कि हर्ष, पुलकेशिन से पराजित हुआ था क्योंकि 'राज्यश्री' के प्राक्कथन में उल्लिखित है - 'पुलकेशिन चालुक्य ने उसकी विजय दक्षिण में रोक दिया।'[५] साथ ही, हर्ष के एक कथन से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है - 'यों तुम अपनी विजय-घोषणा कर सकते हो, क्योंकि मेरी गजवाहिनी तुम्हारे अश्वारोहियों से विनष्ट हो चुकी है ।'[६] ऐतिहासिक सत्य से परिचित होते हुए भी उन्होंने इसलिए हर्ष को पुलकेशिन से संधि करते हुए दिखलाया क्योंकि उनका नाटक में मुख्य ध्येय है - राज्यश्री का चरित्र-चित्रण । यदि वे उस युद्ध का चित्रण करते तो नाटक में अनावश्यक विस्तार हो जाता । साथ ही परिवर्तित संस्करण में उन्होंने इस हर्ष का पुलकेशिन चालुक्य से युद्ध होने की घटना को भी नाटक में उल्लिखित करना आवश्यक समझा । 'प्रसाद' जी ने यहाँ पर यह दिखाने का प्रयास किया कि हर्ष ने राज्यश्री को खोजना, युद्ध करने से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा।

सुएनच्वांग भी ऐतिहासिक चरित्र है । प्रथम संस्करण में इसे कोई स्थान नहीं प्राप्त हुआ था । यह हर्ष के समय भारत में आया था । 'प्रसाद' जी ने कालांतर में राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप कोई न कोई विदेशी पात्र अपने नाटकों में रखने प्रारंभ कर दिये थे । ('स्कंदगुप्त' में धातु सेन, 'चंद्रगुप्त' में कार्नेलिया) । कोई विदेशी यदि हमारी सभ्यता एवं संस्कृति की प्रशंसा करता है, तो वह उचित एवं महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । इसी प्रवृत्तिवश उन्होंने सुएनच्वांग को 'राज्यश्री' के द्वितीय संस्करण में स्थान दिया । एक स्थल पर वह कहता है - 'यह भारत का देव-दुर्लभ दृश्य देख कर सम्राट ! मुझे विश्वास हो गया कि अमिताभ की यही प्रसव-भूमि हो सकती है ।'[७]

५- राज्यश्री - प्राक्कथन, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या ४ ।

६- राज्यश्री - तृतीय अंक, तृतीय दृश्य, पृष्ठ संख्या ५१-५२ ।

७- राज्यश्री, द्वितीय संस्करण, चतुर्थ अंक, चतुर्थ दृश्य, पृष्ठ संख्या ६७ ।

इसी के पश्चात् वह पुनः कहता है -' सर्वस्व दान करनेवाली देवी । मैं तुम्हें कुछ दूँ- यह मेरा भाग्य । आप मुझे वरदान दीजिये कि भारत से जो मैंने सीखा है वह जाकर अपने देश में सुनाऊँ ।'[८] इन चरित्रों से कथानक में नवीनता एवं विशिष्टता आ गई ।

' राज्यश्री ' के प्रथम संस्करण में स्कंदगुप्त हर्ष का सहकारी सेनापति - गौड़ के राजा नरेंद्रगुप्त की हत्या करता है । द्वितीय संस्करण में ' प्रसाद ' जी ने इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया क्योंकि यह घटना (नरेन्द्रगुप्त की की हत्या) इतिहास से समर्थित नहीं है । इसीलिए उन्होंने चतुर्थ अंक के द्वितीय दृश्य में उसे (नरेंद्रगुप्त) संधि के लिए उत्सुक दिखलाया । इस प्रसंग में परिवर्तन करने से ऐतिहासिक सत्य की रक्षा हुई । इससे कथानक का ऐतिहासिक आधार अपेक्षया अधिक दृढ़ हो गया ।

प्रथम संस्करण में नरेंद्रगुप्त राज्यवर्धन की हत्या करता है, जबकि द्वितीय संस्करण में विकटघोष (शांतिदेव) राज्यवर्धन की हत्या करता है। यह परिवर्तन संभवतः कथानक में नाटकीयता लाने के लिए किया गया है। यह उचित प्रतीत होता है कि नरेंद्रगुप्त ने अपने बचाव के लिए विकटघोष से हत्या करवाई जिससे उस पर कोई संदेह न करे ।

प्रथम संस्करण में तीन अंक थे, जबकि द्वितीय संस्करण में चार अंक हैं । प्रायः विद्वान[९] चतुर्थ अंक को अनावश्यक कहते हैं, किंतु यदि हम ध्यानपूर्वक देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि यह चतुर्थ अंक नाटक के लिए अत्यंत आवश्यक है । चतुर्थ अंक की मुख्य घटनाएँ हैं - प्रयाग का दान-समारोह, राज्यवर्धन के हत्यारे

८- राज्यश्री - द्वितीय संस्करण, चतुर्थ अंक, चतुर्थ दृश्य, पृष्ठ संख्या ९७ ।

९-(क) 'चतुर्थ अंक निरर्थक और निस्सार भी कहा जा सकता है' - (प्रसाद का गद्य) लेखक - सूर्य प्रसाद दीक्षित (पृष्ठ संख्या १४)।

(ख) 'कथानक के विभाजन तथा विस्तार में यत्र-तत्र कुछ स्फुट दृश्यों की वृद्धि के अतिरिक्त इस संस्करण में जो चतुर्थ अंक का नवीन आयोजन किया गया है, नाटकीय सौंदर्य के विकास से, उसका विशेष महत्त्व नहीं है ।'- डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ २५) ।

विकटघोष को राज्यश्री द्वारा प्राणदान आदि । विकटघोष को क्षमा करने से राज्यश्री का चरित्र अपेक्षाया उज्ज्वल हो जा T है । प्रयाग का दान - समारोह एक प्रमुख घटना थी । " प्रसाद " जी ने इस समारोह का वर्णन चतुर्थ अंक में किया है और सुरनच्वांग से उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करायी है । हर्ष ने इस दान में अपना सब कुछ दे दिया । इसके पीछे राज्यश्री की प्रेरणा थी । इससे राज्यश्री के चरित्र को अतिरिक्त भव्यता प्राप्त होती है । राज्यश्री का चरित्र-चित्रण इस नाटक का लक्ष्य है जैसा कि इसके प्राक्कथन में नाटककार ने स्पष्ट किया है, " इस रूपक का उद्देश्य है राज्यश्री का चरित्र-चित्रण " इन प्रसंगों से नाटक की शुष्कता का काफ़ी सीमा तक परिहार हो गया और नाटक में रोचकता आ गई ।

इस प्रकार नवीन चरित्रों की अवतारणा से नवीन प्रसंगों एवं घटनाओं के वर्णन से कथानक पहले की अपेक्षा सुदृढ़-रोचक एवं आकर्षक हो गया है ।

संवाद योजना

" राज्यश्री " के प्रथम संस्करण में अनेक स्थलों पर पद्यात्मक सम्वादों का प्रयोग हुआ है । द्वितीय संस्करण में इनका प्रयोग नहीं हुआ । साथ ही अनेक स्थलों पर पद्यों को गद्य में रूपांतरित कर दिया है । प्रथम संस्करण में लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, जबकि परिवर्तित संस्करण में प्राय: उन संवादों को संक्षिप्त कर दिया गया है । इस काट-छाँट से वाक्यों में नई शक्ति आ गई । प्रथम संस्करण के प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य[१०] में देवगुप्त का एक लंबा स्वगत कथन है । द्वितीय संस्करण में प्रथम अंक के छठें दृश्य में इस कथन को दो भागों में विभक्त कर दिया गया। पहला भाग देवगुप्त कहता है और दूसरा भाग मधुकर कहता है । सम्वादों की भाषा, प्रथम संस्करण की तुलना में,

---

१०- राज्यश्री (प्रथम संस्करण); पृष्ठ सं० ७-८ ।

तािमक सुगढ़ एवं परिष्कृत है। उदाहरण के लिए, "राज्यश्री" के प्रथम संस्करण के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य का एक वाक्य द्रष्टव्य है -

राज्यश्री -" बस नाथ ! बस, क्यों हृदय को दुर्बल बना रहे हो।"[११]

द्वितीय संस्करण के प्रथम अंक में द्वितीय दृश्य में यही वाक्य इस प्रकार है -

राज्यश्री -" बस नाथ ! बस, क्यों हृदय को दुर्बल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो।"[१२] इस उदाहरण से विदित होता है कि परवर्ती संस्करण में वाक्यों की भाषा अधिक परिष्कृत हो गई।

द्वितीय संस्करण में सम्वादों के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण कुशलतापूर्वक निरूपित किया गया है। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में मालिन सुरमा के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वह कामुक प्रवृत्ति की है - मेरी प्राणों की भूख, "आँखों की प्यास तुम न मिटाओगे ?"[१३] इसी प्रकार, प्रथम अंक के आरंभ में शांतिदेव के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वह कुचक्र में लिप्त रहनेवाला व्यक्ति है। संपूर्ण नाटक में इन दोनों पात्रों की उक्त प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसके विपरीत प्रथम संस्करण में प्रारंभिक वाक्यों से इन पात्रों के चरित्र के विषय में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती है।

स्पष्ट हो जाता है कि द्वितीय संस्करण में सम्वाद योजना प्रथम संस्करण की तुलना में अधिक श्रेष्ठ हुई है। द्वितीय संस्करण में सम्वाद अपेक्षाया स्वाभाविकता लिए हुए हैं।

हास्य-योजना

"राज्यश्री" के प्रथम संस्करण में हास्य का उचित समावेश हुआ है। द्वितीय संस्करण में एक अन्य स्थान पर हास्य का पुट मिलता है। द्वितीय अंक

११- राज्यश्री (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३।

१२- राज्यश्री (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ६।

१३- राज्यश्री (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या २।

में सुरमा के उपवन में शांतिदेव सो जाता है। उसी समय वहाँ डाकू प्रवेश करते हैं। पहिला (उसे देखकर)

तू कौन है रे ?
शांति० - विकटघोष !
दूसरा - सो तो तेरे लंबे-चौड़े हाथ-पैर और कर्कश कंठ से
ही प्रकट है -------- ।"[१४]

प्रथम संस्करण के द्वितीय अंक के पाँचवें दृश्य में मधुकर और विकटघोष के वार्तालाप में हास्य का परिपाक हुआ है। किंतु द्वितीय संस्करण में सम्वादों में परिवर्तन कर दिये गए हैं जिससे फलस्वरूप हास्य पहले की अपेक्षा शिष्ट, साहित्यिक , एवं रोचक हो गया है।

द्वितीय संस्करण में हास्य-योजना प्रथम संस्करण की तुलना में श्रेष्ठ होने के कारण द्वितीय संस्करण अधिक रोचक हो गया।

<u>अन्य परिवर्तन</u>

प्रथम संस्करण में कोई भूमिका नहीं दी गई थी, जबकि द्वितीय संस्करण के आरंभ में 'प्राक्कथन' दिया गया है। इससे पाठक को नाटक की घटनाओं को समझने में सहायता प्राप्त हुई।

प्रथम संस्करण में नांदी-पाठ[१५] और भरत-वाक्य[१६] दोनों थे, जबकि द्वितीय संस्करण में नांदी पाठ नहीं है। इस प्रकार 'प्रसाद' जी क्रमशः नाट्य-रूढ़ियों को त्यागने का प्रयास कर रहे थे।

प्रथम संस्करण के कुछ अशोभनीय शब्दों का द्वितीय संस्करण में प्रयोग नहीं मिलता। इस प्रकार का एक शब्द है - चांडाल। यह प्रथम संस्करण के द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में राज्यश्री द्वारा प्रयुक्त हुआ है। द्वितीय संस्करण

१४- राज्यश्री, द्वितीय संस्करण, द्वितीय अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ संख्या २४ ।

१५- राज्यश्री (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १ ।

१६- राज्यश्री (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३६ ।

में इसे प्रयोग में नहीं लाया गया क्योंकि 'प्रसाद' जी ने इसे राज्यश्री की अभिजात प्रवृत्ति के प्रतिकूल समझा ।

प्रथम संस्करण के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में राज्यश्री अपनी सखियों के साथ समवेत स्वर में यह प्रार्थना करती है -

जय जय जय महाशक्ति, जय जय जय ईश भक्ति,
जय जय जय सदा मुक्ति, अभयकारिणी ।
- प्रकृति जड़ प्रकाशमान, विलसत प्रतिमा महान,
तू ही है केंद्र स्थान, विश्वधारिणी ।।[१७]

द्वितीय संस्करण के प्रथम अंक के छठें दृश्य में 'प्रसाद' जी ने प्रार्थना का संकेत मात्र दिया है। यहाँ पर प्रथम संस्करण की प्रार्थना नहीं रखी गई। संभवत: उन्होंने इसे नाटक में अस्वाभाविक और अनुचित समझकर स्थान नहीं दिया। यह ठीक ही किया गया क्योंकि इससे 'राज्यश्री' की नाट्य-कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

इसके विपरीत यदि इसे नाटक में स्थान मिलता तो वह अनावश्यक विस्तार ही करता ।

द्वितीय संस्करण में सुरमा द्वारा दो गीत गाये गए हैं, जो कि प्रथम संस्करण में नहीं थे। ये गीत हैं -

(क) आशा विकल हुई है मेरी,
प्यास बुझी न कभी मन की रे ।
- - - - - - - - - - - - - - -[१८]

(ख) सम्हाले कोई कैसे प्यार ![१९]

१७- राज्यश्री , प्रथम संस्करण,प्रथम अंक, तृतीय दृश्य, पृष्ठ संख्या ७ ।

१८- राज्यश्री , द्वितीय संस्करण, प्रथम अंक, तृतीय दृश्य, पृष्ठ संख्या ९-१०।

१९- राज्यश्री , द्वितीय संस्करण, द्वितीय अंक, छठा दृश्य ,पृष्ठ संख्या ३६ ।

ये गीत अच्छे बन पड़े हैं । इनसे नाटक के सौंदर्य में अभिवृद्धि हुई है ।

द्वितीय संस्करण में नाटक की शैली, प्रथम संस्करण की तुलना में अधिक काव्यात्मक है । काव्यात्मकता से नाटक की भाषा सरस हो गई है क्योंकि वह आरोपित नहीं है वरन् सहज रूप में प्रयुक्त है ।

इन परिवर्तनों से "राज्यश्री" नाटक के सौष्ठव में अभिवृद्धि हुई । "राज्यश्री" के दोनों संस्करणों की तुलना करने पर स्पष्ट विदित होता है कि नाटककार की नाट्य-कला क्रमश: विकसित होती जा रही है ।

वि शा ख

वि शा ख

'विशाख' 'प्रसाद' जी का महत्त्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' की एक घटना पर अवलंबित है, जैसा कि इसकी भूमिका में लिखा है,' यह नाटक, राजतरंगिणी ' की एक ऐतिहासिक घटना पर अवलंबित है।'[१] इस नाटक के कथ्य के विषय में डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित लिखते हैं, ' विशाख में बौद्धों के पतन का इतिहास है।'[२]

'विशाख' का प्रथम संस्करण ' हिंदी ग्रंथ-मंडार कार्यालय, बनारस सिटी' द्वारा सन् १९२१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी पृष्ठ संख्या ८० है। यह ' हिंदी पुस्तक-माला' सीरीज़ में प्रकाशित हुआ था क्योंकि इसमें यह मुद्रित है -' हिंदी-पुस्तक-माला संख्या १०।'

'विशाख' का द्वितीय संस्करण सन् १९२९ में भारती मंडार, काशी से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण की पृष्ठ संख्या ८३ है। इसके द्वितीय संस्करण में संशोधन एवं परिवर्तन हुए हैं। प्रथम संस्करण में तीन अंक हैं। प्रथम अंक में पाँच दृश्य, द्वितीय अंक में छ: दृश्य और तृतीय अंक में पाँच दृश्य हैं। इसके द्वितीय संस्करण में भी इतने ही अंक और इतने दृश्य हैं। पात्रों की संख्या भी उतनी ही है, जितनी प्रथम संस्करण में थी।

प्रथम संस्करण की भूमिका ग्यारह पृष्ठों की है। बाद के संस्करण में यह संक्षिप्त रूप में मिलती है। भूमिका में थोड़े-बहुत संशोधन भी किये गये हैं। प्रथम संस्करण की भूमिका में बहुत-सी ऐसी बातें है जो 'प्रसाद' जी के तत्संबंधी दृष्टिकोण का परिचय देती हैं; इन्हें बाद में हटा दिया गया। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वक्तव्य द्रष्टव्य है:

' हम ऊपर कह आये हैं कि इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति

१- विशाख (प्रथम संस्करण) परिचय, पृष्ठ संख्या १।
२- प्रसाद का गद्य - डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृष्ठ संख्या १४।

को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है और यदि वह किसी महान् और प्राचीन जाति का इतिहास हो, जो कि संसार के अतीत रंग स्थल पर अपने उत्तम आदर्श का अपूर्व अभिनय कर चुकी हो और फिर भी वह अपनी ही जाति हो तो उससे बढ़कर गौरव की और कौन सी बात हो सकती है। क्योंकि हमें हमारी गिरी दशा से उठाने के लिये हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें मुझे पूर्ण संदेह है।"[3]

उक्त वक्तव्य, 'प्रसाद' जी की ऐतिहासिक नाटकों को लिखने की प्रवृत्ति के मूल कारण को व्यक्त करता है। जब हिंदी साहित्य-जगत् में 'प्रसाद' जी का आगमन हुआ, उस समय तक ऐतिहासिक नाटकों की कमी थी, जैसा कि डॉ० जगदीश चंद्र जोशी लिखते हैं, "सच बात तो यह है कि प्रसाद जी की प्रतिभा के उदय होने के पूर्व अधिक ऐतिहासिक नाटक लिखे ही नहीं गये।"[4] उस समय नाट्य-जगत् में पारसीक कंपनियों का आधिपत्य-सा था जिनका मुख्य लक्ष्य, सस्ते मनोरंजन से, अधिक से अधिक धन अर्जित करना था। इन नाटकों के कारण, तत्कालीन सामान्य पाठकों की मानसिकता ऐतिहासिक नाटकों को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं थी। लोगों को ऐतिहासिक नाटकों के महत्त्व से अवगत कराना अत्यंत आवश्यक था। इस कारण से, विशाख के प्रथम संस्करण में उक्त वक्तव्य रखा गया था। 'विशाख' के बाद 'प्रसाद' जी ने अजातशत्रु स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों का प्रणयन किया। 'प्रसाद' जी के अतिरिक्त (उन्हीं के जीवन-काल में) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'महात्मा ईसा', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने 'प्रताप प्रतिज्ञा' और उदयशंकर भट्ट ने 'चंद्रगुप्त मौर्य' नामक ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि 'विशाख' के प्रथम संस्करण के बाद कई ऐतिहासिक नाटक लिखे गये। अतः 'प्रसाद' जी ने उक्त अवतरण को बाद के संस्करण में नहीं रखा। उन्होंने समझ लिया था कि विद्वान ऐतिहासिक नाटकों का समादर

३- विशाख (प्रथम संस्करण) भूमिका, पृष्ठ संख्या ५।

४- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक - डॉ० जगदीश चंद्र जोशी, पृष्ठ संख्या ५५।

करने लगे हैं। यदि अन्य विद्वान इस दिशा में क़दम न बढ़ाते, तो संभव था कि उक्त अंश, बाद के 'विशाख' की भूमिका में भी मिलता।

प्रथम संस्करण की भूमिका में 'प्रसाद' जी ने लिखा है, "हमारे जीवन में यह आदर्श की अस्थिरता हमारे सामने अनेक भड़कीले किंतु, पोच आदर्शों के आ जाने से हुई है। उनमें सब से बड़ा और भयानक आदर्श पश्चिमीय सभ्यता का है।"[५] उक्त विचार महत्वपूर्ण है किंतु निश्चित रूप से विषयांतर हो जाता है इसका नाटक की कथा से कोई संबंध नहीं परिलक्षित होता। यह प्रसंग (जो काफ़ी दूर तक गया है) बाद में हटा दिया गया।

'प्रसाद' जी का यह वक्तव्य भी उल्लेखनीय है, "इससे पहले 'यशोधर्म देव' नाम का एक बड़ा नाटक भी लिखा जा चुका है। जो शीघ्र ही प्रकाशित होकर आप लोगों के समक्ष उपस्थित होगा। उसके अब तक न प्रकाशित होने का कोई विशेष कारण नहीं है। प्रकाशित होने पर वह स्वयं ही ज्ञात हो जायगा। शीघ्र ही एक नाटक आप और भी देखेंगे जो बुद्ध के समकालीन मगध सम्राट अजातशत्रु का चरित्र अवलंब करके लिखा गया है।"[६]

किसी कारणवश 'यशोधर्म देव' नामक नाटक का प्रकाशन नहीं हुआ। इसके विषय में अन्यत्र कोई सूचना भी नहीं मिलती। यदि यह प्रकाशित हो भी जाता, तो उसकी सूचना देने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे, 'अजातशत्रु' नाटक सन् १९२२ ई० (सं० १९७९ वि०) में प्रकाशित हो गया था, अत: बाद के 'विशाख' में इसकी सूचना को रखना नितांत निरर्थक होता। 'अजातशत्रु' की सूचना इस दृष्टि से बहुत उपयोगी है कि इससे 'अजातशत्रु' के नायक का निश्चय हो जाता है। कुछ विद्वान गौतम बुद्ध को 'अजातशत्रु' का नायक मानते हैं किंतु वास्तव में नायक अजातशत्रु ही है क्योंकि यह नाटक "बुद्ध के समकालीन मगध सम्राट अजातशत्रु का चरित्र अवलंब करके लिखा गया है।"

५- विशाख (प्रथम संस्करण) परिचय, पृष्ठ संख्या ७।
६- विशाख (प्रथम संस्करण) परिचय, पृष्ठ संख्या १०।

प्रथम संस्करण में 'प्रसाद' जी ने लिखा है, 'प्रधान पात्रों में केवल प्रेमानंद ही एक कल्पित पात्र है।'[७] द्वितीय संस्करण की भूमिका में 'प्रसाद' जी ने लिखा है, 'पात्रों में प्रेमानंद और महापिंगल आदि दो-एक कल्पित है, जो मुख्य काल के विरुद्ध नहीं।'[८]

प्रेमानंद और महापिंगल, दोनों ही काल्पनिक चरित्र हैं। यह बात अवश्य है कि दोनों ही चरित्र 'प्रसाद' जी की नाटकीय प्रतिभा एवं कौशल के कारण सजीव हो गये हैं। प्रथम संस्करण में सिर्फ प्रेमानंद को ही काल्पनिक पात्र माना गया था। 'राजतरंगिणी' में अन्य पात्रों का विवरण मिलता है किंतु उक्त पात्रों का कहीं उल्लेख नहीं हुआ। कुछ प्रमुख पात्रों का विवरण 'राजतरंगिणी' के निम्नलिखित छंदों में मिलता है :

विशाख एक ब्राह्मण था -

कदाचित्तस्य धूराध्वक्लान्तो मध्यन्दिने युवा।
छायार्थी तत्पर : कच्चं विशाखाख्योऽविशद्द्विज: ।।२०४।।[९]

नर ('प्रसाद' जी के 'विशाख' का नरदेव) काश्मीर का किंनर राजा था -

किंनरापरनामाऽथ किंनरैरीतिविक्रम: ।
विभीषणस्य पुत्रोऽभून्नर नामा नराधिप: ।।१६७ ।।[१०]

इरावती और चंद्रलेखा का उल्लेख, जो सुश्रवा नाग की पुत्री थीं -

पिता विद्याधरेन्द्राय प्रदातुं परिकल्पिता ।
इरावत्यग्रजैषा च चन्द्रलेखा यवीयसी ।।२१८।।[११]

८- विशाख (द्वितीय संस्करण) परिचय, पृष्ठ ४।

९- राजतरंगिणी - कल्हण (प्रथम भाग, तरंग १); पृष्ठ संख्या २४।
(संपा०) विश्व बंधु।

१०- राजतरंगिणी- ,, ,, ,, पृष्ठ संख्या २४।

११- राजतरंगिणी- ,, ,, ,, पृष्ठ संख्या २६।

रमण्या (विशाख की रमणी) का उल्लेख -

स्वसा सुश्रवसो नागी रमण्याख्याऽद्रिगह्वरात् ।
पाषाणकायऽश्मराशीन्समादाय तदा ऽह यवौ ।।२६३।।[१२]

इन प्रमुख पात्रों के उल्लेख तो मिल जाते हैं किंतु ' प्रेमानंद ' और ' महापिंगल ' का नाम ' राजतरंगिणी ' में नहीं मिलता । इस कारण से परिवर्तित के अतिरिक्त महापिंगल को भी काल्पनिक चरित्र माना ।

प्रथम संस्करण की भूमिका में ' प्रसाद ' जी ने हास्य के विषय में , अभिनय के विषय में विचार व्यक्त किये हैं, वे महत्वपूर्ण हैं किंतु ये कथन परिवर्तित ' विशाख ' की भूमिका में नहीं रखे गए । इन वाक्यों को बाद में होना चाहिए था क्योंकि इनका, नाटक की कथा से सीधा संबंध है । इन विचारों को देखना कदाचित् आवश्यक होगा ।

" यहाँ और एक शब्द " कामिक " (हास्य) के बारे में लिखना है । वह यह कि यह मनोरंजनी वृत्ति का विकास है । ------ अंग्रेजी (Blandess) का अनुकरण हमें नहीं रुचता, हमारी जातीयता ज्यों ज्यों सुरुचिपूर्ण होगी वैसे वैसे इसका शुद्ध मनोरंजनकारी विनोदपूर्ण और व्यंग का विकास होगा । ---- आजकल पारसी रंगमंच वाले एक स्वतंत्र कथा गढ़कर दो तीन दृश्य में फिर नाटक में जगह-जगह उसे भर देते हैं, जिससे कभी कभी ऐसा हो जाता है कि अतीव दुखद दृश्य के बाद ही एक फूहड़ हँसी का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है, जिससे जो कुछ रस बना रहता है वह लुप्त होकर एक वीभत्स रसाभास उत्पन्न कर देता है । रस का परिपाक पूर्णरूप से होने नहीं पाता और मूल कथा के रस को बार बार कल्पित करके दर्शकों को देखना पड़ता है । अंत में, नाटक देख लेने पर एक उत्सव या तमाशा का दृश्य ही आँखों में रह जाता है । शिक्षा का आदर्श का ध्यान भी नहीं रह जाता । इसलिए हम ऐसे ' कामिक ' के विरुद्ध हैं । "[१३]

इस कथन से स्पष्ट है कि ' प्रसाद ' जी नाटक में फूहड़ हास्य के प्रयोग के सर्वथा विरुद्ध थे । इसी कारण से ' विशाख ' एवं उनके अन्य परवर्ती

१२- राजतरंगिणी (प्रथम भाग) पृष्ठ संख्या ३० ।

१३- विशाख (प्रथम संस्करण) परिचय, पृष्ठ संख्या १०-११।

नाटकों में शिष्ट हास्य का समावेश हुआ ।

अभिनय के संबंध में 'प्रसाद' जी की धारणा है, " रही बात अभिनय की । आजकल के पारसी रंगमंचों के अनुकूल में नाटक कहाँ तक उपयुक्त होंगे इसे मैं नहीं कह सकता । क्योंकि उनका आदर्श केवल मनोरंजन है । हाँ जातीय आदर्शों से स्थापित यदि कोई रंगमंच , जहाँ कि चमक दमक से विशेष ध्यान पात्रों के अभिनय पर आदर्श के विकास पर रखा जाता हो, कोई सम्मति, अपनी अभिनय में अड़चन पड़ने की दे तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये सर्वथा प्रस्तुत हूँ । और ऐसी त्रुटियाँ संशोधित की जाने की आशा रखती हैं ।"[१४]

प्रथम और द्वितीय संस्करण की भूमिका को देखने पर ज्ञात होता है कि इसमें (भूमिका) एक-आध स्थलों पर संशोधन भी किये गये हैं । प्रथम संस्करण की भूमिका का निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य है :

" प्राचीन इतिहास की जैसी कमी है वह पाठकों से छिपी नहीं है ।"[१५]

बाद में यह वाक्य इस प्रकार मिलता है :

" भारत के प्राचीन इतिहास की जैसी कमी है वह पाठकों से छिपी नहीं है ।"[१६]

उक्त वाक्य में 'भारत के' जोड़ दिया गया । नाटककार का अभिप्राय भारत के इतिहास से है किंतु प्रथम संस्करण की भूमिका में यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि लेखक किस देश के इतिहास के विषय में कह रहा है । 'भारत के' जोड़ देने से लेखक का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है ।

प्रथम और द्वितीय संस्करण में अंक और दृश्य की संख्या समान है । नाटक के अंतर्गत अनेक संशोधन एवं परिवर्तन हुए हैं ।

प्रथम संस्करण के आरंभ में 'प्रसाद' जी ने दृश्य-संकेत निम्नलिखित शब्दों में किया है :

१४- विशाख (प्रथम संस्करण) परिचय,पृष्ठ संख्या ११ ।
१५- विशाख (प्रथम संस्करण) परिचय,पृष्ठ संख्या १ ।
१६- विशाख (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १ ।

(शिलाखंड पर बैठा हुआ पथिक विशाख) [१७]

द्वितीय संस्करण में भी उक्त दृश्य-संकेत इसी रूप में मिलता है ।

तृतीय संस्करण में उक्त दृश्य-संकेत इन शब्दों में दिया गया है -

(शिला-खंड पर बैठा हुआ स्नातक विशाख) [१८]

तृतीय संस्करण में " पथिक विशाख " के स्थान पर " स्नातक विशाख " का प्रयोग किया गया । " स्नातक " शब्द से विशाख के विषय में पाठक को, जानकारी प्राप्त हो जाती है कि वह अध्ययन पूरा करके लौट रहा है । उसके इस तथ्य (स्नातक होने को) को प्रकट कर देने से नाटक की कोई हानि नहीं हुई । यदि इसे उद्घाटित करने से नाटक के कौतूहल में व्यवधान पड़ता तो वह अवश्य हानिकर होता, किंतु इसे गोपनीय रखने से और बाद में प्रकट करने से कोई विशिष्टता नहीं आती ।

प्रथम संस्करण में विशाख के स्वगत कथन का एक अंश है :

" कैशोरे ! जब से तेरा साथ छूटा तब से केवल असंतोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को घोंसला बना डाला ।" [१९]

द्वितीय संस्करण में यह कथन निम्नलिखित रूप में मिलता है :

" शैशव ! जब से तेरा साथ छूटा तब से असंतोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को घोंसला बना डाला ।" [२०]

यहाँ " कैशोरे " के स्थान पर " शैशव " का प्रयोग किया गया और प्रथम संस्करण में उपस्थित " केवल " शब्द को हटा दिया गया । " कैशोरे " शब्द से

१७-(क) विशाख(प्रथम संस्करण) प्रथम अंक , दृश्य प्रथम,पृष्ठ संख्या १ ।
 (ख) विशाख(द्वितीय संस्करण), प्रथम अंक, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या १ ।
१८- विशाख (तृतीय संस्करण) प्रथम अंक,दृश्य प्रथम,पृष्ठ संख्या १ ।
१९- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या २ ।
२०- विशाख (द्वितीय संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या २ ।

' किशोरावस्था ' को संबोधित किया गया था । साथ ही इस अवस्था को असंतोष, अतृप्ति, अटूट अभिलाषाओं से मुक्त बताया गया । इस तथ्य के विपरीत किशोरावस्था में चिंता, व्यथा, अतृप्ति, क्षोभ आदि अनिवार्य रूप से विद्यमान रहते हैं । इन्हीं प्रवृत्तियोंको ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी० स्टैनली हाल ने कहा है कि किशोरावस्था तूफान और परेशानी की अवस्था (Age of storm and stress) है । इस कारण से ' प्रसाद ' जी को कैशोर ' संबोधन हटाना पड़ा । यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि ' शैशव ' के स्थान पर ' बाल्यावस्था ' को क्यों नहीं संबोधित किया गया । ' बाल्यावस्था ' भी चिंताओं से पूर्णत: मुक्त नहीं होती । बालक को पढ़ाई-लिखाई आदि की थोड़ी-बहुत चिंता होने लगती है । इसके विपरीत ' शैशवावस्था ' चिंताओं से पूर्णरूपेण मुक्त होती है । शिशु का काम, खाना, खेलना और सोना रहता है ।

' बाद के संस्करण में ' केवल ' शब्द हटाने से कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा ।

प्रथम संस्करण में विशाख सुश्रवा नाग की कन्या इरावती से कहता है :

' उन बीती बातों को सोंच कर हृदय को दुखी न बनाओ ।
अपना शुभ नाम सुनाओ ।'-२१

बाद में ' सोंच ' (अशुद्ध) के स्थान पर सोच (शुद्ध) का प्रयोग किया गया । साथ ही ' सुनाओ ' के स्थान पर ' बताओ ' का प्रयोग किया गया । यहाँ 'सुनाओ' शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित था, क्योंकि नाम कोई गीत तो है नहीं जो (गाकर) सुनाया जाये । ' बताओ ' शब्द से उक्त दोष दूर हो गया ।

प्रथम संस्करण में महंत का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है -

' ऐसा खेल किसी का भी नहीं है किंतु हाँ जानवरों से बढ़कर

२१- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या ३ ।

उन लोगों से इसकी रक्षा होनी चाहिये जो दो पैर के गदहे हैं।[२२]

बाद में "गदहे" के स्थान पर "पशु" शब्द का प्रयोग किया गया है। "गदहे" शब्द से मात्रा अशोभन हो गई थी। "पशु" शब्द के प्रयोग से यह दोष दूर हो गया।

महापिंगल का विशाख के प्रति कथन है :

"तो क्या तुमने यह कोई डेरा समझ रखा है?"[२३]

बाद के संस्करण में "डेरा" शब्द के स्थान पर "नाट्य-गृह" कर दिया गया। उक्त कथन के पूर्व विशाख का कथन है (महापिंगल के प्रति) :

"मेरा मन गाना सुनना चाहता है।"

गाना गाने का स्थान "डेरा" नहीं है बल्कि उसका स्थान, कुछ सीमा तक, नाट्य-गृह में है, इसीलिए "डेरा" के स्थान पर "नाट्य-गृह" कर दिया गया।

प्रथम संस्करण में नरदेव का मंत्री के प्रति कथन है :

"------ अभी उस ब्राह्मण की बातों का अनुशीलन किया जाये, और गुप्त रीति से।"[२४]

परिवर्तित संस्करण में "का अनुशीलन" के स्थान पर "की खोज" शब्द प्रयुक्त किया गया है। विशाख, नरदेव को, कानीर विहार के महंत की काली करतूतों के विषय में बतलाता है। फलस्वरूप नरदेव मंत्री को वास्तविक स्थिति ज्ञात करने का आदेश देता है। इस प्रसंग को देखते हुए "खोज" शब्द का प्रयोग सार्थक प्रतीत होता है।

२२- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या ६।
२३- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य द्वितीय, पृष्ठ संख्या ११।
२४- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, तृतीय दृश्य, पृष्ठ संख्या १८।

प्रथम संस्करण के कुछ कथोपकथनों को बाद के संस्करण में संक्षिप्त कर दिया गया । इस संदर्भ में प्रेमानंद का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है :

" रमणी ! अग्नि में घी न डालो । स्त्रियों का साहस विख्यात है ? समझ से काम लो ।"[२५]

बाद के संस्करण में उक्त वाक्य इस रूप में मिलता है :

" रमणी ! अग्नि में घी न डालो । समझ से काम लो ।"[२६]

" स्त्रियों का साहस विख्यात है ? यह वाक्य बाद में हटा दिया गया । प्रेमानंद रमणी को समझाता है कि वह नागों को विद्रोह के लिए न प्रोत्साहित करे । प्रेमानंद के इस प्रवचन में उक्त वाक्य कोई अर्थ नहीं रखता वरन् विरोधाभास ही उत्पन्न करता है । अत: इसे बाद में हटा दिया गया ।

इस प्रसंग में तरला का भिक्षु के प्रति कथन है :

" (मन में) क्या यह सोना बनाना जानते हैं । सुना तो है कि ऐसे महात्मा लोग जानते हैं, क्या ही अच्छा होता । फिसल गया तो जाय । गहने । हाय रे ।(प्रकट) " भगवन् , फिर क्यों नहीं दया करते । यह दुखिया भी सुखी होकर आपका गुणगान करेगी ।"[२७]

बाद के संस्करण में संक्षिप्त रूप में उक्त कथन मिलता है :

" (स्वगत)- क्या यह सोना बनाना जानते हैं ?
(प्रकट) - भगवन्, फिर क्यों नहीं दया करते ।
यह दुखिया भी सुखी होकर आपका गुण-गान करेगी ।[२८]

स्पष्ट है कि संक्षिप्त रूप में कथन ज्यादा सरल एवं सशक्त हो

२५- विशाख (प्रथम संस्करण) तृतीय अंक ,द्वितीय दृश्य,पृष्ठ संख्या ६३ ।
२६- विशाख (द्वितीय संस्करण) तृतीय अंक, द्वितीय दृश्य,पृष्ठ संख्या ६७ ।
२७- विशाख (प्रथम संस्करण) तृतीय अंक, दृश्य तीन,पृष्ठ संख्या ६७ ।
२८- विशाख (द्वितीय संस्करण) तृतीय अंक, दृश्य तीन,पृष्ठ संख्या ७० ।

गया । जिन वाक्यों को घटाया गया है, वे अनावश्यक विस्तार करते थे ।

प्रथम संस्करण के कुछ वाक्यों में, बाद के संस्करण में, क्रम-परिवर्तन हो गया । उदाहरणार्थ, इरावती का विशाख के प्रति निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है :

" ------ किसी समय इस रमण्याटवी प्रदेश का मेरा पिता स्वामी था, ---------- ।"[२६]

बाद के संस्करण में यह कथन निम्नलिखित रूप में मिलता है :

" ------- किसी समय मेरा पिता इस रमण्याटवी प्रदेश का स्वामी था , --------- ।"[३०]

प्रथम संस्करण के वाक्य में शब्दों का क्रम उतना सफल नहीं हो पाया, जितना कि द्वितीय संस्करण में है । पूर्व रूप के वाक्य में प्रवाह अवरुद्ध-सा हो जाता था, यह दोष शब्दों के क्रम-परिवर्तन से दूर हो गया ।

प्रथम संस्करण में पद्यात्मक सम्वाद कई स्थलों पर उपलब्ध होते हैं । इस प्रवृत्ति का कारण यह था कि उस समय उन पर ("प्रसाद" जी पर) पारसीक कंपनियों द्वारा खेले जानेवाले नाटकों का कुछ न कुछ प्रभाव विद्यमान था । यह प्रवृत्ति बाद के संस्करण में प्रथम संस्करण की अपेक्षा कम मिलती है ।

प्रथम संस्करण के कुछ पद्यात्मक सम्वादों जिन्हें बाद के संस्करण में हटा दिया गया, का दिग्दर्शन आवश्यक है :

महापिंगल का विशाख के प्रति ~~कथन~~ है -" सुंदरी और साधु का सरस प्रयोग है, साधु वर्ण विन्यास है । सु० सा० साहित्य का सुंदर समावेश है । फिर तुम्हारे से अरसिक उसमें गड़बड़ क्यों मचाया चाहते हैं - [illegible]

२६- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या ३ ।
३०- विशाख (द्वितीय संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या ४ ।

सुंदरी यदि साधु हो तो क्या सुखद संसार हो ।
वे गृहस्थों से कहीं बढ़कर महान उदार हो ।।
स्वर्ग में फिर क्या धरा हो विश्व सफल विहार हो ।
सब सुखी हो प्रेम में सब का परम उपकार हो ।।[31]

उक्त गद्यांश बाद के संस्करण में मिलता है किंतु यहाँ पर 'मचाया' के स्थान पर 'मचाना' हो गया । 'मचाना' शब्द व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध है । पद्यात्मक सम्वाद बाद में हटा दिया गया ।

चंद्रलेखा का, राजा नरदेव के प्रति पद्यात्मक कथन है :

'नरनाथ ! अबला को न निर्बल ही समझना ठीक है ।
यदि है सती वह सत्य ही तो फिर सबल निर्भीक है ।।
वे अग्नि है वह जो स्वयं ईंधन बिना है जल रहा ।
उनसे बचाना-है वहाँ पर तेज पुंज उबला रहा ।।

उक्त पद्यात्मक कथन बाद के संस्करण में नहीं मिलता ।

प्रेमानंद का राजा नरदेव के प्रति पद्यात्मक कथन है :

प्रेमानंद - 'राजन !
सत्ता मिली तुम्हें नहीं दुष्कर्म के लिये ।
है राष्ट्र का प्रसार क्या अधर्म्म के लिये ?
आदर्श नहीं और भी अन्याय के बनो ।
तुम हो नियत किये गये सुर कर्म्म के लिये ।।[32]

बाद के संस्करण में उक्त पद्यात्मक कथन हटा दिया गया और इसके स्थान पर संक्षिप्त सा कथन रख दिया गया जो नाट्य-कला की दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत होता है । यह कथन इस प्रकार है :

प्रेमानंद - 'राजन् ! सुविचार कीजिए ।'[33]

३१- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य द्वितीय, पृष्ठ १३-१४ ।

३२- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक तृतीय, दृश्य चतुर्थ, पृष्ठ संख्या ७३. ।

३३- विशाख (द्वितीय संस्करण) अंक तृतीय, दृश्य चतुर्थ, पृष्ठ संख्या ७६ ।

'विशाख' के द्वितीय संस्करण में भी गीतों की अधिकता है किंतु प्रथम संस्करण में गीतों की संख्या द्वितीय संस्करण की अपेक्षा अधिक है। प्रथम संस्करण के कुछ लंबे गीतों को बाद के संस्करण में स्थान नहीं प्राप्त हुआ। इन गीतों को बाद में न रखने से 'विशाख' पर लदा हुआ गीतों का बोझ कुछ कम हो गया। प्रथम संस्करण में रमणी का निम्नलिखित गीत है जो बाद के संस्करण में नहीं मिलता :

'तुम्हारा मधुर मनोहर मान
कहीं हो जाय नहीं अभिमान,
ध्यान इसका भी रखना चाहिये ।।
सुखद सुखदायक जो परिहास,
करावे कहीं न वह उपहास,
बात ऐसी ही कहनी चाहिये ।।
रूठना क्षण भर अच्छी बात,
क्रोध का चले न उसमें घात ;
सरलता से जो चाहे करना ।।
चुराना मन है तुम्हें अमूल्य ;
न हो कुछ खट पट का बाहुल्य
पैर बस समझ समझकर धरना ।।
बात करने में है आनंद,
बढ़ाने में केवल है द्वंद ;
कलह में स्वाद नहीं कुछ मिलता ।।
स्नेह तो स्निग्ध रहे दिनरात ;
हलाई हुई, गई वह बात ;
सुमन सुरभित समीर से खिलता ।।
कल्पना का कमनीय विकास,
मधुरिमा का मधुमय हास
हृदय में धीरे धीरे भरना ।।

चंद्रमुख शुचि हो विगत कलंक,
कुमुद शोभित हो न रहे पंक,
शरद सरसी की समता करना ।[३४]

उक्त गीत का छट जाना इस दृष्टि से हितकर हुआ कि यह गीत हृदय की किसी गंभीर एवं गहन अनुभूतियों को अभिव्यक्त नहीं करता है । यह तो सिर्फ उपदेश कथन प्रतीत होता है ।

प्रथम संस्करण के एक गीत में संशोधन व संशोधन हुआ है । उदाहरण द्रष्टव्य है :

" हृदय के इस कोने से

स्वर उठता है कोमल मध्यम, कभी तीव्र होकर भी पंचम, मन के रोने से । --"[३५]

बाद के संस्करण में " इस कोने " के स्थान पर " कोने कोने " का प्रयोग किया गया । हृदय के " इस " कोने से, कहने से कोई अर्थ सामने नहीं आता था क्योंकि " इस " शब्द का प्रयोग यह सोचने पर बाध्य करता है कि कवि हृदय के किस कोने की बात कर रहा है । " कोने कोने " के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि मन के दुख ने नरदेव के संपूर्ण हृदय अर्थात् उसके तन और मन पर अधिकार कर लिया है ।

उक्त गीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ बाद में हटा दी गयी हैं :

" चपला मेघों से भी निकली, तरल संग, पर फेरी सिकली,
जल के पोने से ।।
व्याकुलता अब ऐसी क्यों है, हृदय बीच अस्थिरता क्यों है
चंचल होने से ।"[३६]

३४- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक द्वितीय, दृश्य प्रथम, पृष्ठ संख्या ३३-३४।

३५- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक तृतीय, दृश्य पांच, पृष्ठ सं० ७६ ।

३६- विशाख (प्रथम संस्करण) अंक तृतीय, दृश्य पांच, पृष्ठ संख्या ७७ ।

उक्त अंश विशेष महत्व के नहीं थे, अतः नाटककार ने उक्त गीत की लंबाई कम करने के लिए उन अंशों को हटा दिया ।

प्रथम संस्करण में उक्त गीत तृतीय अंक के पांचवें दृश्य के मध्य में नरदेव द्वारा गाया गया था किंतु बाद में इसे नाटक के बिल्कुल अंत में नरदेव गाता है । यह परिवर्तन इसलिए किया गया कि 'प्रसाद' जी हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत से प्रभावित थे । यह प्रभाव अजातशत्रु, स्कंदगुप्त आदि नाटकों में भी दृष्टिगत होता है । 'विशाख' में भी नरदेव का हृदय - परिवर्तन होता है और वह प्रार्थना करता है । इस घटना को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए, नरदेव की प्रार्थना को नाटक के बिल्कुल अंत में स्थान दिया गया है ।

प्रथम संस्करण में, नाटक के अंत में 'नेपथ्य से' गाया गया गीत, बाद के संस्करण में उसी अंक (तृतीय) के पांचवें दृश्य में चंद्रलेखा की बहिन इरावती द्वारा गाया गया है, जो स्थिति के अनुकूल प्रतीत होता है ।

प्रथम संस्करण में नाटक की समाप्ति 'शम्' से हुई है । बाद के संस्करण में इसका प्रयोग नहीं मिलता ।

अ जा त श त्रु

अजातशत्रु

"अजातशत्रु" "प्रसाद" जी के ऐतिहासिक नाटकों की शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९२२ ई० (वि० १९७९) में प्रकाशित हुआ। यह "हिंदी-ग्रंथ-भंडार कार्यालय, बनारस सिटी" से प्रकाशित हुआ। इसमें तीन अंक हैं प्रथम अंक में नौ दृश्य, द्वितीय अंक में दस दृश्य और तृतीय अंक में नौ दृश्य हैं। पृष्ठ संख्या एक सौ बयालिस है। इसका दूसरा संस्करण सन् १९२६ (संवत १९८३) में "साहित्य-सदन, चिरगाँव झाँसी" से प्रकाशित हुआ। इसकी पृष्ठ संख्या ५९ है। इसके द्वितीय संस्करण में भी तीन अंक हैं; दृश्यों की संख्या में भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया। यह संस्करण, प्रथम संस्करण से इस दृष्टि से भिन्न है कि जहाँ प्रथम संस्करण में पद्यात्मक सम्वादों की भरमार है, वहीं द्वितीय संस्करण में नाटककार ने उक्त दोष से बचने की चेष्टा की है। तृतीय संस्करण को देखने से विदित होता है कि नाटककार ने उक्त दोष से स्वयं को प्रायः मुक्त कर लिया है। यह बात नहीं है कि परिवर्तित संस्करण इस दोष से पूर्णतः मुक्त है। पद्यात्मक सम्वाद इसमें हैं किंतु प्रथम संस्करण की तुलना में अत्यंत कम। प्रथम संस्करण में इस प्रकार के सम्वादों के बाहुल्य का कारण यह है कि उस समय उनके नाटकों पर पारसी कंपनी द्वारा खेले जानेवाले नाटकों का प्रभाव अत्यधिक था। साथ ही, नाटककार की नाट्यकला भी बहुत अधिक विकसित नहीं थी।

प्रथम संस्करण के कुछ पद्यात्मक सम्वादों को या तो गद्य में रूपांतरित कर दिया है या उन्हें हटा दिया है या उनमें कुछ संशोधन कर दिया है।

प्रथम संस्करण के आरंभ में पद्मावती अजातशत्रु से मृगया न करने के लिए कहती है -

मानवी है सृष्टि करुणा के लिये,
स्नेह का सद्भाव भरने के लिये।

हिंस्त्र निष्ठुरता निदर्शन मैंढ़िये,
विश्व में है यही करने के लिये ।[1]

द्वितीय संस्करण में गद्य रूप में, उक्त अंश इस रूप में मिलता है -

" मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के
निदर्शन हिंस्त्र पशु जगत में क्या कम है ? "[2]

यह गद्य रूप में ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है । इस संबंध में एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है - पद्मावती छलना से कहती है -

सुकोमल मृत्तिका है से[3] भरी सुथरी सुई क्यारी ।
न उसमें कंकड़ी काँटे सरलता से सिंची सारी ।।
लगा दो जो कि चाहो, है तुम्हारे हाथ में सब कुछ ।
कँटीली फाड़ियाँ चाहे सुमनवाली लता प्यारी ।।[4]

द्वितीय संस्करण में इसका गद्य रूप निम्नलिखित है -

" ------- बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें
कटीली फाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे ।"[5]

इस कथन को देखने से विदित होता है कि पद्य का संपूर्ण भाव, गद्य रूप में भी अक्षुण्ण रहा और अधिक सहज रूप में ।

प्रथम संस्करण के कई पद्यात्मक सम्वादों को बाद के संस्करण में हटा दिया गया । एक स्थल पर गौतम (बुद्ध) का बिंबसार के प्रति कथन है और उसके बाद ही उनका (गौतम का) निम्नलिखित पद्यात्मक कथन है :

१- अजातशत्रु (प्रथम संस्करण) प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ संख्या २-३ ।
२- अजातशत्रु (द्वितीय संस्करण); प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ संख्या २६ ।
३- अजातशत्रु के प्रथम संस्करण के " शुद्धि-पत्र " में " है से " के स्थान पर " से है " है ।
४- अजातशत्रु (प्रथम संस्करण) प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ ४ ।
५- अजातशत्रु (द्वितीय संस्करण) प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ संख्या २७ ।

' गोधूली के राग पटल में स्नेहांचल फहराती है ।
स्निग्ध उषा के शुभ्र गगन में हास विलास दिखाती है ।।
मुग्ध मधुर बालक के मुख पर चंद्रकांति बरसाती है ।
निर्निमेष ताराओं से वह ओस बूंद भर लाती है ।।
क्रूर हृदय पत्थर को भी जो कभी न कभी गलाती है ।।
निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से ।
मानव का महत्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से ।।'[६]

द्वितीय संस्करण में भी यह पद्यात्मक कथन मिलता है किंतु तृतीय संस्करण में उक्त पद्यात्मक कथन को हटा दिया गया है । यह नाटक के हित में हुआ । यह अत्यंत अस्वाभाविक प्रतीत होता था क्योंकि गौतम का गद्य रूप में जो कथन है, वह भी बहुत छोटा नहीं है और इसके बाद सात पंक्तियों का पद्यात्मक कथन है ।

' प्रसाद ' जी ने कहीं-कहीं पद्यात्मक सम्वादों में संशोधन भी किये हैं । उदाहरणार्थ श्यामा का निम्नलिखित पद्यात्मक कथन प्रस्तुत है :

' तुम्हारी मोहनी छवि पर निछावर प्राण हैं मेरे ।
अखिल भूलोक बलिहारी मधुर मुसुक्यान पर तेरे ।।'[७]

द्वितीय संस्करण में यह कथन इस रूप में है :

' तुम्हारी मोहनी छवि पर निछावर प्राण हैं मेरे ।
अखिल भूलोक बलिहारी मधुर मृदुहास पर तेरे ।।'[८]

यहाँ ' मुसुक्यान ' के स्थान पर ' मृदु हास ' कर दिया गया है । ' मुसुक्यान ' शब्द अशुद्ध होने के कारण हटा दिया गया । शुद्ध शब्द है-

---

६-(क) अजातशत्रु (प्रथम संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य द्वितीय, पृष्ठ संख्या १० ।
(ख) अजातशत्रु (द्वितीय संस्करण) अंक प्रथम, दृश्य द्वितीय, पृष्ठ संख्या ३३ ।
७- अजातशत्रु (प्रथम संस्करण) अंक द्वितीय, दृश्य चतुर्थ, पृष्ठ संख्या ७१ ।
८- अजातशत्रु (द्वितीय संस्करण) अंक द्वितीय, दृश्य चतुर्थ, पृष्ठ संख्या ६० ।

मुस्कान । मुस्कान और हास में वस्तुत: कोई अधिक भेद नहीं है । संभवत: 'प्रसाद' जी ने मुस्कान की अतिशय मधुरता व्यक्त करने के लिये 'मृदु' विशेषण भी युक्त कर दिया है ।

प्रथम संस्करण और बाद के संस्करणों को देखने पर एक बात यह दिखाई देती है कि प्रथम संस्करण में लंबे-लंबे वाक्यों का आधिक्य है । परिवर्तित संस्करण में ऐसे वाक्य, प्रथम संस्करण की तुलना में कम मिलते हैं । प्रथम संस्करण के कुछ लंबे वाक्यों को, परिवर्तित संस्करण में दो भागों में विभक्त कर दिया गया है । उदाहरणार्थ प्रथम संस्करण में कारायण का शक्तिमति के प्रति एक लंबा कथन है[६] जो कि लगभग डेढ़ पृष्ठों से अधिक तक चला गया है । वह इस कथन के माध्यम से शक्तिमती को समझाता है कि वह (शक्तिमती) स्वार्थी मनुष्यों की कोटि में न मिल जाये । द्वितीय संस्करण में कारायण का उक्त कथन इसी रूप में मिलता है । तृतीय संस्करण में इसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया है । इस रूप में यह पहले की अपेक्षा स्वाभाविक दिखायी देता है ।

कारायण के इसी कथन में तनिक काट-छांट भी की गयी है - 'अहंकार की पाशववृत्ति जिसका परिणाम कठोरता है, स्त्रियों के तो क्या मनुष्य के लिए भी नहीं है । यदि कोई व्यक्तिगत स्वार्थ से उसे स्वीकार करता है तो वह केवल उसका स्वतंत्रता का बहाना मात्र है । वह अनुकरणीय नहीं है वह नियम का अपवाद है । उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा ।'[१०]

तृतीय संस्करण में इस वाक्य का संशोधित रूप निम्नलिखित है -

> 'क्रूरता अनुकरणीय नहीं है, उसे नारी-जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा ।'

६- अजातशत्रु (प्रथम संस्करण) ; तृतीय अंक, चतुर्थ दृश्य, पृष्ठ संख्या ११६-१२०।

१०- अजातशत्रु (द्वितीय संस्करण), अंक तृतीय, दृश्य चतुर्थ, पृष्ठ १३७-१३८ ।

इससे स्पष्ट होता है कि नाटककार बराबर अपने नाटकों के दोषों को दूर करने के प्रयत्न में रत था । किसी-किसी वाक्य में संशोधन भी किये गये हैं - 'सूर्य अपना काम जलता बलता हुआ करता है और चंद्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है । क्या ह उन दोनों से बदला हो सकता है ?'[११] द्वितीय संस्करण में उक्त कथन इसी रूप में है किंतु बाद के संस्करण में 'बदला' के स्थान पर 'परिवर्तन' कर दिया गया है । 'बदला' शब्द यहाँ अटपटा-सा लगता है, क्योंकि यह परिवर्तन के अर्थ में प्राय: प्रयुक्त नहीं होता । दूसरे, यह शब्द भ्रामक भी है क्योंकि 'बदला' का एक अर्थ प्रतिशोध भी होता है । 'परिवर्तन' शब्द कथन के अभिप्राय को स्पष्ट कर देता है ।

प्रथम संस्करण का एक वाक्य है :

'मनुष्य क्रूरता है तो स्त्री करुणा' ।[१२]

यह वाक्य इसी रूप में द्वितीय संस्करण में भी विद्यमान है, किंतु बाद के संस्करण में 'मनुष्य' के स्थान पर 'पुरुष' कर दिया गया । यह उचित है क्योंकि स्त्री-पुरुष का युग्म प्राय: प्रयुक्त किया जाता है ।

इन परिवर्तनों के अतिरिक्त एक परिवर्तन यह भी दिखाई देता है कि प्रथम संस्करण के कई गीतों को हटा दिया गया है या उन्हें संक्षिप्त कर दिया गया है ।

प्रथम संस्करण में नाटक की समाप्ति पर 'इतिशम्' लिखा हुआ है । द्वितीय संस्करण में भी अंत में 'इतिशम्' लिखा है । बाद के संस्करण में यह नहीं मिलता ।

हम देखते हैं कि नाटककार अपनी नाट्यकला को विकसित करने की चेष्टा कर रहा था । वह पारसी कंपनी द्वारा खेले जानेवाले नाटकों के प्रभाव से अपने को मुक्त कर रहा था । साथ ही, वह नाट्य-रूढ़ियों को त्यागने का उपक्रम भी कर रहा था ।

११-(क) अजातशत्रु(प्रथम संस्करण),तृतीय अंक,चतुर्थ दृश्य,पृष्ठ संख्या ११६ ।
(ख) अजातशत्रु(द्वितीय संस्करण); तृतीय अंक,चतुर्थ दृश्य,पृष्ठ संख्या १३७ ।

१२-(क) अजातशत्रु (प्रथम संस्करण); तृतीय अंक, चतुर्थ दृश्य,पृष्ठ संख्या १२० ।
(ख) अजातशत्रु (द्वितीय संस्करण); तृतीय अंक,चतुर्थ दृश्य,पृष्ठ संख्या १३७ ।

चंद्रगुप्त

चंद्रगुप्त

(क) सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और 'चंद्रगुप्त' की भूमिका

'प्रसाद' जी कृत 'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' नामक निबंध स्वतंत्र पुस्तकाकार में 'साहित्य सुमन माला सीरीज़' में प्रकाशित हुआ था। 'साहित्य सुमन माला सीरीज़' की प्रथम पुस्तक यही थी। यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में भी संगृहीत हुआ। इस पुस्तक में इसके प्रकाशित होने का वर्ष नहीं दिया गया। 'चंद्रगुप्त' (प्र०सं०) नाटक में प्रकाशक का वक्तव्य है, 'सं० १९६६ में 'प्रसाद' जी ने अपनी यह विवेचना 'चंद्रगुप्त मौर्य' के नाम से प्रकाशित की थी, जो प्रस्तुत नाटक के आरंभ में सम्मिलित है।'

प्रकाशक के वक्तव्य से ज्ञात होता है कि उक्त पुस्तक सन् १९०९ ई० (सं० १९६६) में प्रकाशित हुई थी। यही पुस्तक 'चंद्रगुप्त' (नाटक) जो संवत् १९८८ (सन् १९३१) में प्रकाशित हुआ था, की भूमिका के रूप में रख दी गयी। 'चंद्रगुप्त' नाटक की भूमिका के अंत में भी सं० १९६६ लिखा है।

'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' नामक निबंध ८० पृष्ठों का है। 'चंद्रगुप्त' नाटक की भूमिका के रूप में यह संशोधित एवं संक्षिप्त रूप में मिलता है। पुस्तकाकार में निबंध का विस्तृत हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। भूमिका के रूप में यदि उसे संक्षिप्त न किया गया होता, तो अस्वाभाविक प्रतीत होता।

स्वतंत्र रूप में निबंध, निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित है -

(१) उपक्रम (२) वंश और समय (३) मगध राज्य
(४) बाल्य जीवन (५) सिकंदर और चंद्रगुप्त पंजाब में
(६) चंद्रगुप्त का शासन (७) चाणक्य।

भूमिका के रूप में यह निम्नलिखित शीर्षकों में उपलब्ध है -

(१) मौर्य-वंश (२) पिप्पली कानन के मौर्य (३) चंद्रगुप्त का बाल्य-जीवन (४) सिकंदर और चंद्रगुप्त पंजाब में (५) मगध में चंद्रगुप्त (६) विजय (७) चंद्रगुप्त का शासन (८) चंद्रगुप्त के समय का भारतवर्ष (९) चाणक्य ।

इन शीर्षकों में किया गया विभाजन पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्टता लिये हुए है । 'उपक्रम' के स्थान पर 'मौर्य वंश' कर दिया गया 'वंश और समय' के स्थान पर 'पिप्पली कानन के मौर्य' हो गया । 'चंद्रगुप्त का शासन' शीर्षक बाद में तीन शीर्षकों में मिलता है - विजय, चंद्रगुप्त का शासन और चंद्रगुप्त के समय का भारतवर्ष ।

'मगध राज्य' शीर्षक से कुछ वाक्य, जो चंद्रगुप्त के बाल्य-जीवन से संबंधित हैं, बाद में 'चंद्रगुप्त का बाल्य-जीवन' शीर्षक के अंतर्गत आ गये । इसी प्रकार 'वंश और समय' शीर्षक का कुछ अंश 'चंद्रगुप्त का बाल्य-जीवन' शीर्षक में आ गया ।

अनेक वाक्यों को बाद में हटा दिया गया । कुछ हटाये गये अंश दो-तीन पृष्ठों के हैं और कुछ छोटे हैं । यह ध्यातव्य है कि जिन अंशों को बाद में स्थान नहीं प्राप्त हुआ वे प्रायः विषयांतर करते हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

> 'अब यह देखना चाहिए कि यह पूर्णवर्म्मा कौन था ?
> अंतिम मौर्य्य राजा बृहद्रथ का नामांतर तो नहीं था ?
> जो हो, हमें इससे यहाँ कुछ लाभ नहीं ।'[१]

इस कथन में लेखक पहले पूर्णवर्म्मा का विवरण देना चाहता है किंतु बाद में इस प्रसंग को निरर्थक मानकर छोड़ देता है ।

कुछ तथ्यों में बाद में परिवर्तन किया गया है -

१- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य्य (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १० ।

" -------- पार्श्वनाथ हुए और उनका समय ईसा से ७०० वर्ष पहले माना जाता है ।"[2]

'चंद्रगुप्त' (नाटक) के प्रथम संस्करण की भूमिका में उक्त वाक्य इसी रूप में मिलता है किंतु द्वितीय संस्करण की भूमिका में यह निम्नलिखित रूप में मिलता है -

" -------- पार्श्वनाथ हुए, जिनका समय ईसा से ८०० वर्ष पहले माना जाता है ।"

'सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य' और 'चंद्रगुप्त' (प्र०सं०) की भूमिका में यह तथ्य दिया गया है -

" -------- यह संधि ३११ बी०सी० में हुई ।"[3]

बाद में यह इस रूप में है -

" यह संधि ३१६ ई० पू० में हुई । "

स्वतंत्र रूप में निबन्ध की भाषा कहीं-कहीं अव्यवस्थित सी हो गई थी -

" इतिहास लेखकों ने जो कि ग्रीक हुए हैं ----- ।"[4]

बाद में भाषा स्वाभाविक हो गई -

" ग्रीक इतिहास लेखकों ने अपनी भ्रमपूर्ण लेखनी से इस चंद्रगुप्त के बारे में कुछ तुच्छ बातें लिख दी हैं ----- ।"[5]

इन परिवर्तनों के अतिरिक्त बाद में कुछ नये वाक्यों को भी जोड़ा गया है ।

२- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ६ ।

३- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ५८ ।

४- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ७ ।

५- सम्राट चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ४ ।

(ब) कल्याणी-परिणय और चंद्रगुप्त

'कल्याणी-परिणय' नामक एकांकी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, जुलाई १६१२, संख्या १ में प्रकाशित हुआ था। उक्त पत्रिका में यह एकांकी पृष्ठ ४४ से ५६ तक है। इस एकांकी में ६ दृश्य हैं। यह 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संगृहीत हुआ। 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में 'कल्याणी परिणय' के आरंभ होने से पूर्व नांदी है जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित 'कल्याणी-परिणय' में नहीं था -

प्रथम, परम आदर्श विश्व का जो कि पुरातन।
अनुकरणों का मुख्य लक्ष्य जो वस्तु सनातन।।
उन्नतता का पूर्ण रूप आनंद भरा घन।
शक्ति सुधा से सिंचा, शांति से सदा हरा बन।।
परा प्रकृति से परे नहीं जो खिला मिला है।
सम्मानस के बीच कमल सा नित्य खिला है।।
चेतन की चित्कला विश्व में जिसकी सत्ता।
जिसकी ओत-प्रोत व्योम में पूर्ण महत्ता।।
स्वानुभूति का साक्षी है जड़ का चेतन।
विश्व शरीरी परमात्मा प्रभुता का केतन।।
अणु अणु में जो स्वभाववश गति विधि निर्धारक।
नित्य नवल संबंध सृष्टि का अद्भुतकारक।।
जो विज्ञानाकार से ज्ञानों का आधार है।
नमस्कार सदनंत को ऐसे बारंबार है।।

सन् १६३१ (संवत् १६८८) में 'चंद्रगुप्त' नाटक 'भारती-भंडार, काशी' से प्रकाशित हुआ। इसकी पृष्ठ संख्या (भूमिका का छोड़कर) २१८ है। यह 'कल्याणी-परिणय' का पूरी तरह से परिवर्तित और परिवर्द्धित

न्य है ।' चंद्रगुप्त' नाटक में चार अंक हैं । प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य, द्वितीय अंक में ग्यारह दृश्य, तृतीय अंक में नौ दृश्य और चतुर्थ अंक में सोलह दृश्य हैं । स्पष्ट है कि' कल्याणी-परिणय' की तुलना में यह नाटक काफ़ी बड़ा है । इस कारण, नाटक के कथानक में भी अंतर उपस्थित हो जाना स्वाभाविक है ।

कथानक संबंधी परिवर्तन

' कल्याणी-परिणय ' में दो घटनायें प्रधान है । चंद्रगुप्त का सिल्यूकस को पराजित करना और उसकी पुत्री कार्नेलिया से चंद्रगुप्त का परिणय होना - इन्हीं दो घटनाओं को घटित कराने के लिए चाणक्य चंद्रगुप्त को निर्देश देता है और उसका सहायक होता है ।' चंद्रगुप्त ' नाटक का कथानक विस्तृत है । इसमें घटनाओं का बाहुल्य है ।' कल्याणी-परिणय ' में चंद्रगुप्त का सिल्यूकस से विरोध रहता है किंतु' चंद्रगुप्त' में बाह्य विरोध के अतिरिक्त आंतरिक विरोध एवं द्वंद्व का भी चित्रण हुआ है । यह विरोध राजनीति एवं प्रेम, दोनों के संदर्भ में दृष्टिगत होता है । चंद्रगुप्त का नंद से विरोध, चाणक्य का नंद से विरोध, नंद का पर्वतेश्वर से विरोध, शकटार का नंद से विरोध - ये विरोध राजनीति जन्य हैं । शकटार की कन्या, सुवासिनी, के प्रति नंद, राक्षस और कुछ-कुछ चाणक्य आकर्षित होता है ।' चंद्रगुप्त के प्रति कल्याणी (मगध देश की राजकुमारी) मालविका (सिंधु-देश की राजकुमारी) और कार्नेलिया (सिल्यूकस की पुत्री) आकर्षित होती है । अलका (तक्षशिला की राजकुमारी) सिंहरण और पर्वतेश्वर के आकर्षण का केंद्र बनती है । इस स्थिति में नाटक का संघर्ष-तत्त्व अत्यंत प्रभावशाली बन गया ।' कल्याणी-परिणय' में बाह्य संघर्ष अत्यल्प मात्रा में विद्यमान था । इसके अतिरिक्त इसमें (कल्याणी-परिणय में) कौतूहल-तत्त्व नहीं के बराबर था, जबकि' चंद्रगुप्त' में यह विद्यमान है - प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में आंभीक, सिंहरण पर कुचक्र में में लिप्त होने का आरोप लगाता है । वह सिंहरण को बंदी घोषित करता है, किंतु सिंहरण कहता है :' मालव कदापि बंदी नहीं हो सकता ।' इस पर आंभीक तलवार निकालता है । उसी समय चंद्रगुप्त प्रवेश करता है और आंभीक

से कहता है - " ठीक है, प्रत्येक निरपराध आर्य स्वतंत्र है, उसे कोई बंदी नहीं बना सकता है । यह क्या राजकुमार ! खड्ग को कोश में स्थान नहीं है क्या ?" सिंहरण (व्यंग्य से) वह तो स्वर्ण से भर गया है ।" सिंहरण के, आंभीक के प्रति, उक्त व्यंग्यात्मक कथन से पाठक के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आंभीक ने किससे धन लिया और क्यों लिया ?

" कल्याणी-परिणय " के अंत में चंद्रगुप्त और कार्नेलिया का परिणय होता है । चंद्रगुप्त नाटक के अंत में भी यही दृश्य है । " चित्राधार" के प्रथम संस्करण में संकलित " कल्याणी-परिणय " के आरंभ का नांदी " चंद्रगुप्त" में नहीं रखा गया ।

एकांकी के अंत में नर्तकी गण " भरत-वाक्य " के रूप में गान करती है :

सखी सब ही विधि मंगल आज ।
सब मिलके आनंद मनावैं अचल रहै यह राज ।

१- अपने भुजबल से किया, अर्जित नव साम्राज ।
रहै श्री सम्राट का , अविचल ही यह राज ।। स०

२- गौरव लक्ष्मी ग्रीस की , कार्नेलिन सी बाम ।
कल्याणी को देखकर , पूर्ण हुआ मन काम ।। स०
विजयलक्ष्मी से आलिंगित देखो हैं महाराज । स०

३- जिसके बल के सिंधु में, गज सम थके अराति ।
चंद्रगुप्त भुज से सदा, सकल रहै सब भाँति ।। स०
रहै आनंदित राज समाज,
आवैं गावैं विमल कीर्ति सब देवांगना समाज ।। स०

४- जिसकी प्रतिभा नदी में, शत्रु-विघ्न-द्रुम-मूल ।
उन्मूलित हो, हो क्याति, विष्णुगुप्त अनुकूल ।।
सुखी हो भारत वित्त समाज,
भारत की यह कथा विजयिनी रहै सदा सिरताज

सखी सबही विधि-मंगल आज ।
जय महाराज चंद्रगुप्त की जय ।। [६]

उक्त भरत-वाक्य 'चंद्रगुप्त' में नहीं मिलता । इस प्रकार की नाट्य रूढ़ियाँ (नांदीपाठ, भरत-वाक्य आदि) प्राय: 'प्रसाद' जी के प्रारंभिक एकांकियों और नाटकों में मिलती थीं, कालांतर में इनका प्रयोग नहीं किया गया । इस विषय में डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव का कथन है - "प्रकर्ष-युग की रचना होने के कारण इसमें अस्वाभाविक लगनेवाली वे नाट्य-रूढ़ियाँ स्वत: समाप्त हो गयी हैं, जो लघु रूपक में थीं - जैसे नांदीपाठ, भरत वाक्य, पद्य-संवाद आदि ।"[७]

पात्र एवं चरित्र-चित्रण

चंद्रगुप्त, चाणक्य, सिल्यूकस, कार्नेलिया 'कल्याणी-परिणय' के मुख्य पात्र हैं । अन्य पात्रों में इंदुशर्मा, सैनिक, चर, चंडविक्रम, तरलिका और एलिस हैं । इस प्रकार इसमें पात्रों की संख्या सीमित है । 'चंद्रगुप्त' में अठारह पुरुष पात्र हैं और आठ स्त्री पात्र हैं । नंद, राक्षस, पर्वतेश्वर, गांधार-नरेश, शकटार, मौर्य-सेनापति , आंभीक, सिंहरण, सिकंदर, दांडायन और अलका, सुवासिनी, कल्याणी, मालविका, मौर्य-पत्नी आदि चरित्र 'कल्याणी-परिणय' में उपस्थित नहीं थे । वहाँ इन पात्रों के लिये अवकाश भी नहीं था क्योंकि वहाँ घटना-वैविध्य और संघर्ष तत्त्व विद्यमान नहीं था ।

'कल्याणी-परिणय' में कार्नेलिया और कल्याणी एक ही हैं । कार्नेलिया, अंतिम दृश्य में कल्याणी बन जाती है । 'चंद्रगुप्त' में कार्नेलिया और कल्याणी भिन्न चरित्र हैं । कार्नेलिया सिल्यूकस की पुत्री है और कल्याणी नंद की पुत्री है ।

'कल्याणी-परिणय' में पात्रों का चरित्र-चित्रण साधारण ढंग से चित्रित हुआ । सभी चरित्रों के विषय में संकेत मात्र मिलता है । चाणक्य,

---

६- नागरी प्रचारिणी पत्रिका,भाग १७,जुलाई,१९१२,पृष्ठ सं० ५६ ।

७- प्रसाद के नाटक : रचना और प्रक्रिया (चंद्रगुप्त), पृष्ठ संख्या १९९ ।

चंद्रगुप्त आदि चरित्र विकास की अपेक्षा करते हैं । 'चंद्रगुप्त' में इन चरित्रों के अतिरिक्त अन्य चरित्रों को भी विकसित होने के अवसर प्राप्त हुए हैं । चाणक्य को कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ रूप में तो चित्रित किया ही गया है, साथ ही, उसके हृदय में कहीं छिपे हुए प्रेम का चित्रण भी किया गया । मस्तिष्क और हृदय, दोनों पक्षों के चित्रण से, चाणक्य का चरित्र अपेक्षया मानवीय और स्वाभाविक बन गया ।

चंद्रगुप्त के चरित्र में भी थोड़ा परिवर्तन किया गया । वह चाणक्य की आज्ञा को स्वीकार कर उसके आदेशानुसार कार्य करता जाता है किंतु वह एक सीमा तक ही उसका हस्तक्षेप स्वीकार करता है । चाणक्य, चंद्रगुप्त के माता पिता को निर्वासित कर देता है । इस पर चंद्रगुप्त चाणक्य से रुष्ट हो जाता है -

> ' यह अक्षुण्ण अधिकार आप कैसे भोग रहे हैं ? केवल साम्राज्य का नहीं, देखता हूँ, आप मेरे कुटुंब का भी नियंत्रण अपने हाथों में रखना चाहते हैं ।'[८]

' कल्याणी-परिणय' में चंद्रगुप्त चाणक्य के हाथ का मोहरा प्रतीत होता है जिसे जहाँ चाहा वहाँ बैठा दिया । 'चंद्रगुप्त' में वह (चंद्रगुप्त) अभिमान शून्य नहीं है ।

चंद्रगुप्त' में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल रूप से दिखाई देती है । तक्षशिला की राजकुमारी अलका राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है । देश द्रोही आंभीक (अलका का भाई) के समक्ष अलका का चरित्र और भी उज्ज्वल हो जाता है ।

कार्नेलिया के चरित्र-चित्रण में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । चंद्रगुप्त' में वह भारत-भूमि की पवित्रता एवं सौंदर्य से अभिभूत दिखाई देती है ।

८- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) ; चतुर्थ अंक ; पाँचवाँ दृश्य, पृष्ठ संख्या १७१ ।

सम्वाद- योजना

' कल्याणी-परिणय' में सम्वाद दोषयुक्त हैं। पहिला दोष यह है कि वे अत्यंत दीर्घ हैं। इस संबंध में प्रथम दृश्य के आरंभ में चाणक्य का कथन उल्लेखनीय है। उसमें सर्वप्रथम गद्य में एक वाक्य है। तदुपरांत दस पंक्तियों का पद्य है। पुनः गद्य में कथन है। इसके समाप्त होते ही दो पंक्तियों का पद्यात्मक कथन है। इसके पश्चात् एक छोटा-सा गद्य में कथन है। इसके बाद अठारह पंक्तियों का पद्य है। सरलता से उसकी दीर्घता का अनुमान किया जा सकता है। उसी दृश्य में इतना ही विस्तृत एक अन्य कथन है और वह भी चाणक्य द्वारा कहा गया है।

' चंद्रगुप्त' में अपेक्षाया छोटे सम्वाद हैं। कुछ स्थलों पर ये कुछ दीर्घ हुए हैं किंतु इतने बड़े नाटक में दो-चार बड़े सम्वादों का होना दोष नहीं माना जा सकता है।

' कल्याणी - परिणय ' में पद्यात्मक सम्वादों का बाहुल्य है। एक स्थल पर[६] चंडविक्रम चंद्रगुप्त से पद्य में ही बात करता है। इसी तरह के पद्यात्मक सम्वाद कार्नेलिया और सिल्यूकस के मध्य हुए वार्तालाप में परिलक्षित होते हैं -

सिल्यूकस - ' कुमारी ! संध्या का दृश्य तो यों ही मनोहर होता है। देखो

अस्त हुए दिन-नाथ पीत कर कांतिको।
सरल संध्या लगी फैलाने शांतिको।।
सांसारिक कलनाद शान्त होने लगा।
विधु का विमल विनोद व्यक्त होने लगा।।

कार्नेलिया - ' क्रमशः तारापुंज प्रकट होने लगे
सुधा चंद के बीज विमल बोने लगे।

६- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, जुलाई, १६१२, दूसरा दृश्य, पृष्ठ संख्या ४७।

उज्ज्वल तारे शांत गगन भी नील है ।

प्रकृति ढाल में जुड़े हीर के कील हैं ।।

एलिस - " किंतु कुमारी समय का भी क्या ही प्रभाव है ।

(परज)

हुआ काकल क्लांत, कोकिला चुप पड़ी ।

लगी बुलाने उसे आँख जिससे लड़ी ।।

मलयानिल भी मधुर कथा का भार ले ।

चला मचलता हुआ सुमन का सार ले ।।"[१०]

स्पष्ट है कि इस प्रकार के सम्वाद कितने अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं । प्रत्येक दृश्य में चार-पांच पद्यमय कथन प्राप्त हो ही जाते हैं । 'चंद्रगुप्त' में पद्यात्मक संवाद का बिलकुल प्रयोग नहीं हुआ ।

'चंद्रगुप्त' में संवादों के माध्यम से पात्रों के अंतर्द्वंद्व का सफल चित्रण हुआ है । इन सम्वादों के माध्यम से पात्र की विरोधी मन:स्थितियों का ज्ञान होता है और इनके माध्यम से पात्रों के व्यक्तित्व का बोध होता है । इस संदर्भ में चाणक्य का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है -

" ---------- जकड़ी हुई लौह- शृंखले ! एक बार तू फूलों की माला बन जा और मैं मदोन्मत्त विलासी के समान तेरी सुंदरता को भंगकर दूँ । क्या रोने लगूँ ? इस निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से बिलबिलाकर दया की भिक्षा मांगू ! माँगू कि मुझे भोजन के लिए एक मुट्ठी चने जो देते हो, न दो, एक बार स्वतंत्र कर दो । नहीं, चाणक्य ! ऐसा न करना । नहीं तो तू भी साधारण-सी ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाने वाली एक बामी रह जायगा ।"[११]

'कल्याणी-परिणय' में स्वगत कथन तो मिलते हैं किंतु

१०- नागरी प्रचारिणी पत्रिका - भाग १७, जुलाई, १६१२ ।
चौथा दृश्य ; पृष्ठ संख्या ५० ।

११- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) प्रथम अंक, सातवां दृश्य, पृष्ठ संख्या ३५।

पात्रों के अंतर में उत्पन्न होने वाले द्वंद का चित्रण वहाँ नहीं हुआ ।

गीत - योजना

'कल्याणी-परिणय' में गीतों की संख्या अधिक नहीं थी । उसके तीन गीत 'चंद्रगुप्त' में आ गये हैं । इनमें कुछ परिवर्तन हुए हैं और इनी का प्रसंग पहले से भिन्न है । 'कल्याणी-परिणय' में कार्नेलिया द्वारा गाया गया निम्नलिखित गीत उल्लेखनीय है -

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला ।
पड़ता है पतंग सा इसमें, मन का ढंग निराला ।
सांध्य गगन सी रागमयी यह बड़ी कड़ी है हाला ।।
कांटे छिपे गुथे हैं इसमें है फूलों की माला ।
चुभने पर नहिं अलग हृदय है, मन होगा मतवाला ।।
कैसी ।।[१२]

'चंद्रगुप्त' में यह गीत उस समय, नैपथ्य से, गाया जाता है जबकि राक्षस चाणक्य के सुवासिनी के प्रति प्रेम के विषय में सोचता रहता है । 'कल्याणी-परिणय' में कार्नेलिया चंद्रगुप्त के विषय में विचार करती हुई उक्त गीत को गाती है । यह गीत 'चंद्रगुप्त' में इस रूप में है :-

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला ?
पड़ता है पतंग-सा इसमें मन होकर मतवाला
सांध्य गगन-सी रागमयी यह बड़ी तीव्र है हाला,
लौह श्रृंखला है न कहीं क्या यह फूलों की माला ?[१३]

'मन का ढंग निराला' के स्थान पर 'मन होकर मतवाला' हो गया । पूर्व रूप में दोनों अलग-अलग कथन थे जबकि बाद में दोनों को एक में

१२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, जुलाई, १९१२, सातवाँ दृश्य, पृ०सं० ५२ ।

१३- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) चतुर्थ अंक, द्वितीय दृश्य, पृष्ठ सं० १५६।

कर दिया । पूर्व रूप में उपमान (पतंग) तो स्पष्ट है किंतु उपमेय का ज्ञान नहीं होता है । बाद में " मन" को उपमेय के रूप में वर्णित किया गया । दूसरे "कड़ी है हाला" के स्थान पर " तीव्र है हाला" कर दिया गया ।" तीव्र" शब्द मदिरा की तेज़ी को व्यक्त करने में अपेक्षाया अधिक समर्थ है । अंतिम दो पंक्तियों में किया गया परिवर्तन उसी भाव को दूसरे शब्दों में व्यक्त करता है ।

" कल्याणी-परिणय" के अन्य दो गीत जो परिवर्तित होकर" चंद्रगुप्त" में आ गये हैं, निम्नलिखित हैं -

जैसी मधुर मुरलिया श्याम की

+ + + +

पाया जिसमें प्रेम-रस, सौरभ और सोहाग,

ये दोनों गीत क्रमश: कार्नेलिया और तरलिका द्वारा गाये जाते हैं ।" चंद्रगुप्त" में ये दोनों गीत (परिवर्तित रूप में) मालविका द्वारा गाये जाते हैं ।

" कल्याणी-परिणय " में चंद्रगुप्त की सेना भारत-भूमि की जय जयकार करती हुई गाती है -

जय जय जय आदि भूमि,
जय जय जय भारत भूमि ।
जय जय जन्म भूमि,
जननी हम प्यारी ।। जय ----- ।
निखिल विश्व गुरु समान,
जिसका गौरव महान,
प्रति कण में निहित ज्ञान,
प्राण देह धारी ।। जय जय ---- ।
हम सब हैं महाप्राण,
भारत के शिरस्त्राण ।

अस्थिर धनु धारी ।। जय ---- ।
हिमगिरि सम धीर रहें,
सिंधु सम गंभीर रहें ।
प्रतिपद में वीर रहें,
जननी व्रतधारी ।। जय ---- ।[१४]

"चंद्रगुप्त" में उक्त गीत को स्थान नहीं प्राप्त हुआ किंतु एक अन्य राष्ट्र भक्ति का गीत आ गया जो भाव एवं भाषा, दोनों ही दृष्टि से उच्च कोटि का है । यह गीत अलका और तक्षशिला के नागरिक समवेत स्वर में गाते हैं-

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती -
- - - - - -

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नये गीत भी आये हैं - कार्नेलिया द्वारा गाया गया गीत -

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।
- - - - - - - - - - - - - - - -

सुवासिनी द्वारा गाया गया गीत -

आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा ![१५]
- - - - - - - - - - - - - - - - - -

ये गीत उत्कृष्ट हैं, इसमें कोई संदेह नहीं किंतु इनका आधिक्य अवश्य खटकता है ।

अभिनेय तत्व

"चंद्रगुप्त" नाटक में पात्रों के आधिक्य, गीतों के

१४- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, जुलाई, १९१२, तीसरा दृश्य, पृष्ठ सं०४८-४९
१५- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) अंक चतुर्थ, छठाँ दृश्य, पृष्ठ सं० १७९ ।

बाहुल्य, दृश्यों का शीघ्र परिवर्तन, अत्यंत कठिनाई उत्पन्न करनेवाले दृश्यों का होना आदि ऐसी बातें हैं जिससे नाटक के अभिनेय तत्त्व को ज़बरदस्त धक्का पहुँचा है। प्राय: सभी विद्वान 'चंद्रगुप्त' को अभिनय की दृष्टि से अच्छा नहीं बताते -

> डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित - ' अंक-दृश्य-विभाजन कुछ असंतुलित है, अत: अभिनेयता की दृष्टि से उसकी उपयोगिता कुछ ह्रस्व हो गई है ।'[१६]

> डॉ० हरदेव बाहरी - ' अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक सब से अधिक असफल है ।'[१७]

' कल्याणी-परिणय' एकांकी अत्यंत छोटा होने के कारण और उसमें घटनाओं की कमी होने के कारण, सरलता से अभिनीत किया जा सकता है । यह बात अवश्य होगी कि उसका प्रभाव, दर्शकों पर कुछ भी न पड़ेगा ।

' चंद्रगुप्त ' के प्रथम संस्करण में चार अंक हैं । प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य , द्वितीय अंक में ग्यारह दृश्य , तृतीय अंक में नौ दृश्य और चतुर्थ अंक में सोलह दृश्य हैं ।' चंद्रगुप्त' के प्रथम संस्करण के कुछ दृश्यों में, द्वितीय संस्करण में, संशोधन किये गये हैं । फलस्वरूप द्वितीय संस्करण के प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य, द्वितीय अंक में दस दृश्य, तृतीय अंक में नौ दृश्य और चतुर्थ अंक में चौदह दृश्य हो गये ।

प्रथम संस्करण के द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य को, बाद के संस्करण में, प्रथम दृश्य के अंतर्गत कर दिया गया । इसी प्रकार प्रथम संस्करण के चतुर्थ अंक के बारहवें दृश्य को, बाद के संस्करण में, प्रथम दृश्य के अंतर्गत कर दिया गया । साथ ही, प्रथम संस्करण के चतुर्थ अंक के आठवें दृश्य को, बाद के संस्करण में , छठें दृश्य के साथ जोड़ दिया गया ।

इन संशोधनों से दृश्य कम हो गये और उन दृश्यों का आकार भी अपेक्षाया बढ़ गया । रंगमंच की दृष्टि से यह सुविधाजनक हो गया ; अन्यथा उन छोटे- छोटे दृश्यों के लिए अलग से मंच-व्यवस्था करनी पड़ती ।

१६- प्रसाद का गद्य , पृष्ठ संख्या ९९ ।
१७- प्रसाद साहित्य कोश, पृष्ठ संख्या १३१ ।

i) " चंद्रगुप्त " और " अभिनय चंद्रगुप्त "

" चंद्रगुप्त ", " प्रसाद " जी की सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्य कृति है । जब किसी नाटक की चर्चा होती है, तो उसकी अभिनेयता की बात अवश्य की जाती है । यह स्वाभाविक भी है क्योंकि नाटक की सफलता का श्रेय बहुत कुछ उसके अभिनेय तत्व को प्राप्त होता है । " चंद्रगुप्त " को इस दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि उसमें अभिनय संबंधी अनेक त्रुटियाँ हैं । इन त्रुटियों के रहते 'चंद्रगुप्त' का मंचन असंभव-सा प्रतीत होता है । " प्रसाद " जी के जीवन-काल में ही " चंद्रगुप्त " के मंचन का आयोजन किया गया । उसमें सम्वाद कहीं-कहीं काफी बड़े हैं, कहीं गीत विस्तृत हैं, कुछ दृश्यों को मंच पर दिखाना संभव नहीं था । " प्रसाद " जी को इन बातों से अवगत कराया गया, तो वे उसमें संशोधन करने के लिए तैयार हो गये जैसा कि " अभिनय चंद्रगुप्त " के " परिचय " से ज्ञात होता है, " संशोधन और कुछ परिवर्तन अनिवार्य होने पर आचार्य सीताराम चतुर्वेदी (राजाश) के शब्दों में - " प्रसाद जी से जब नाटक की लम्बाई का प्रश्न छेड़ा गया तो उन्होंने अत्यंत तत्परता के साथ एक ही दिन बैठकर उसका संशोधन कर डाला । हम लोगों के कहने पर उन्होंने कुछ दृश्यों में भी रंगमंच की सुविधा के अनुसार हेर-फेर किये थे ।"[१८]

संशोधन के फलस्वरूप " चंद्रगुप्त " का मंचन हो गया । " प्रसाद " जी ने " चंद्रगुप्त " में अभिनय संबंधी जो संशोधन किए, उनसे विदित होता है कि वे दुराग्रही नहीं थे । इस संबंध में " विशाख " के प्रथम संस्करण की भूमिका में वह पहले ही कह चुके थे —" रही बात अभिनय की । आजकल के पारसी रंगमंचों के अनुकूल ये नाटक कहाँ तक उपयुक्त होंगे इसे मैं नहीं कह सकता । क्योंकि उनका आदर्श केवल मनोरंजन है । हाँ जातीय आदर्शों से स्थापित यदि कोई रंगमंच, जहाँ

१८- अभिनय चंद्रगुप्त - संपादक श्री रत्नशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या ११ ।

कि जनक दशक से विशेष ध्यान पात्रों के अभिनय पर आदर्श के किनारे पर रखा जाता हो, कोई सम्मति , अपने अभिनय में अड़चन पड़ने की दे तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये सर्वथा प्रस्तुत हूँ और ऐसी त्रुटियाँ संशोधित की जाने की आशा रखती हैं ।"[१६]

"चंद्रगुप्त" का संशोधित रूप" अभिनय चंद्रगुप्त" सन् १६७७ई० में" हिंदी प्रचारक संस्थान , पिशाच मोचन, वाराणसी" से प्रकाशित हुआ । इस संस्करण की पृष्ठ संख्या १२७ है ।" चंद्रगुप्त" और" अभिनय चंद्रगुप्त" की तुलना करने पर कई परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं ।

" चंद्रगुप्त" के प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य, द्वितीय अंक में ग्यारह दृश्य, तृतीय अंक में नौ दृश्य और चतुर्थ अंक में सोलह दृश्य हैं ।" अभिनय चंद्रगुप्त"[२०] के प्रथम अंक में ग्यारह दृश्य , द्वितीय अंक में सात दृश्य, तृतीय अंक में आठ दृश्य और चतुर्थ अंक में ग्यारह दृश्य हैं । स्पष्ट है कि" अभिनय चंद्रगुप्त" में कम दृश्य रखे गये हैं । जिन दृश्यों को घटाया गया, उनसे नाटक की कथा में या उसकी ऐतिहासिकता में कोई दोष नहीं उत्पन्न हुआ । उदाहरणार्थ" चंद्रगुप्त' के द्वितीय अंक का एक दृश्य (मालवों के स्कंधावार में युद्ध-परिषद्) उल्लेखनीय है । इस दृश्य को" अभिनय चंद्रगुप्त" में स्थान नहीं मिला । यह दृश्य विशेष महत्व का नहीं । साथ ही, इसमें चाणक्य का एक काफ़ी लम्बा कथन है । इस कारण से नाटक की अभिनेयता कुछ कम हो जाती है ।'अभिनय चंद्रगुप्त" में मालवों की होनेवाली युद्ध परिषद् की सूचना मात्र चाणक्य देता है -

" अच्छा देखा जायगा । संभवतः स्कंधावार में मालवों की युद्ध परिषद् होगी । अत्यंत सावधानी से काम करना होगा । मालवों को मिलाने का पूरा प्रयत्न तो हमने कर लिया है ।"[२१]

" चंद्रगुप्त" में कुछ दृश्य ऐसे हैं जिनका मंच पर प्रस्तुतिकरण

१६- विशाख (प्रथम संस्करण) ; परिचय , पृष्ठ संख्या ११ ।

२०-" अभिनय चंद्रगुप्त" के प्रथम अंक में, मुद्रण की त्रुटि के कारण, दस के बाद, बारहवाँ दृश्य आ जाता है ।

२१- अभिनय चंद्रगुप्त - द्वितीय अंक,पृष्ठ संख्या ४६ ।

अत्यंत मुश्किल है । चीता के आखेट का दृश्य और मंच पर कमी का गिराना, इन दो दृश्यों का प्रस्तुतिकरण असंभव सा है । ' अभिनय चंद्रगुप्त ' में चीते के आखेट का दृश्य हटाकर यह सूचित कर दिया जाता है कि राजा का चीता पींजड़े से निकल भागा है । साथ ही, कमी का गिराना भी नहीं वर्णित हुआ है ।

' चंद्रगुप्त ' में हास्य प्राय: नहीं दिखाई देता । नाटक में हास्य का समावेश , चाहे वह थोड़ा ही हो, आवश्यक होता है । ' चंद्रगुप्त ' ऐतिहासिक नाटक है । प्रेक्षक इस नाटक को देखते हुए एकरसता का अनुभव करने लगता है । हास्य का अभाव होने के कारण दर्शक का मस्तिष्क थक-सा जाता है ' अभिनय चंद्रगुप्त ' में हास्य का समावेश हुआ है । धनदत्त, आजीवक और चंदन - इन पात्रों का अवतरण इसी उद्देश्य से किया गया है । प्रथम अंक के पांचवें दृश्य में हास्य का दर्शन होता है । इस संदर्भ में निम्नलिखित सम्वाद द्रष्टव्य हैं -

धनदत्त : (क्रोध) तुम हंस रहे हो !

आजीवक : तो क्या रोऊँ ?

धनदत्त : अरे, नहीं - नहीं, तुमने छींक तो दिया ही, अब यात्रा के समय रोने भी लगोगे ?

आजीवक : फिर क्या होगा ?

धनदत्त : कहीं राह में कुएँ सूख जायँ । घोड़े-बैल मर जायँ । डाकू घेर लें । आंधी चलने लगे । पानी बरसने लगे । रात को प्रेतों का आक्रमण हो । गाड़ियाँ उलट जायँ ।[२२]

इसी प्रकार, ' अभिनय चंद्रगुप्त ' के द्वितीय अंक के सातवें दृश्य में भी हास्य दिखाई देता है ।

सम्वाद, नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है । लम्बे सम्वाद, नाट्य-कला की दृष्टि से दोष पूर्ण होते हैं । ' चंद्रगुप्त ' में अनेक स्थलों पर लम्बे सम्वाद मिलते हैं । ' अभिनय चंद्रगुप्त ' में अनेक सम्वादों को संक्षिप्त कर दिया गया । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं : ' चंद्रगुप्त ' के प्रथम अंक के तीसरे दृश्य के अंत में चाणक्य का कथन है -

---

२२- अभिनय चंद्रगुप्त, पृष्ठ संख्या १४ ।

चाणक्य : पिता का पता नहीं, झोंपड़ी भी न रह गयी । सुवासिनी अभिनेत्री हो गयी - संभवत: पेट की ज्वाला है । एक साथ दो-दो कुटुंबों का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है । क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था । मगध ! मगध ! सावधान ! इतना अत्याचार! सहना असंभव है । तुझे उलट दूँगा । नया बनाऊँगा, नहीं तो नाश ही करूँगा ! - (ठहरकर) एक बार चलूँ, नंद से कहूँ । नहीं, परंतु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति, वही मिल जाय ; मैं शास्त्र-व्यवसायी न रहूँगा, मैं कृषक बनूँगा । मुझे राष्ट्र की भलाई बुराई से क्या । तो चलूँ । - (देखकर) यह एक लकड़ी का स्तंभ अभी उसी झोंपड़ी का खड़ा है, इसके साथ मेरे बाल्यकाल की सहस्रों भाँवरियाँ लिपटी हुई हैं, जिन पर मेरी चपल मधुर हँसी का आवरण चढ़ा रहता था । शैशव का स्निग्ध स्मृति । विलीन हो जा![२३]

" अभिनय चंद्रगुप्त " में उक्त कथन संशोधित रूप में इस प्रकार है :

चाणक्य : पिता का पता नहीं ; सुवासिनी अभिनेत्री हो गई - संभवत: पेट की ज्वाला है । एक साथ दो-दो कुटुंबों का सर्वनाश और कुसुमपुर फूलों की सेज में ऊँघ रहा है । क्या इसीलिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था ? मगध ! इतना अत्याचार सहना असंभव है । (ठहरकर) एक बार चलूँ, नंद से कहूँ । नहीं परन्तु मेरी भूमि, मेरी वृत्ति, वही मिल जाय ; मैं शासन व्यवसायी न रहूँगा, मैं कृषक बनूँगा। मुझे राष्ट्र की भलाई बुराई से क्या ! तो चलूँ ।[२४]

संक्षिप्त रूप में उक्त कथन अपेक्षाया अधिक स्वाभाविक हो गया ।

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है :

२३- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) प्रथम अंक,दृश्य तृतीय, पृष्ठ संख्या १७ ।

२४- अभिनय चंद्रगुप्त-प्रथम अंक, तृतीय दृश्य,पृष्ठ संख्या १० ।

फिलिप्स : (प्रवेश करके) - कैसा मधुर गीत है । कार्नेलिया, तुमने तो भारतीय संगीत पर पूरा अधिकार कर लिया है, चाहे हम लोगों को भारत पर अधिकार करने में अभी विलंब हो ।[२५]

" अभिनय चंद्रगुप्त" में उक्त कथन इस रूप में है -

फिलिप्स : (प्रवेश करके) कैसा मधुर गीत है। कार्नेलिया ![२६]

प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में चाणक्य का कथन है :

चाणक्य : (प्रवेश करके) फोंपड़ी ही तो थी, पिताजी यहीं मुझे गोद में बिठाकर राज-मंदिर का सुख अनुभव करते थे । ब्राह्मण थे, ऋत और अमृत जीविका से संतुष्ट थे, पर वे भी न रहे । कहाँ गये ? कोई नहीं जानता । मुझे भी कोई नहीं पहचानता । यही राष्ट्र है,मगध का उन्नतिशील साम्राज्य कहाँ है ? प्रजा की खोज है किसे । वृद्ध दरिद्र ब्राह्मण कहीं ठोकरें खाता होगा या कहीं मर गया होगा ।[२७]

" अभिनय चंद्रगुप्त" में उक्त कथन संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है -

चाणक्य : (प्रवेश करके) फोंपड़ी ही तो थी, पिता जी यहीं मुझे गोद में बिठाकर राज-मंदिर का सुख-भोग अनुभव करते थे । ब्राह्मण थे, ऋत और अमृत जीविका से संतुष्ट थे, पर वे भी न रहे । कहाँ गये ? कोई नहीं जानता, मुझे भी कोई नहीं पहचानता ।[२८]

२५- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) द्वितीय अंक,प्रथम दृश्य,पृष्ठ संख्या ५७-५८ ।
२६- अभिनय चंद्रगुप्त, द्वितीय अंक, प्रथम दृश्य,पृष्ठ संख्या ३६ ।
२७-चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) प्रथम अंक,तृतीय दृश्य,पृष्ठ संख्या १५ ।
२८-`अभिनय चंद्रगुप्त` - प्रथम अंक, तृतीय दृश्य, पृष्ठ संख्या ६ ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि संक्षेपण की प्रक्रिया में उन्हीं अंशों को घटाया गया, जिससे तथ्य विशेष की हानि नहीं होती थी। इनके संक्षेपण से यदि कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य छूट जाता, तो यह दोष माना जाता। संक्षिप्त रूप में सम्वाद का स्वरूप अपेक्षाया अधिक नाटकोचित बन पड़ा है।

'चंद्रगुप्त' में कई स्थलों पर काफ़ी लम्बे गीत हैं। 'अभिनय चंद्रगुप्त' में कुछ गीतों को संक्षिप्त कर दिया गया। उदाहरण के लिए, 'चंद्रगुप्त' के प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में राक्षस का गीत २६ पंक्तियों का है; 'अभिनय चंद्रगुप्त' में उक्त गीत के आरंभ की ८ पंक्तियाँ ही रखी गयीं -

निकल मत बाहर दुर्बल आह !
लगेगा तुझे हँसी का शीत
शरद नीरद माला के बीच
तड़प ले चपला-सी भयभीत

पड़ रहे पावन प्रेम-फुहार
जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर
सँभाले चल कितनी है दूर
प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर।[२९]

'चंद्रगुप्त' के कुछ गीतों को 'अभिनय चंद्रगुप्त' में बिलकुल ही नहीं रखा गया। उदाहरण के लिए द्वितीय अंक में अलका का निम्नलिखित गीत, बाद में नहीं रखा गया -

बिखरी किरन अलक व्याकुल हो विरस वदन पर चिंता लेख

\+ \+ \+ \+ [३०]

द्वितीय अंक में अलका का निम्नलिखित गीत भी बाद में नहीं रखा गया -

---

२९- अभिनय चंद्रगुप्त, प्रथम अंक, द्वितीय दृश्य, पृष्ठ संख्या ८।
३०- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) द्वितीय अंक, आठवाँ दृश्य, पृष्ठ संख्या ९५।

प्रथम यौवन-मदिरा से मत्त, प्रेम करने की थी परवाह[31]

\+ \+ \+ \+

' अभिनय चंद्रगुप्त ' में अलका एक गीत गाती है जो ' चंद्रगुप्त ' में नहीं था । इसे देखना कदाचित् असंगत न होगा -

हृदय ! तू खोजता किसको छिपा है कौन सा तुझमें
मचलता है, बता क्या दूँ छिपा तुझसे न कुछ मुझमें ।

हृदय ! तू है बना जलनिधि,
लहरियाँ खेलती तुझमें ।
मिला अब कौन-सा नवरत्न
जो पहले न था तुझमें ।[32]

गीतों में संशोधन करने से और कुछ गीतों को निकाल देने से नाटक के अभिनेय तत्व को लाभ पहुँचा । अलका का उक्त गीत, उसके सिंहरण के प्रति प्रेम को व्यक्त करने में सर्वथा समर्थ है ।

' अभिनय चंद्रगुप्त ' में कुछ स्थलों पर ऐसे संकेत कर दिये गये हैं जिनसे पात्रों को अभिनय द्वारा अपनी मानसिक स्थिति का ज्ञान कराने में सहायता मिलती है । उदाहरण के लिए एक प्रसंग का वर्णन आवश्यक है । तृतीय अंक के पांचवें दृश्य में नंद कामुक की-सी चेष्टा करता हुआ सुवासिनी का हाथ पकड़ता है । इस पर सुवासिनी नंद से कहती है कि - महाराज ! मैं अमात्य राक्षस की धरोहर हूँ - सम्राट की भोग्या नहीं बन सकती । इस पर नंद सुवासिनी से कहता है : अमात्य राक्षस इस पृथ्वी पर तुम्हारा प्रणयी होकर नहीं जी सकता । (तब मेरा संदेह ठीक ही था)[33]

३१- चंद्रगुप्त (प्रथम संस्करण) द्वितीय अंक, दृश्य छठा, पृष्ठ संख्या ८६-८७ ।

३२- अभिनय चंद्रगुप्त - अंक द्वितीय, पंचम दृश्य, पृष्ठ संख्या ५० ।

३३- अभिनय चंद्रगुप्त- पृष्ठ संख्या ७५ ।

नंद के इस कथन के अंत में जो संकेत कर दिया गया है, वह 'चंद्रगुप्त' में नहीं है। नंद के इस तरह सोचने से यह घोतित होता है कि वह प्रारंभ से ही सुवासिनी और राक्षस के प्रेम संबंध को लेकर सशंकित है। अभिनय में नंद जब सुवासिनी के कथन को सुनकर कुछ देर विचार करता है, तो दर्शक समझ जाते हैं कि उसे सुवासिनी और राक्षस के प्रेम-संबंध से अत्यधिक ईर्ष्या हो रही है।

छाया

छाया

' छाया ', ' प्रसाद ' जी का प्रथम कहानी-संग्रह है । इसका प्रथम संस्करण सन् १९१२ (संवत् १९६९) में ' साहित्य सुमन माला सीरीज ' के अंतर्गत प्रकाशित हुआ । यह ' साहित्य सुमन माला ' का द्वितीय पुष्प है । इस संस्करण की पृष्ठ संख्या चौहत्तर है । प्रथम संस्करण में निम्नलिखित कहानियाँ हैं -

(१) तानसेन

(२) चंदा

(३) ग्राम

(४) रसिया बालम

(५) मदन मृणालिनी

' छाया ' का द्वितीय संस्करण ' चित्राधार ' के प्रथम संस्करण (सन् १९१८) में संकलित है । ' छाया ' के इस संस्करण कीपृष्ठ संख्या एक सौ चौबीस है । ' चित्राधार ' का प्रथम संस्करण ' हिंदी ग्रंथ भंडार कार्यालय, बनारस सिटी ' से प्रकाशित हुआ । छाया के द्वितीय संस्करण में निम्नलिखित कहानियाँ हैं -

(१) तानसेन

(२) चंदा

(३) ग्राम

(४) रसिया बालम

(५) मदनमृणालिनी

(६) शरणागत

(७) सिकंदर की शपथ

(८) चित्तौर उद्धार

(९) अशोक

(१०) जहाँनारा

(११) गुलाम

प्रथम संस्करण की पाँच कहानियाँ द्वितीय संस्करण में ज्यों की त्यों रखी हैं। जिस प्रकार प्रथम संस्करण के अंत में " इति " छपा है, उसी प्रकार द्वितीय संस्करण में जहाँ " मदनमृणालिनी " कहानी समाप्त हुई, वहाँ भी " इति " अंकित है। प्रथम संस्करण चौहत्तर पृष्ठों का है। द्वितीय संस्करण में भी " मदनमृणालिनी " चौहत्तरवें पृष्ठ पर समाप्त होती है। प्रथम संस्करण के पृष्ठ नौ, ग्यारह, तेरह, पंद्रह पर ऊपर दाहिने तरफ मुद्रण की त्रुटि के कारण " चंदा " के स्थान पर " तानसेन " छप गया। द्वितीय संस्करण के इन्हीं पृष्ठों पर यही त्रुटि मिलती है। इन बातों से प्रमाणित होता है कि " छाया " का प्रथम संस्करण अविकल रूप में " चित्राधार " (प्रथम संस्करण) के अंदर संकलित है। साथ ही, " छाया " के द्वितीय संस्करण में प्रथम संस्करण की पाँच कहानियों के अतिरिक्त छः अन्य कहानियाँ (शरणागत सिकंदर की शपथ, चित्तौर उद्धार, अशोक, जहाँनारा, गुलाम -)आ गयीं। इनमें से " शरणागत " को छोड़कर शेष पाँच कहानियाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी हैं। ये कहानियाँ प्रथम संस्करण की कहानियों से विशेष उत्कृष्ट नहीं हैं। इसका कारण यह है कि बाद में जोड़ी हुई कहानियाँ रचनाकार की प्रौढ़ावस्था की नहीं हैं। इन कहानियों में से कुछ का रचनाकाल सन् १९१२ है और कुछ का सन् १९१४ है। प्रथम संस्करण की कहानियों का रचनाकाल सन् १९१० से १९१२ के मध्य का है।

" छाया " का तृतीय संस्करण सन् १९२९ (संवत् १९८६) में " हिंदी पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय " से प्रकाशित हुआ। इसकी पृष्ठ संख्या एक सौ तिरानवें है। द्वितीय संस्करण की कई कहानियों में, तृतीय संस्करण में संशोधन व परिवर्तन किये गए हैं। साथ ही, द्वितीय संस्करण की कहानियों का क्रम भी, तृतीय संस्करण में परिवर्तन कर दिया गया। तृतीय संस्करण में इस क्रम में कहानियाँ रखी गयी हैं -

(१) तानसेन

(२) चंदा

(३) ग्राम

(४) रसिया बालम

(५) शरणागत

(६) सिकंदर की शपथ

(७) चित्तौर -उद्धार

(८) अशोक

(९) गुलाम

(१०) जहाँनारा

(११) मदन मृणालिनी

द्वितीय संस्करण ("चित्राधार" प्र०सं० में संकलित) की कई कहानियों में, तृतीय संस्करण में, संशोधन व परिवर्तन कर दिये गए । अनेक स्थलों पर शब्द-परिवर्तन किए गए हैं । द्वितीय संस्करण की "तानसेन" शीर्षक कहानी का एक स्थल द्रष्टव्य है -

> " यह छोटा सा सरोवर भी क्या ही सुंदर है, घने आम और जामुन के पेड़ चारों ओर से इसे घेरे हुए हैं ।"[१]

तृतीय संस्करण में " घने " के स्थान पर " सुहावने "[२] का प्रयोग किया गया । इस परिवर्तन से कोई अंतर नहीं आया क्योंकि दोनों शब्द यहाँ उपयुक्त प्रतीत होते हैं ।

इसी संदर्भ में " तानसेन " कहानी का एक वाक्य प्रस्तुत है -

> " संध्या हो चली है । विहंगम - कुल कोमल कलरव करते हुए अपने अपने नीड़ की ओर पलटने लगे हैं ।"[३]

१- छाया (द्वितीय संस्करण)चित्राधार(प्रथम संस्करण)पृष्ठ संख्या १ ।

२- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १ ।

३- छाया (द्वितीय संस्करण) , चित्राधार(प्रथम संस्करण)पृष्ठ संख्या १

तृतीय संस्करण में उक्त वाक्य इस प्रकार है -

" संध्या हो चली है । विहंग-कुल कोमल कलरव करते हुए अपने-अपने नीड़ की ओर लौटने लगे हैं ।"[४]

तृतीय संस्करण में " विहंगम " के स्थान पर " विहंग " तथा " पलटने " के स्थान पर " लौटने " का प्रयोग किया गया । संस्कृत में " विहंगम " का अर्थ " पक्षी " होता है, किंतु हिंदी में " पक्षी " के अर्थ में " विहंग " शब्द अधिक प्रचलित होने के कारण तृतीय संस्करण में " विहंग " शब्द का प्रयोग किया गया । इसी प्रकार " पलटने " का अर्थ " लौटना " होता है किंतु " लौटना " शब्द अधिक प्रचलित होने के कारण तृतीय संस्करण में " लौटने " का प्रयोग किया गया ।

द्वितीय संस्करण की " मदन-मृणालिनी " शीर्षक कहानी का एक वाक्य उल्लेखनीय है -

" मदन उसी घर में कालक्षेप करने लगा ।"[५]

तृतीय संस्करण में उक्त वाक्य इस रूप में मिलता है -

" मदन उसी घर में रहने लगा ।"[६]

तृतीय संस्करण में " कालक्षेप " के स्थान पर " रहने " का प्रयोग किया गया । " कालक्षेप " संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ होता है - रहना, समय व्यतीत करना, दिन काटना । यह शब्द अर्थ की दृष्टि से दोषपूर्ण नहीं था, किंतु इसका प्रचलन हिंदी में बिलकुल नहीं है । अतः इसके स्थान पर " रहने " का प्रयोग किया गया ।

द्वितीय संस्करण की " शरणागत " शीर्षक कहानी का यह वाक्य द्रष्टव्य है -

---

४- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १ ।
५- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ४४ ।
६- छाया (तृतीय संस्करण) ; पृष्ठ संख्या १५७ ।

विल्कर्ड - अब हमको कुछ ख़ौफ़ नहीं है ।[७]

तृतीय संस्करण में उक्त वाक्य इस रूप में है -

विल्कर्ड - अब हमको कुछ डर नहीं है ।[८]

तृतीय संस्करण में "ख़ौफ़" के स्थान पर "डर" का प्रयोग किया गया । इस परिवर्तन से अर्थ में कोई अंतर नहीं आया । "प्रसाद" जी ने अंग्रेज़ी पात्र (विल्कर्ड) के मुख से "ख़ौफ़" के स्थान "डर" का उच्चारण करवाना अधिक समीचीन समझा होगा ।

द्वितीय संस्करण में अनेक स्थलों पर व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ हैं जिन्हें तृतीय संस्करण में दूर करने की चेष्टा की गई है । द्वितीय संस्करण की "चंदा" शीर्षक कहानी का एक वाक्य प्रस्तुत है -

> "गीत अधूरी ही है कि अकस्मात् एक कोल युवक धीर पद संचालन करता हुआ उस रमणी के सन्मुख आकर खड़ा हो गया ।"[९]

उक्त वाक्य में "गीत" (पुल्लिंग) के साथ विशेषण "अधूरी" (स्त्रीलिंग) का प्रयोग हुआ है । तृतीय संस्करण में "अधूरी" के स्थान पर "अधूरा"[१०] का प्रयोग करने से द्वितीय संस्करण की उक्त व्याकरणिक असंगति का परिहार हो गया । इसके अतिरिक्त द्वितीय संस्करण के उक्त वाक्य में "सन्मुख" का प्रयोग हुआ था जो अशुद्ध था । इसके स्थान पर, तृतीय संस्करण में "सम्मुख"[११] का प्रयोग किया गया जो कि शुद्ध है ।

द्वितीय संस्करण की "मदन मृणालिनी" का यह वाक्य उल्लेखनीय है -

७- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार(प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ७६ ।

८- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ९५ ।

९- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार,(प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ८ ।

१०- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १३ ।

११- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १३ ।

" मदन भी अपने यहाँ कभी कभी उन लोगों को निमंत्रण करता है ।"[१२]

इस वाक्य में " निमंत्रण " शब्द का प्रयोग दोषपूर्ण था । तृतीय संस्करण में इस शब्द के स्थान पर " निमंत्रित "[१३] का प्रयोग किया है जिससे उक्त व्याकरणगत दोष दूर हो गया । इसके अतिरिक्त " मदन " के स्थान पर तृतीय संस्करण में वह[१४] सर्वनाम का प्रयोग किया गया । कहानीकार इस वाक्य के पूर्व के वाक्यों में " मदन " का नामोल्लेख कर चुका है, अतः फिर से " मदन " का प्रयोग खटकता है । " वह " के प्रयोग से यह दोष दूर हो गया ।

द्वितीय संस्करण की " तानसेन " शीर्षक कहानी का निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य है -

" युवक कुछ न बोलकर एक स्वीकार सूचक इंगित किया ।"[१५]

यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से पूर्णतया अशुद्ध है । तृतीय संस्करण में इस वाक्य को शुद्ध कर दिया गया -

" युवक कुछ न बोला, किंतु उसने एक स्वीकार-सूचक इंगित किया ।"[१६]

द्वितीय संस्करण की " चंदा " शीर्षक कहानी का एक वाक्य प्रस्तुत है -

हीरा - नहीं, तुम मार लो, हमारा हाथा ढीला हुआ जाता है ।[१७]

१२- छाया (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ६६ ।

१३- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १८२ ।

१४- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १८२ ।

१५- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार(प्रथम संस्करण)पृष्ठ संख्या ३ ।

१६- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ४ ।

१७- छाया (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १५, चित्राधार(प्रथम संस्करण)।

इस वाक्य में " हमारा" प्रयोग अनुचित है क्योंकि यहाँ उत्तम पुरुष के एकवचन के प्रयोग की आवश्यकता थी । तृतीय संस्करण में " हमारा" के स्थान पर " मेरा"[१८] प्रयोग हुआ है जो उचित है ।

द्वितीय संस्करण की " अशोक " शीर्षक कहानी का निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय है -

" राजकीय कानन में अनेक प्रकार के वृक्ष सौरभित सुमनों से भरे झूम रहे हैं ।"[१९]

तृतीय संस्करण में उक्त वाक्य इस रूप में मिलता है -

" राजकीय कानन में अनेक प्रकार के वृक्ष सुरभित सुमनों से भरे झूम रहे हैं ।"[२०]

तृतीय संस्करण में " सौरभित " (अशुद्ध) के स्थान पर " सुरभित " (शुद्ध) प्रयुक्त हुआ है ।

द्वितीय संस्करण की " जहाँनारा" शीर्षक कहानी का एक वाक्य प्रस्तुत है -

" एक पुरानी पलंग पर जीर्ण बिछौने पर जहाँनारा पड़ी थी और केवल एक धीमी साँस चल रही थी ।"[२१]

तृतीय संस्करण में उक्त वाक्य इस रूप में है -

" एक पुराने पलंग पर, जीर्ण बिछौने पर, जहाँनारा पड़ी थी और केवल एक धीमी साँस चल रही थी ।"[२२]

द्वितीय संस्करण में " पलंग" (पुल्लिंग) के स्थान " पुरानी "(स्त्रीलिंग) विशेषण का प्रयोग किया गया है । तृतीय संस्करण में " पुराने" (पुल्लिंग) का

१८- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या २२ ।
१९- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ९६ ।
२०- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ९७ ।
२१- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार(प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ११४ ।
२२- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १४७ ।

प्रयोग करके उक्त व्याकरणगत असंगति का परिहार कर दिया गया ।

द्वितीय संस्करण की 'गुलाम' शीर्षक कहानी का एक वाक्य द्रष्टव्य है -

'फूल नहीं खिलते हैं, बैठे की कलियाँ मुरफनी जा रही हैं ।'[२३]

इस वाक्य में 'मुरफनी' का प्रयोग दोषपूर्ण है । तृतीय संस्करण में इसके स्थान पर 'मुरफाई'[२४] का प्रयोग किया गया है जो शुद्ध है । ये अधिकतर व्याकरण की भूलें हैं और इनके पीछे पूर्वी प्रभाव का रूप देखा जा सकता है । कालांतर में लेखक की भाषा परिष्कृत और प्रतिमानीकृत होती चलती है, जिसके प्रमाण ये संशोधन हैं ।

द्वितीय संस्करण की कुछ कहानियों में, तृतीय संस्करण में, कहानी-कला की दृष्टि से संशोधन किये गए । द्वितीय संस्करण की 'तानसेन' शीर्षक कहानी का एक स्थल उल्लेखनीय है -

' उसी पाई बाग में रामप्रसाद के रहने के जगह है ।
रामप्रसाद अपनी खिचड़ी आँच पर चढ़ा कर प्राय:
चबूतरे पर आकर गुनगुनाया करता है ।'[२५]

इस उद्धरण के पूर्व के वाक्य में 'रामप्रसाद का नामोल्लेख हो चुका है । अत: बार-बार 'रामप्रसाद' का प्रयोग होना अनुचित प्रतीत होता है । तृतीय संस्करण में इसके (रामप्रसाद) स्थान पर 'उसके'[२६] का प्रयोग किया गया है । उक्त उद्धरण के दूसरे वाक्य में प्रयुक्त 'रामप्रसाद' को हटा दिया गया और इसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द नहीं रखा गया क्योंकि पूर्व प्रसंग से विदित हो जाता है कि यह बात उसी (रामप्रसाद) के विषय में कही जा रही है ।

२३- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार(प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ११५ ।
२४- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ११६ ।
२५- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ४ ।
२६- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ६ ।

द्वितीय संस्करण की अनेक कहानियों में कई स्थल ऐसे विद्यमान हैं जो निश्चित रूप से विषयांतर करते हैं। तृतीय संस्करण में ऐसे स्थलों को प्रायः हटा दिया गया। द्वितीय संस्करण की "मदन मृणालिनी" शीर्षक कहानी का प्रारंभिक अंश उल्लेखनीय है -

> "विजयादशमी का त्यौहार समीप है, बालक लोग नित्य रामलीला होने से आनंद में मग्न हैं। शरत्कालीन जगदम्बा पूजन और रामलीला का एक साथ ही अपूर्व उत्साह, बालकों ही को नहीं, युवा वृद्ध सभी को एक दूसरे नवीन सुख का अनुभव करा रही है। हिंदू समाज एक नये रंग में रंगा सा दिखाई पड़ता है।"[२७]

तृतीय संस्करण में उक्त अंश के रेखांकित वाक्यों को स्थान प्राप्त नहीं हुआ। ये वाक्य नितांत अनावश्यक हैं क्योंकि यहाँ पर रामलीला का वर्णन करना अभीष्ट नहीं है। इन वाक्यों को हटा देने से पहले वाक्य का बाद के वाक्य से संबंध जुड़ जाता है। इस अंश को हटा देने से कहानी में उपस्थित विषयांतर दूर हो गया। इस अंश को तृतीय संस्करण में नहीं रखने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह व्याकरण की दृष्टि से पूर्णतः अशुद्ध है।

इसी कहानी में एक स्थल पर बालक (मदन) सो जाता है, फलस्वरूप कहानीकार निद्रा के प्रभाव का वर्णन करना आरंभ कर देता है -

> "विरहियों को भी निद्रा स्वप्न के द्वारा संयोगी बनाती है। परिश्रम से थके हुए किसानों को, सेवकों को, राजों को, महाजनों को सब को अपनी गोद में लेकर थोड़ी देर तक सांसारिक झगड़ों से अलग रखती है।"[२८]

यह अंश अनावश्यक था, अतः तृतीय संस्करण में इसे हटा दिया गया। कहानीकार, द्वितीय संस्करण में बीच-बीच में पाठकों से प्रश्न करता है। इस

२७- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार(प्रथम संस्करण)पृष्ठ संख्या ३७।
२८- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार(प्रथम संस्करण)पृष्ठ संख्या ४४।

प्रकार के प्रश्न आधुनिक कहानी-कला की दृष्टि से अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं। इस कारण से ऐसे स्थलों को तृतीय संस्करण में स्थान नहीं मिला। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

" यह मृणालिनी कौन है ? यह प्रश्न अवश्य ही आप लोगों के चित्त में उठेगा। + + + + + चौंकिये मत, इसमें अवश्य ही कुछ रहस्य है जो फिर खुलेगा।"[२९]

उक्त उद्धरण को तृतीय संस्करण में स्थान नहीं मिला। इस प्रकार के वाक्य कहानी की रोचकता को नष्ट कर देते हैं। द्वितीय संस्करण में एक स्थल पर दो पृष्ठों का वर्णन है, जो विषयांतर करता है, उसे तृतीय संस्करण में स्थान नहीं दिया गया।

द्वितीय संस्करण में कुछ अंग्रेज़ी के शब्द हैं जिन्हें रोमन लिपि में ही रखा गया है। तृतीय संस्करण में अंग्रेज़ी के वे शब्द तो हैं किंतु उन्हें नागरी लिपि में लिखा गया है। उदाहरणार्थ -

" सुनो, यह एक will है।[३०] (मदनमृणालिनी)

तृतीय संस्करण में यह इस प्रकार मिलता है -

" सुनो, यह एक " विल " है।[३१]

द्वितीय संस्करण के कुछ अंश ऐसे हैं जिन्हें तृतीय संस्करण में संक्षिप्त कर दिया गया है। उदाहरण प्रस्तुत है -" बनर्जी परिवार की चिंता का कारण क्या है ? सो मैं उन्हीं लोगों की बातचीत से पाठकों को विदित कराना चाहता हूँ। घर के मालिक एक स्थान पर बैठे हुए कुछ सलाह सी कर रहे हैं। डरिये मत अनाधिकार चर्चा तो वही चीज़ है जो अनाधिकार प्रवेश है। फिर जब बड़े बड़े विद्वान इसमें नहीं डरते तो आप क्यों डरते हैं।

२९- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ४५।

३०- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ७३।

३१- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या १६१।

सुनिये, मालिक बनर्जी अपनी स्त्री हीरामणि से क्या कह रहे हैं।"[32]

तृतीय संस्करण में उक्त अंश संक्षिप्त रूप में मिलता है -

" किंतु बनर्जी महाशय की चिंता का कारण क्या है ? सो पति-पत्नी की इस बातचीत से ही विदित हो जायगा।"[33]

तृतीय संस्करण की कुछ कहानियों में, परवर्ती संस्करण में, भी थोड़े बहुत संशोधन हुए हैं। तृतीय संस्करण की " शरणागत" कहानी का एक वाक्य द्रष्टव्य है -

" यमुना के तट पर दो तीन रमणी खड़ी है।"[34]

परवर्ती संस्करण में " रमणी" के स्थान पर " रमणियाँ " का प्रयोग हुआ है।" रमणी " (एकवचन) का प्रयोग यहाँ अशुद्ध था, अत: इसके स्थान पर " रमणियाँ"(बहुवचन) प्रयोग हुआ है।

इसी कहानी का एक अन्य वाक्य उल्लेखनीय है -

" उन सखियों ने देखा कि वह कुमारी उसी नाव पर एक अंग्रेज और एक लौंडी के साथ बैठी हुई है।"[35]

बाद के संस्करण में" लौंडी " के स्थान पर " लेडी " का प्रयोग किया गया है, जो सार्थक प्रतीत होता है।

३२- छाया (द्वितीय संस्करण), मदन मृणालिनी, चित्राधार(प्र०सं०)पृ०सं०७४८।

३३- छाया (तृतीय संस्करण)पृष्ठ संख्या १४१।

३४- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ५६।

३५- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ५६।

उपसंहार

उ प सं हा र

"प्रसाद" जी की रचनाओं के विविध संस्करणों में हुए परिवर्तनों एवं संशोधनों का विस्तार से अध्ययन कर लेने पर निम्नलिखित विशेषताएँ उद्घाटित होती हैं -

(क) ब्रजभाषा से खड़ीबोली हिंदी की ओर विकास

"प्रसाद" जी उन कवियों में से थे जिन्होंने काव्य-रचना ब्रजभाषा से आरंभ की। उन्होंने ब्रजभाषा में "प्रेम पथिक" की रचना की जो इंदु-कला १, किरण २, भाद्रपद ६६ में प्रकाशित हुआ था। "प्रेम राज्य", जो ब्रजभाषा में है, का पूर्वार्द्ध इंदु-कला १, किरण ४, कार्तिक ६६ में प्रकाशित हुआ था। सन् १९१० में सम्राट सप्तम एडवर्ड की मृत्यु पर छः पृष्ठों की पुस्तक "शोकोच्छ्वास" प्रकाशित हुई थी; यह भी ब्रजभाषा में थी। इनके अतिरिक्त अन्य कई ब्रजभाषा की छोटी-बड़ी रचनाएँ हैं जो "इंदु" में प्रकाशित हुई थीं। इनमें से अधिकतर रचनाएँ "चित्राधार" के द्वितीय संस्करण में उपलब्ध होती हैं।

"प्रसाद" जी की आरंभ में, उस समय के अन्य साहित्यकारों की तरह, यह धारणा थी कि गद्य-रचना खड़ीबोली हिंदी में की जाए और काव्य-रचना ब्रजभाषा में। विद्वानों की उक्त धारणा वस्तुतः भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से ही बन गई थी। "प्रसाद" जी की इस प्रवृत्ति का बोध उनके "उर्वशी चंपू" (बाद में "उर्वशी") से होता है जिसमें गद्य की भाषा खड़ीबोली हिंदी है और पद्य की भाषा, ब्रजभाषा है।

कालांतर में "प्रसाद" जी का झुकाव खड़ीबोली हिंदी में काव्य-रचना की ओर हो गया, किंतु कुछ समय तक उनका ब्रजभाषा से भी लगाव रहा। इस प्रवृत्ति का परिचय "कानन कुसुम" के प्रथम संस्करण (तृतीय संस्करण में मुद्रित है सन् १९१२ किंतु होना चाहिए सन् १९१३, द्रष्टव्य "कानन-कुसुम")

एवं द्वितीय संस्करण (सन् १९१८) की रचनाओं को देखकर मिल जाता है। इन दोनों संस्करणों में खड़ीबोली हिंदी की रचनाएँ तथा ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं एवं कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनमें ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिंदी दोनों का मिश्रण है।

"प्रसाद" जी ने कुछ समय के बाद स्वयं को ब्रजभाषा के मोह से मुक्त कर लिया। फलस्वरूप सन् १९१३ (सं० १९७०) में उन्होंने ब्रजभाषा के "प्रेम पथिक" का खड़ीबोली हिंदी में रूपांतरण करके उसे पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया। "कानन-कुसुम" के तृतीय संस्करण (सन् १९२९) में सभी कविताएँ खड़ीबोली की हैं। प्रथम एवं द्वितीय संस्करण की खड़ी बोली की जिन कविताओं में ब्रजभाषा की पंक्तियाँ थीं, उन्हें बाद में हटा दिया गया।

(ख) आरंभिक भाषा में निहित पूर्वी हिंदी का प्रभाव बाद में दूर हो जाता है।

"प्रसाद" जी की आरंभिक रचनाओं की भाषा पर थोड़ा बहुत पूर्वी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यह प्रभाव गद्य-भाषा एवं काव्य-भाषा दोनों पर दृष्टिगत होता है। पूर्वी हिंदी में कर्ताकारक परसर्ग "ने" का प्रयोग नहीं होता। इस संदर्भ में "छाया" के प्रथम संस्करण (सन् १९१२) की "तानसेन" शीर्षक कहानी का एक वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

"युवक कुछ न बोलकर एक स्वीकार सूचक इंगित किया।"[१]

"छाया" के द्वितीय संस्करण ('चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संकलित) में उक्त वाक्य इसी रूप में है। "छाया" के तृतीय संस्करण में लेखक ने इस प्रभाव को दूर करके भाषा को परिष्कृत बनाया -

"युवक कुछ न बोला, किंतु उसने एक स्वीकार-सूचक इंगित किया।"[२]

१- छाया (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ३।

२- छाया (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ४।

पूर्वी हिंदी में क्रिया और विशेषण संबंधी लिंग भेद कोई महत्व नहीं रखता, जैसा डॉ० हरदेव बाहरी लिखते हैं, "जैसे - जैसे हम पूर्व की ओर बढ़ते जाते हैं, विशेषण और क्रिया में का लिंग भेद लुप्त होता जाता है।"[3] "प्रसाद" जी की आरंभिक रचनाओं में कई स्थानों पर लिंग संबंधी अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। "छाया" के द्वितीय संस्करण की "जहाँनारा" शीर्षक कहानी का निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय है -

"एक पुरानी पलंग पर जीर्ण बिछौने पर जहाँनारा पड़ी थी और केवल एक धीमी साँस चल रही थी।"[4]

यद्यपि "पलंग" शब्द पुल्लिंग है तथापि इसका विशेषण स्त्रीलिंग (पुरानी) में प्रयुक्त किया गया है। तृतीय संस्करण में इसके स्थान पर "पुराने" (पुल्लिंग विशेषण) का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार "छाया" के प्रथम संस्करण में "चंदा" में गीत (पुल्लिंग) का विशेषण "अधूरी" रखा गया है। द्वितीय संस्करण में भी "अधूरी" का प्रयोग हुआ। तृतीय संस्करण में "अधूरा" (पुल्लिंग विशेषण) कर दिया गया।

यह प्रवृत्ति उनकी प्रारंभिक कविताओं में भी देखी जा सकती है। "कानन कुसुम" के द्वितीय संस्करण ("चित्राधार" के प्रथम संस्करण में संकलित) की "शिल्प सौंदर्य" कविता की एक पंक्ति उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

किस मिट्टी के ईंटे हैं बिखरे हुए।[5]

यहाँ "मिट्टी" एवं "ईंट" दोनों को पुल्लिंग मानकर उसी के अनुरूप पुल्लिंग क्रिया (बिखरे हुए) का प्रयोग हुआ है। इसके विपरीत उक्त दोनों शब्द स्त्री लिंग हैं। तृतीय संस्करण में इन दोनों को स्त्रीलिंग

३- हिंदी : उद्भव, विकास और रूप - डॉ० हरदेव बाहरी, पृष्ठ संख्या ६६।
४- छाया (द्वितीय संस्करण) चित्राधार (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ११४।
५- कानन-कुसुम (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ६२।

मानकर स्त्रीलिंग क्रिया (बिखरी हुई) का प्रयोग किया गया -

किस मिट्टी की ईंटें हैं बिखरी हुईं ।[६]

(ग) स्थूल से सूक्ष्म की ओर

'प्रसाद' जी की रचनाओं में बहुत से संशोधन व परिवर्तन मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि वे (प्रसाद) क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ रहे हैं । रचना में सूक्ष्मता आ जाने से यह न समझना चाहिए कि उसमें दुरूहता आ गई । इस संदर्भ में कामायनी के पांडुलिपि संस्करण के 'लज्जा' सर्ग की एक पंक्ति द्रष्टव्य है -

मंगल कुंकुम की श्री जिसमें निखरी हो ऊषा सी लाली ।[७]

'कामायनी' के प्रथम संस्करण में 'ऊषा सी' के स्थान पर 'ऊषा की' का प्रयोग हुआ । 'ऊषा सी' के प्रयोग में सादृश्य स्थूल हो गया था । 'ऊषा की' के प्रयोग से स्थूल सादृश्य को सूक्ष्म बना दिया गया ।

इसी प्रसंग में 'कामायनी' के पांडुलिपि संस्करण के 'दर्शन' सर्ग की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

कब उठा प्रणत से चरण चूम
पकड़ा कुमार कर सहृद्य फूल ।[८]

'सहृद्य' के प्रयोग से उक्त पंक्तियों में स्थूलता आ गई थी । प्रथम संस्करण में 'सहृद्य' के स्थान पर 'मुकुल' के प्रयोग से स्थूलता दूर हो गई ।

६- कानन कुसुम (तृतीय संस्करण) पृष्ठ संख्या ११६ ।
७- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ४१ ।
८- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या १२० ।

" आँसू " के प्रथम संस्करण का ५६वाँ छंद प्रस्तुत है -

विष-प्याली जो मैं पीलूँ
वह मदिरा हो जीवन में,
सौन्दर्य- पलक- प्याले का
त्यों प्रेम बना है मन में ।[९]

प्रथम संस्करण के उक्त छंद में, द्वितीय संस्करण में " त्यों " के स्थान पर " अब " का प्रयोग हुआ है ।" त्यों " के प्रयोग से छंद में आगत स्थूलता का " अब " के प्रयोग से परिहार हो गया ।

(घ) पंक्ति शैथिल्य के अवरोध को बाद में दूर किया गया

" प्रसाद " जी ने अनेक स्थलों पर शब्दों, वाक्यों के विपर्यय द्वारा पंक्ति शैथिल्य को सुधारने का सफल प्रयास किया है ।" आँसू " के प्रथम संस्करण का उन्नीसवाँ छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

जीवन की जटिल समस्या
है जटा-सी बढ़ी कैसी,
उड़ती है धूल हृदय में
किसकी विभूति है ऐसी ।[१०]

उक्त छंद की द्वितीय पंक्ति में, द्वितीय संस्करण में शब्दों का क्रम-परिवर्तन कर दिया गया -

है बढ़ी जटा-सी कैसी

प्रथम संस्करण की पंक्ति में " जटा-सी " के बाद रुकना पड़ता है ; फलस्वरूप पंक्ति का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है । द्वितीय संस्करण में शब्दों के क्रम-परिवर्तन से पंक्ति में प्रवाह आ गया ।

९- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १६ ।
१०- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ६ ।

' कामायनी ' के पांडुलिपि संस्करण की एक पंक्ति में यही बात देखी जा सकती है -

जगत चल रहा था धीरे धीरे अपने उस मृदु पथ में ।[११]

' प्रसाद ' जी ने कुछ विपर्यय छंद के अर्थ को विशिष्ट बनाने के लिये किये हैं -

सुरा सुरभिमय वदन ~~थे नयन भरे~~ अरुण थे नयन भरे आलस अनुराग ।[१२]

शब्दों के स्थान-परिवर्तन के पूर्व मुख की लालिमा का बोध नहीं होता था । विपर्यय करने से मुख की लालिमा का ज्ञान हो जाता है । यहाँ मुख-मंडल की अरुणिमा का वर्णन अत्यंत आवश्यक था क्योंकि सुरापान के बाद मुख पर रक्तिमा छा जाती है ।

(ठ०) अशोभन प्रयोगों का परित्याग

रचनाकार ने अपनी कृतियों में अनेक स्थलों पर ऐसे शब्दों को हटाया जो अशोभन प्रतीत होते थे । ' कामायनी ' के पांडुलिपि संस्करण के ' यज्ञ ' सर्ग का एक छंद विवेचनीय है -

यज्ञ कर्म से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा
इसी विपिन में अनार की आशा का कुसुम खिलेगा ।[१३]

प्रथम संस्करण में ' यज्ञ कर्म ' के स्थान पर ' कर्म यज्ञ कर दिया गया (इसका विवेचन ' कामायनी ' के विवेचन ' में किया जा चुका है) और ' अनार ' के स्थान पर ' मानस ' कर दिया गया । पंक्ति में ' अनार ' शब्द अशोभन एवं निरर्थक था । इसके स्थान पर ' मानस ' का प्रयोग करने से छंद भावात्मक एवं काव्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो गया ।

११- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ४८ ।
१२- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ८ ।
१३- कामायनी (पांडुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ४५ ।

" राज्यश्री " के प्रथम संस्करण के द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में राज्यश्री ने अपने कथन में " चांडाल " शब्द का प्रयोग किया है । द्वितीय संस्करण में इस शब्द को हटा दिया गया क्योंकि यह राज्यश्री की अभिजात प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है ।

(घ) अप्रचलित शब्दों के स्थान पर प्रचलित शब्दों का प्रयोग

'प्रसाद'जी ने कुछ स्थलों पर अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया था । कालांतर में उन शब्दों को हटाकर उनके स्थान पर प्रचलित शब्द रखे । " छाया " के प्रथम संस्करण की " मदन मृणालिनी " शीर्षक कहानी का एक वाक्य द्रष्टव्य है -

" मदन उसी घर में कालक्षेप करने लगा ।"[१४]

इस वाक्य में " कालक्षेप " शब्द हिंदी के लिए अपरिचित सा है । यह संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ होता है - रहना, समय व्यतीत करना, दिन काटना । द्वितीय संस्करण में भी यही शब्द प्रयुक्त हुआ किंतु तृतीय संस्करण में " कालक्षेप " के स्थान पर " रहने " का प्रयोग हुआ है ।

आँसू के प्रथम संस्करण का ७४वाँ छंद प्रस्तुत है -

परिचय ! राका में निधि का
जैसा होता छिपकर है,
ऊपर से किरणें आतीं
मिलती हैं गले लहर से ।[१५]

उक्त छंद में " निधि " के प्रयोग से कवि का अभिप्राय है- समुद्र है । यद्यपि " निधि " शब्द से प्रकारांतर से समुद्र का बोध हो जाता है,

१४- छाया (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ४४ ।
१५- आँसू (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या १६ ।

तथापि दुरूहता कुछ सीमा तक रह ही जाती है क्योंकि "निधि" शब्द समुद्र के अर्थ में कम प्रचलित है । द्वितीय संस्करण में इसके स्थान पर "जलनिधि" के प्रयोग से यत्किंचित दुरूहता का परिहार हो गया ।

(ख) नाट्य रूढ़ियाँ क्रमशः दूर होती गयीं

"प्रसाद" जी ने अपने प्रारंभिक एकांकियों, रूपकों ही में परंपरा से चली आयी अनेक नाट्य रूढ़ियों का त्याग कर दिया था । उनके किसी भी नाटक में विष्कंभक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार, प्रवेशक का प्रयोग नहीं मिलता । भारतेंदु ने "चंद्रावली नाटिका आदि नाटकों में इनका प्रयोग किया है ।

"प्रसाद" जी ने अपने कुछ नाटकों (आरंभिक) में नांदी एवं भरत वाक्य का प्रयोग किया है । "राज्यश्री" के प्रथम संस्करण (सन् १६१५) में नांदी एवं भरत वाक्य की अवतारणा हुई है । इसके द्वितीय संस्करण (१६८५ वि०) में दोनों को (नांदी व भरत वाक्य) हटा दिया गया । "कल्याणी परिणय" जुलाई १६१२ में "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" में प्रकाशित हुआ था । इसमें "नांदी" नहीं था किंतु भरत वाक्य था । १६१८ ई० में "कल्याणी-परिणय" "चित्राधार" के प्रथम संस्करण में संगृहीत हुआ । इसमें "नांदी" जोड़ दिया गया, भरत वाक्य तो उपस्थित था ही । सन् १६३१ में "कल्याणी-परिणय" का रूप बिलकुल बदलकर "चंद्रगुप्त" नाटक प्रकाशित हुआ । इसमें नांदी एवं भरत वाक्य, दोनों नहीं रहे गए ।

(ग) पद्यात्मक कथोपकथनों को बाद में हटा दिया गया

"प्रसाद" के सभी आरंभिक काल के नाटकों में पद्यात्मक कथोपकथन मिलते हैं । सज्जन, प्रायश्चित्त, कल्याणी-परिणय, राज्यश्री (प्रथम संस्करण) अजातशत्रु (प्रथम संस्करण) आदि में पद्यात्मक संवादों का प्रयोग हुआ

है । बाद में इन संवादों को प्रायः छटा दिया गया अथवा उन्हें गद्य में रूपांतरित कर दिया गया । ये कथोपकथन पारसी नाटकों के प्रभाव से आ गये थे । इनका प्रयोग नाटक में अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देता था । यह अस्वाभाविकता तब और खटकने लगती, जब इन पद्यात्मक संवादों के साथ लम्बे संवाद (गद्य भाषा में) जुड़े होते थे । नाटककार ने परवर्ती संस्करणों में इन लम्बे संवादों को भी संक्षिप्त किया ।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएँ भी दिखायी देती हैं । जैसे पात्रों के चरित्र को अपेक्षया विस्तार देने का प्रयास । 'राज्यश्री' के प्रथम संस्करण में तीन अंक थे, किंतु द्वितीय संस्करण में एक अंक की वृद्धि की गयी । इस प्रकार अब चार अंक हो गये । चौथे अंक की अवतारणा का मुख्य कारण था- राज्यश्री के चरित्र को अपेक्षया महत्त्वपूर्ण बनाना । इस अंक में प्रयाग का दान-समारोह एक प्रमुख घटना है । यह कार्य हर्षवर्धन ने राज्यश्री की प्रेरणा से संपादित किया । इसके अतिरिक्त इसी अंक में, राज्यवर्धन के हत्यारे विकटघोष को राज्यश्री प्राणदान देती है । इन दो कारणों से राज्यश्री का चरित्र अपेक्षया भव्य एवं उज्ज्वल हो जाता है । " राज्यश्री " का चरित्र चित्रण ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है क्योंकि नाटककार " प्राक्कथन " में निवेदन कर चुका है, " इस रूपक का उद्देश्य है, राज्यश्री का चरित्र-चित्रण । "

कुछ परिवर्तन त्रुटि पूर्ण छंद-विधान को पूर्ण बनाने के लिए किए गए ।

ऐसा नहीं कि सभी परिवर्तन एवं संशोधन प्रशंसनीय एवं संतोषजनक हुए हैं । ऐसे परिवर्तन हैं किंतु कम , जो किसी भी तरह अपनी सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाते । इस संदर्भ में " कामायनी " के पाण्डुलिपि संस्करण के " लज्जा " सर्ग की काटी हुई पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

यह कम्पन ! यह गुदगुदी ! रही कितने कोमल आघातों से
लज्जा ही पूजन किया करती छिपने को मधु के हाथों से ।[१६]

१६- कामायनी (पाण्डुलिपि संस्करण) पृष्ठ संख्या ४० ।

श्रद्धा ने स्वयं को मनु को समर्पित कर दिया । उसके उपरांत उसमें शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन हुए । वह उन परिवर्तनों से भ्रमित है । इन परिवर्तनों के कारणों से वह पूर्णतः अनभिज्ञ है । जब वह इन परिवर्तनों के संबंध में विचार कर रही थी, तभी उसे एक आकृति-सी दिखायी दी । श्रद्धा उससे उन अनुभूत परिवर्तनों के संबंध में कहती है । उक्त छंद उसने इसी प्रसंग में कहा । श्रद्धा के शरीर में कंपन और गुदगुदी हुई , उसी को वह आकृति (लज्जा) से वर्णित करती है । इस महत्वपूर्ण छंद को " प्रसाद " जी ने काट दिया । यदि यह छंद कामायनी में होता , तो रचना (कामायनी) के हित में होता । " झरना " के प्रथम संस्करण की " अर्चना " शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ, द्वितीय संस्करण में नहीं मिलती हैं -

> हो जावेगा जब निराश मन फिर कभी
> ध्यान हमारा आवेगा, होगी व्यथा
> तो क्या दाक्ष्य[१७] न होगे तुम, यह सोच लो
> फिर जैसा मन में आवे वैसा करो । [१८]

यह परिवर्तन संतोषजनक नहीं प्रतीत होता क्योंकि ये पंक्तियाँ पहले की पंक्तियों से अनिवार्य रूप से संबद्ध थीं । कवि, किसी न किसी तरह, प्रियतम को जाने से रोकना चाहता है । उसे प्रियतम का रूप देखने की अभिलाषा है । वह चाहता है कि प्रियतम किसी प्रकार रुक जाये । इन पंक्तियों का हट जाना, कविता के लिए हानिकर हुआ ।

इस प्रकार के संशोधन व परिवर्तन, जिनका हटाया जाना अनुचित प्रतीत होता है, " प्रसाद " जी के संपूर्ण साहित्य में यदा-कदा ही मिलते हैं । उनकी अपेक्षा, अधिकांश संशोधन व परिवर्तन रचना को पहले से बेहतर

१७- झरना के प्रथम संस्करण में " दाक्ष्य " ही मुद्रित है । वस्तुतः यह " दाक्ष्य " है ।

१८- झरना (प्रथम संस्करण) पृष्ठ संख्या ६ ।

बनाने वाले सिद्ध होते हैं । इन परिवर्तनों व संशोधनों से उनकी रचनाएँ भाव एवं कला दोनों ही दृष्टियों से पहले से क्रमशः उत्कृष्ट होती दिखायी देती है । "प्रसाद" जी की रचनाओं के विभिन्न संस्करण, जिनमें संशोधन व परिवर्तन हुए हैं, इस तथ्य के साक्षी हैं कि रचनाकार सदैव अपने कृतित्व को पहले से बेहतर बनाने के प्रयास में रत था । उसका यह प्रयास काफ़ी हद तक सफल रहा ।

प रि शि ष्ट

परिशिष्ट (क)

प्रसाद की रचनाओं के विविध संस्करणों का प्रकाशन-क्रम

इस सूची में केवल उन्हीं रचनाओं के संस्करण उल्लिखित हैं जहाँ लेखक ने कोई परिवर्तन किए हैं ।

विधा	क्रम संख्या	ग्रंथ का नाम	संस्करण	वर्ष	प्रकाशक	प्राप्ति स्थान
१	२	३	४	५	६	७
मिश्रित रचनाओं का संग्रह	१(क)	चित्राधार	प्रथम संस्करण	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भण्डार, बनारस	भगवानदीन साहित्य विद्यालय, काशी
	(ख)	चित्राधार	द्वितीय ,,	१९२८ ई०	साहित्य-सरोज, बनारस	श्री विश्वम्भर मानव के संग्रह में
चंपू	२(क)	उर्वशी चंपू	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९०६ ई०	'प्रसाद' जी द्वारा प्रकाशित	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद
	(ख)	उर्वशी	द्वितीय संस्करण (चित्राधार के प्रथम संस्करण में संकलित)	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भण्डार, बनारस	भगवानदीन साहित्य विद्यालय, काशी ।
	(ग)	उर्वशी	तृतीय संस्करण (चित्राधार के द्वितीय संस्करण में संकलित)	१९२८ ई०	साहित्य-सरोज, बनारस	श्री विश्वम्भर मानव के संग्रह में
काव्य	३(क)	प्रेम पथिक	ब्रजभाषा रूप (इंदुकला १, किरण २, भाद्रपद१९६६वि० में प्रकाशित)	१९६६ ई०	संपादक श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त	आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

१	२	३	४	५	६	७
काव्य	(ख)	प्रेम पथिक	प्रथम संस्करण (खड़ीबोली में ; पुस्तक रूप में)	१९७० वि०	साहित्य सुमन माला सीरीज़ का प्रकाशन	अभिमन्यु पुस्तकालय, वाराणसी
	(ग)	प्रेम पथिक	प्रथम संस्करण चित्राधार के प्रथम संस्करण में संकलित	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भण्डार, बनारस	भगवानदीन साहित्य विद्यालय, काशी
	(घ)	प्रेम पथिक	द्वितीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९८५ वि०	भारती भण्डार, बनारस	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद ।
	४ (क)	कानन कुसुम	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९१२ ई०	साहित्य सुमनमाला सीरीज़ का प्रकाशन	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद
	(ख)	कानन कुसुम	द्वितीय संस्करण (चित्राधार के प्रथम संस्करण में संकलित)	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भंडार, बनारस	भगवानदीन साहित्य विद्यालय, काशी ।
	(ग)	कानन कुसुम	तृतीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९२९ ई०	पुस्तक-भण्डार, लहेरिया सराय	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के संग्रह में
	५ (क)	करुणा	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९७५ वि०	हिंदी ग्रंथ भण्डार, बनारस	श्री राधेश्याम गुप्त के संग्रह में, मथौली

१	२	३	४	५	६	७
काव्य	(ख)	भरना	द्वितीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९८४ वि०	साहित्य सेवा सदन, बनारस	भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद
	(ग)	भरना	तृतीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९९१ वि०	भारती-भंडार, बनारस	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद।
	६ (क)	आँसू	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९२५ ई०	साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद।
	(ख)	आँसू	द्वितीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९३३ ई०	भारती-भंडार रामघाट, बनारस सिटी	भारत कला भवन, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस
	(ग)	आँसू	तृतीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९३८ ई०	भारती-भंडार इलाहाबाद	भारती भवन पुस्तकालय, इलाहाबाद
	७(क)	कामायनी	प्रथम संस्करण	१९३६ ई०	भारती-भंडार, इलाहाबाद	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद
	(ख)	कामायनी	पांडुलिपि संस्करण	१९७१ ई०	,,	,,
नाटक	८ (क)	राज्यश्री	सर्वप्रथम इंदु, कला ६, खंड १, किरण १, जनवरी, १९१५ में प्रकाशित	१९१५ ई०	ई० श्री अंबिका प्रसाद गुप्त	आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१	२	३	४	५	६	७
नाटक	८(ख)	राज्यश्री	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९१५ ई०	साहित्य सुमनमाला सीरीज़ में प्रकाशित	आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
	(ग)	राज्यश्री	प्रथम संस्करण चित्राधार के प्रथम संस्करण में संकलित	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भंडार कार्यालय, बनारस सिटी	भगवानदीन साहित्य विद्या. काशी ।
	(घ)	राज्यश्री	द्वितीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९८५वि०	भारती-भंडार, बनारस सिटी	लाल भाव्वक पुस्तकालय, बनारस
नाटक	९(क)	विशाख	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९२१ई०	हिंदी ग्रंथ भंडार, बनारस सिटी	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद
	(ख)	विशाख	द्वितीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९२९ ई०	भारती- भंडार, काशी	भारत कला भवन, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस ।
	(ग)	विशाख	तृतीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९३६ ई०	भारती-भंडार, इलाहाबाद	अभिमन्यु पुस्तकालय, बनारस ।
	१०(क)	अजातशत्रु	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९७९वि०	हिंदी ग्रंथ भंडार कार्यालय, बनारस सिटी	श्री राधेश्याम गुप्त के संग्रह में, मदौली

१	२	३	४	५	६	७
नाटक	१०(ख)	अजातशत्रु	द्वितीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९८३ वि०	साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी	कार्ल माइकल पुस्तकालय, बनारस
	११(क)	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९६६ वि०	साहित्य सुमनमाला सीरीज़ का प्रकाशन	हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद
	(ख)	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य	प्रथम संस्करण, चित्राधार के प्रथम संस्करण में संकलित	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भण्डार कार्यालय, बनारस सिटी	भगवानदीन साहित्य विद्यालय, काशी
	(ग)	कल्याणी-परिणय	सर्वप्रथम नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७ जुलाई, १९१२ संख्या १ में प्रकाशित	१९१२ ई०	नागरी प्रचारिणी पत्रिका	आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
	(घ)	कल्याणी-परिणय	'चित्राधार' के प्रथम संस्करणमें संकलित	१९१८ ई०	हिंदी ग्रंथ भण्डार, बनारस सिटी	भगवान दीन साहित्य विद्यालय, काशी।
	(ङ०)	चंद्रगुप्त	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९८८वि०	भारती-भण्डार, काशी	भारत-कला-भवन, बनारस हिंदू विश्व-विद्यालय, बनारस
	(च)	अभिनय-चंद्रगुप्त	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९७७ई०	हिंदी-प्रचारक-पुस्तकालय, पिशाच मोचन, वाराणसी	शोधकर्ता के संग्रह में

१	२	३	४	५	६	७
कहानी	१२(क)	छाया	प्रथम संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९६९ वि०	साहित्य सुमन माला सीरीज का प्रकाशन	हिंदी साहित्य सम्मेलन, संग्रहालय, इलाहाबाद
	(ख)	छाया	द्वितीय संस्करण ('चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संकलित)	१९१८ई०	हिंदी ग्रंथ भंडार कार्यालय, वाराणसी	भगवानदीन साहित्य विद्यालय काशी
	(ग)	छाया	तृतीय संस्करण (पुस्तक रूप में)	१९८४वि०	हिंदी पुस्तक भंडार, लहेरिया, सराय ।	श्री राधेश्याम गुप्त के संग्रह में, मदौही ।

परिशिष्ट (ख)

शोध-प्रबंध में सहायक ग्रंथों की सूची

क्रम संख्या	ग्रंथ का नाम	लेखक
१	कवि 'प्रसाद' : आँसू तथा अन्य कृतियाँ	आचार्य विनय मोहन शर्मा
२	कवि प्रसाद की काव्य-साधना	श्री रामनाथ 'सुमन'
३	कन्नौज	डॉ० रामकुमार दीक्षित
४	कामायनी का पुनर्मूल्यांकन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
५	कामायनी का पांडुलिपि संस्करण	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
६	कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ	डॉ० नगेन्द्र
७	कुकुरमुत्ता	श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' संपादक - श्री दूधनाथ सिंह
८	जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला	डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल
९	प्रसाद और उनका साहित्य	श्री विनोद शंकर व्यास
१०	प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन	डॉ० किशोरीलाल गुप्त
११	प्रसाद का काव्य	डॉ० प्रेमशंकर
१२	प्रसाद का गद्य	डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
१३	प्रसाद काव्य विवेचन	डॉ० हरदेव बाहरी
१४	प्रसाद की कविता	डॉ० भोलानाथ तिवारी
१५	प्रसाद की कविताएँ	श्री सुधाकर पाण्डेय

१६	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
१७	प्रसाद के नाटक : रचना और प्रक्रिया	डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
१८	प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक	डॉ० जगदीश चंद्र जोशी
१६	प्रसाद-साहित्य कोश	डॉ० हरदेव बाहरी
२०	रसज्ञ-रंजन	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
२१	राजतरंगिणी	कल्हण संपा० - विश्व बंधु
२२	वैदिक कोश	श्री सूर्यकांत
२३	सूर सागर-सार	संपा० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
२४	हिंदी साहित्य कोश (भाग १)	संपा० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
२५	हिंदी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
२६	हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास (षष्ठ भाग)	डॉ० नगेन्द्र
२७	हिंदी : उद्भव, विकास और रूप	डॉ० हरदेव बाहरी

परिशिष्ट (ग)

पत्र - पत्रिकाओं की सूची

१) इंदु

२) नागरी प्रचारिणी पत्रिका

३) साहित्य - संदेश

४) प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का कार्य-विवरण (दूसरा भाग)

५) द्वितीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का कार्य-विवरण (,,)